अंक 280 वर्ष 57

# भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2018

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

सत्यमेव जयते

Skill India

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

# भाषा (द्वैमासिक)

## लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। **रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।**

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. **भाषा** में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

## संपादकीय कार्यालय

संपादक **भाषा**, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

# भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2018



**अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल**
प्रोफेसर अवनीश कुमार

**परामर्श मंडल**
श्रीमती चित्रा मुद्गल
डॉ. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
श्री एम. वेंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

**संपादक**
डॉ. अनिता डगोरे

**सह–संपादक**
अर्चना श्रीवास्तव

**सहायक संपादक**
अच्युत कुमार सिंह

**प्रूफ रीडर**
इंदु भंडारी

**कार्यालयीन व्यवस्था**
सेवा सिंह

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,**
**मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार**

**ISSN 0523-1418**
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **57 □ अंक : 7 (280)**
**सितंबर–अक्तूबर 2018**

**संपादकीय कार्यालय एवं बिक्री केंद्र**

केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.hindinideshalaya.nic.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com

**बिक्री केंद्र :**

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

**मूल्य :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. | एक प्रति का मूल्य | = | रु. 25.00 | **( डाक खर्च सहित )** |
| 2. | वार्षिक सदस्यता शुल्क | = | रु. 125.00 | |
| 3. | पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क | = | रु. 625.00 | |
| 4. | दस वर्षीय सदस्यता शुल्क | = | रु. 1250.00 | |
| 5. | बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क | = | रु. 2500.00 | |

वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भाषा
सितंबर–अक्तूबर 2018

# अनुक्रमणिका

**निदेशक की कलम से**

**संपादकीय**

**श्रद्धांजलि**

**आपने लिखा**

**आलेख**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | जय हिंदी, जय देवनागरी | प्रो. उषा यादव | 13 |
| 2. | विश्व परिदृश्य और हिंदी | डॉ. बद्री प्रसाद पंचोली | 20 |
| 3. | राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी | रमेश चंद्र | 24 |
| 4. | पूर्वोत्तर की भाषाओं पर हिंदी का प्रभाव | डॉ. रामचंद्र राय | 40 |
| 5. | हिंदी साहित्य की कथा विधा में उपेक्षित हैं जासूसी कथाएँ | गोपाल जी गुप्त | 51 |
| 6. | हिंदी में अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रचलन, हिंदी के लिए आशीर्वाद है | सिद्धेश्वर | 55 |
| 7. | राजभाषा प्रयुक्ति | राहुल शर्मा 'अस्त्र' | 58 |
| 8. | मिज़ोरम में हिंदी भाषा का विकास | डॉ. सी. ललरमपना | 66 |
| 9. | आज के कवि/बुद्धिजीवी का संकट | डॉ. नरेंद्र मोहन | 71 |
| 10. | भाषा शिक्षण और राष्ट्रवाद | डॉ. प्रियंजन | 79 |
| 11. | हिंदी की दशा और दिशा परिवर्तित करने में भारतेंदु का योगदान | डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल | 101 |

| | | |
|---|---|---|
| 12. उत्कल के कृषिपरक पर्व-त्योहार | डॉ. ममता दास | 110 |
| 13. तमिल नई चाल में चलने लगी | डॉ. एम. शेषन | 118 |
| 14. नंददास का आचार्यत्व | डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी | 124 |
| 15. महर्षि वाल्मीकि और उनका गुरुकुल | हर्ष कुमार 'हर्ष' | 135 |

**धरोहर**

| | | |
|---|---|---|
| 16. तीन कहानियाँ | रवींद्रनाथ टैगोर | 139 |

**कहानी**

| | | |
|---|---|---|
| 17. रुना मैडम (ओड़िआ) | राजकिशोर दास<br>अनुवाद : डॉ. शेख सईद | 143 |
| 18. तीर्थयात्री (ओड़िआ) | वीणापाणि महांति<br>अनुवाद :<br>डॉ. विजय कुमार महांति | 151 |
| 19. पुस्तकें, चूहे और विष (कन्नड़) | मुहम्मद कुलायी<br>अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ | 162 |
| 20. समुंदर (तेलुगु) | बी. बलरामस्वामी<br>अनुवाद : बुक्कूरू वेंकटराव | 175 |
| 21. फरीद चा (हिंदी) | डॉ. पंकज साहा | 184 |
| 22. क्रमशः (हिंदी) | महावीर राजी | 193 |
| 23. दास्तान-ए-चमेलीपति (हिंदी) | डॉ. दादूराम शर्मा | 206 |

**कविता**

| | | |
|---|---|---|
| 24. आसरा (संथाली/हिंदी) | मूल एवं अनुवादः<br>किरण कुमारी हंसडक | 212 |
| 25. अज्ज बी (डोगरी/हिंदी) | पद्मा सचदेव<br>अनुवाद : कृष्ण शर्मा | 216 |
| 26. दोहे (हिंदी) | नरेश शांडिल्य | 220 |
| 27. बीकानेर में बसंत (हिंदी) | विजयसिंह नाहटा | 223 |
| 28. एक गंध | राधेश्याम बंधु | 225 |

29. बचपन (हिंदी) श्रेया सिंह 227

**परख**

30. बड़का दाई : द्वापर की यशोदा माई (बड़का दाई (उपन्यास)/ डॉ. रामनिवास साहू) बी बालाजी 228

31. बहुरंगी ग़ज़लें (रेत के फूल (गज़ल संग्रह)/ प्रो. अवध किशोर प्रसाद) आशा प्रसाद 235

32. जन्नत के चाँद कश्मीर घाटी पर आतंक का ग्रहण (तेरे शहर में (उपन्यास)/ डॉ. सारिका कालरा) डॉ. केवल कृष्ण शर्मा 240

33. गुळळकायज्जी (बाहुबलि की जय) / प्रो. चंद्रशेखर कंबार/ अनुवादक: डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी') दिविक रमेश 245

प्राप्ति स्वीकार 252

संपर्क सूत्र 253

समाचार समोन्नति

इस प्रकार सांस्कृतिक कल्प नव, भू
जीवन में होता विकसित,
एक चेतना रस सागर में, विविध रूप
उठ होते अवसित।
प्रथम बार अब जगत ब्रह्म में, ब्रह्म
जगत में हुआ प्रतिष्ठित,
मुक्त भेद मन से भू जीवन, सितचित्र
पट में हुआ समन्वित।
जन्म ले चुका नव मानव, जड़ चित्
को कर रस संयोजित,
धरा स्वर्ग कल्पना न रह अब, जन
जीवन में होता मूर्तित।

**– सुमित्रानंदन पंत**

# निदेशक की कलम से

"हिंदी दिवस की शुभकामनाएँ"

प्रत्येक वर्ष सितंबर का माह हिंदी के संबंध में विशेष महत्व रखता है। आज हिंदी की स्थिति में निरंतर सुधार हो रहा है। परंतु हिंदी के उत्तरोत्तर विकास हेतु यह स्थिति पूर्णतया संतोषजनक नहीं कही जा सकती। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी को विविध रूपों में प्रोत्साहन मिले– अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हो, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों का अधिकाधिक विस्तार हो तथा उच्चतर शिक्षा में हिंदी माध्यम का प्रवेश हो ताकि ज्ञान–विज्ञान जनसामान्य की भाषा में उपलब्ध हो सके।

हिंदी को वैज्ञानिक एवं तकनीकी अध्ययन का माध्यम बनाने से ज्ञान का विस्तार होगा तथा नई–नई प्रतिभाओं का उदय होगा। चीन, जापान, रूस, फ्रांस, जर्मनी इत्यादि देश इसका उदाहरण हैं जिन्होंने केवल अपनी भाषा के बल पर प्रगति प्राप्त की वस्तुतः कोई भी भाषा संप्रेषण का एक माध्यम होती है और अपनी मातृभाषा से इतर अन्य कोई भी भाषा इस तथ्य के आलोक में उच्चतर कदापि नहीं हो सकती।

हिंदी की लिपि विश्व की एकमात्र ऐसी लिपि है जिसमें विश्व की समस्त भाषाओं की ध्वनियों को ग्रहण/स्वीकार करने की अपार क्षमता है। हिंदी की सहजता, सुगमता तथा वैज्ञानिकता सर्वमान्य है।

हिंदी को मुख्यधारा एवं उचित स्थान तक पहुँचाने तथा औपचारिकताओं, आयोजनों के महाजाल से मुक्त करने हेतु अपनी पूर्ण इच्छाशक्ति एवं संकल्प के साथ हिंदी को उसके पद पर प्रतिष्ठापित करें यही हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य और नैतिक दायित्व भी है। इसी के माध्यम से हम भावी पीढ़ी तक ज्ञान को पहुँचा कर उनमें चिंतन की स्वाभाविक प्रवृत्ति विकसित कर सकते हैं।

भाषा का यह अंक हिंदी के फलक को विस्तार देने वाले शुभेच्छुओं को समर्पित है। प्रारंभिक आलेखों में इसी की निदर्शना है। उषा यादव के आलेख जय हिंदी, जय देवनागरी में यही उद्घोष है। भारतेंदु काल से हिंदी के विकास तथा विस्तार का परिचय डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल के आलेख से प्राप्त होता है। आशा करता हूँ कि 'गुळळकायज्जी' जैसे नाटक का डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' द्वारा किया अनुवाद तथा अन्य समीक्षाएँ भी पठनीय होंगी।

महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के उपलक्ष्य में भाषा का आगामी अंक विशेषांक के रूप में प्रकाशित किए जाने हेतु प्रयास किए जा रहे हैं।

भाषा पत्रिका में लेखन-सामग्री भिजवाने के लिए प्रकाशित लेखों के लेखकों को निदेशालय परिवार की ओर से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आशा करता हूँ कि भविष्य में भी आपका सहयोग प्राप्त होता रहेगा।।

वर्ष 2017 से भाषा के सभी अंक www.chdpublication.mhrd.gov.in पर उपलब्ध हैं तथा 2017 से पूर्व के अंकों को ऑनलाइन उपलब्ध कराने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

आभार एवं धन्यवाद, जय हिंद!

**प्रोफेसर अवनीश कुमार**

# संपादकीय

15 अगस्त, 2018 को भारत ने अपना 72वाँ स्वतंत्रता दिवस बड़े ही हर्षोल्लास से मनाया। इस दिन देश के प्रधानमंत्री लालकिले की प्राचीर से साल भर में हुए कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। इन 72 वर्षों में भारत ने जहाँ विकास की बुलंदियों को छुआ है वहीं विश्व में अपनी एक अलग पहचान भी बनाई है। हमारे देश की भाषा संस्कृति, वेषभूषा, खान-पान, धर्म इत्यादि की विभिन्नताओं के बावजूद भाारतवासी एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं और यही भारत के लोकतंत्र की खूबसूरती भी है। आज अंग्रेजी हुकूमत से भारत को आज़ाद हुए पूरे 72 वर्ष हो गए हैं। इन 72 वर्षो में सोचने की बात यह है कि हम कितने आज़ाद हुए हैं, और किससे आजाद हुए हैं? भारत का संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को अपनी बात कहने की स्वतंत्रता देता है। आजादी की बात इसलिए कही जा रही है कि देश की आजादी का मतलब केवल देश का अंग्रेजों की गुलामी से आजाद होना ही नहीं था, अपितु मानवता, नैतिकता, सामाजिकता एवं राष्ट्रीयता को बनाए रखने एवं उसकी स्वतंत्रता को संरक्षित रखने से भी है।

आज प्रश्न यह भी उठता है कि क्या वास्तव में हम अपनी पुरानी मान्यताओं, अंधविश्वासों से स्वतंत्र हो पाए हैं? आज जगह-जगह गौ हत्या के नाम पर मासूम लोगों को भीड़ (लिंचिंग) पीट-पीट कर मार डालती है, दलितों के घर जला दिए जाते हैं जिसकी हमारे देश के माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने बड़े ही कड़े शब्दों में निंदा भी की है। अपना विरोध प्रदर्शन करने के लिए सरकारी वाहनों को जला देना, जगह-जगह आगजनी करना, उपद्रव करना क्या यह सही है? क्या यही आजादी के मायनें हैं? अभी कुछ दिन पहले कुछ विघटनकारी तत्वों ने देश के

संविधान को जलाया। जोकि एक शर्मनाक घटना थी। हर देश का अपना संविधान होता है जो उसके गौरव का प्रतीक होता है। हमारे देश का संविधान देश को लोकतंत्र बनाता है। इस तरह की घटना का होना, अर्थात् लोकतंत्र एवं स्वतंत्रता को समाप्त करने की भावना को दर्शाता है। विदेशी हुकूमत से तो हम आजाद हो गए पर, निजी स्वार्थ से आजाद नहीं हो पाए हैं। विनोवा भावे ने कहा है कि "-जिस देश के लोग अपने पर काबू नहीं रख सकते, वहाँ पर स्वतंत्रता नहीं रह सकती।"

आजकल समाचार-पत्रों, न्यूज चैनलों पर देखने व सुनने को मिल रहा है कि देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था में संतुलन नहीं दिखाई दे रहा है। पत्रकारिता एक ऐसा माध्यम है जो बिना किसी बाहरी दबाव के किया जाए तो उसकी आवाज दूर-दूर तक पहुँचती है। जिस देश में सामाजिक जागरुकता को बनाए रखने के लिए स्वतंत्रता से लिखने का भय हो, ऐसे में वहाँ की स्वतंत्रता पर प्रश्न चिह्न लग सकता है। पत्रकारिता देश का आइना है इसपर धूल जमने नहीं देनी चाहिए अन्यथा देश की छवि धुंधली दिखाई पड़ने लगेगी। स्वस्थ पत्रकारिता देश के विकास और प्रगति का स्तंभ है।

संविधान निर्माता डा. भीम रावअंबेडकर का मानना था कि देशहित से बड़ा कोई हित नहीं है। उनका यह सपना था कि एक ऐसे संविधान का निर्माण हो जहाँ सभी को समान अधिकार प्राप्त हो। देशहित यदि हमें देखना है तो अपना स्वार्थ छोड़ देश के हित की बात सोचनी होगी सरकार को जनसाधारण से संपर्क करना होगा, उनकी परेशानियों को समझना होगा और उन्हें दूर करने का प्रयास करना होगा। तभी देश एक खुशहाल एवं प्रगतिशील देश बन सकेगा।

अनिता

**( अनिता डगोरे )**

# शत्-शत् नमन

'जन्म मरण का अविरत फेरा,
जीवन बंजारो का डेरा,
आज यहाँ, कल कहाँ कूच है,
कौन जानता किधर सवेरा।'

25 दिसंबर, 1924 को ग्वालियर (म. प्र.) में जन्मे श्री अटल बिहारी बाजपेयी जी राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त राजनेता होने के साथ ही काव्य-रसायन से ओत-प्रोत संवेदनशील व्यक्तित्व भी थे। देश से इतर वैश्विक धरातल पर भी उनके योजक-व्यक्तित्व, वैचारिक ओज और संवेदनशीलता की गहरी छाप अंकित है। वे हिंदी को संयुक्त राष्ट्र तक पहुँचाने वाले संकल्पवान युगपुरुष थे। 1992 में उन्हें राष्ट्र के प्रति समर्पित सेवाओं के लिए 'पद्मविभूषण' तथा 2015 में 'भारतरत्न' से अलंकृत किया गया। मेरी इक्यावन कविताएँ, मेरी संसदीय यात्रा (चार खंड), संकल्पकाल, गठबंधन की राजनीति उनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। ऐसे विराट व्यक्तित्व को निदेशालय परिवार की ओर से शत्-शत् नमन।

# आपने लिखा

भाषा मार्च–अप्रैल, 2018: एक विहंगम दृष्टि

भाषा का प्रत्येक अंक ज्ञानोन्मेषक विधाओं का श्रेष्ठ प्रेरक और साहित्य की विविध विधाओं की श्रेष्ठ रचनाओं का अविकृत दर्पण है। यह अंक भारत की विभिन्न भाषाओं में रचित आत्मकथाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करता है। संपादकीय में ही आत्मकथा के तत्व, स्वरूप, प्रभाव पर विहंगम दृष्टि डाली गई है।

डॉ. अजय कुमार मिश्र ने संस्कृत में आत्मकथा का गंभीर विवेचनात्मक अध्ययन किया है और पाया है कि वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, बाजारवाद के इस घातक दौर में आत्मकथा की प्रांसगिकता स्वयंसिद्ध है।

असमिया आत्मकथाओं पर डॉ. अनुशब्द ने विचार किया है और पाया है कि इस नए युग की भोर में लोगों ने इंसान को इंसान की तरह पहचाना और इस ज्ञान तथा समझ ने उनको समय के साथ अपने विचारों और भावनाओं के बोझ से आत्मकथात्मक लेखन के माध्यम से मुक्त होना सिखा दिया। आत्ममुक्ति का यह प्रबल माध्यम है।

सबपर लिखना संभव नहीं है। अतः लेखकों की सृजनात्मकता को नमन करता हुआ संपादक की मुक्तकंठ से सराहना के साथ वाणी को विराम।

डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

वृंदावन, राजेंद्र पथ, धनबाद – 826001, झारखंड

# जय हिंदी, जय देवनागरी

**प्रो. उषा यादव**

*'गंगा मिलितन डूब के नहईता*
*अम्मा मिलितन खुल के बतियइती।'*

मैथिली की इस लोकोक्ति में जिस गंगा और अम्मा के नैकट्य-लाभ की लोकमन की लालसा व्यक्त हुई है, अपनी मातृभाषा हिंदी के बारे में सोचते समय हमें भी वैसे ही आनंद की अनुभूति होती है। अपनी मातृभाषा हिंदी हमारे लिए गंगा भी है और अम्मा भी। स्वयं हिंदी की विकास-यात्रा की कहानी गंगावतरण से मिलती-जुलती है। गंगोत्री से उद्‌भूत होकर गंगासागर तक पहुँचने की यात्रा में गंगा अनेक पड़ाव पार करती है। हिंदी को समृद्‌ध बनाने में खेत-खलिहानों, कुटीरों-कछारों, बीहड़ों-मरुस्थलों, झोंपड़ों-राजप्रासादों के साथ-साथ मंदिर-मस्जिद-गुरुद्‌वारों तक का योगदान है। माँ की ममता जैसी सहज रागात्मक संवेदनाएँ भी हिंदी में है। इसलिए वह हमारे लिए गंगा और अम्मा दोनो है।

हिंदी को समृद्‌ध बनाने में जनपदीय भाषाओं और बोलियों के महत्वपूर्ण अवदान की अनदेखी नहीं की जा सकती। विशाल हिंदी भाषी प्रदेश में मालवा से लेकर मिथिला तक और अवध से लेकर हरियाणा तक जो अनेक जनपद हैं, उनकी जुदा-जुदा बोलियाँ हैं। विलक्षणता इस बात में है कि इनमें से बहुत सी बोलियों में लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचने वाला कालजयी साहित्य भी रचा गया है। उदाहरण के लिए अवधी और ब्रज को लीजिए। तुलसी और सूर ने इनमें श्रेष्ठतम साहित्य रचा है। रामविलास शर्मा के शब्दों में, 'लोकप्रियता के विचार

से यूरोप की किसी आधुनिक भाषा के पास उसकी 'बोली' में रचा हुआ 'रामचरितमानस' जैसा काव्य नहीं है।' हिंदी भाषी प्रदेशों के विविध जनपदों में समृद्धिशाली लोकसाहित्य की बेशकीमती पूंजी भी उपलब्ध है। लोकसाहित्य का माध्यम जो बोलियाँ हैं, वे संरचना और शब्द-भंडार की दृष्टि से एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं।

हिंदी के विकास में जनपदीय भाषा का अप्रतिम योगदान है। माँ की लोरी से लेकर शिशुगीतों के बोल और गुल्ली-डंडा, कबड्डी जैसे खेलों के बोल में इसको देखा जा सकता है। मुहावरे-लोकोक्तियाँ, किरिया (शपथ), कुंवारी कन्याओं की पद्यमय बोली-ठोली, गंजेड़ियों-भंगेड़ियों के बोल, गाली-गलौज की कुछ भाषिक विदग्धताएँ भी इसके उदाहरण हैं। काशी का जोगीपाड़ा और बैसवाड़ा का भड़ौआ, कव्वाली, आल्हा, होली के फाग और रसिया, चैता, कजली, मल्हार में इसका अस्तित्व है। ढकोसला, मुकरियाँ, जादू-टोने के बोल, देवी का पचरा, भूत-प्रेतों का पचरा, विवाहगीत, यज्ञोपवीत गीत, सोहर, जीवित्पुत्रिका सूर्य व्रत आदि की पद्यमय कथाएँ भी इसमें शामिल हैं।

जनपदीय भाषाओं के रस-संचार से हिंदी निरंतर समृद्ध हुई है। आप ठंडाई को देखिए। उसमें खसखस, बादाम, कालीमिर्च, केसर, गुलाब की पत्तियाँ और दूध-चीनी का अनुपात जरूरी हैं। हर वस्तु अलग स्वाद देती है, पर तादात में घाल-मेल होते ही पूरी ठंडाई का आनंद खत्म हो जाता है। इसी तरह अगर हिंदी में अन्य जनपदीय बोलियों के मुहावरे-कहावतें आ जाएँ, तो दिक्कत क्या है? हिंदी की शुद्धता बरकरार रखने के लिए इसके निषेध की बात सोचना गलत है। वाक्य-विन्यास की शुद्धता पर अवश्य ध्यान दीजिए, पर जनपदीय बोलियों से परहेज न करें। आज हिंदी को अपनी समृद्धि के लिए ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, निमाड़ी, मेवाड़ी, हड़ौती, पहाड़ी और अन्यान्य बोलियों की शब्द-संपदा चाहिए।

महात्मा गांधी ने जनपदीय बोलियों के महत्व को बहुत गहराई से समझा था। उनके जीवन का एक प्रसंग इस संदर्भ में याद आता है। देश को जब आजादी के निकट पहुँचने में ज्यादा वक्त न था, बापू नई दिल्ली की हरिजन कॉलोनी में ठहरे हुए थे। बड़े मनोयोग से वह वॉयसराय को एक जरूरी पत्र लिख रहे

थे। उनसे कुछ दूरी पर दो बच्चे आपस में बात कर रहे थे। अचानक बापू ने चिट्ठी लिखना रोक दिया और पास खड़े व्यक्ति से उन बच्चों को बुलाने के लिए कहा। बच्चे आ गए। बापू ने उन्हें पल भर देखा और सवाल किया, 'तुम दोनों कौन हो?'

बच्चे भौचक्के!

बापू का यह कैसा सवाल है?

जानते-बूझते भी उनसे यह बात पूछ रहे हैं।

बापू ने दुबारा अपना सवाल दुहराया, 'बताओ, तुम दोनों कौन हो?'

'भाई-बहन।' लड़की ने जवाब दिया।

'किस प्रांत के हो?' बापू का अगला प्रश्न था।

बच्चे फिर अवाक्।

आज बापू को हो क्या गया है? जानते-बूझते भी ऐसे सवाल कर रहे हैं। इस बार भाई सिटपिटाते हुए बोला, 'हम पंजाब के हैं। यह सुशीला और मैं प्यारे लाल।'

बापू ने दुखी होकर कहा, 'समुद्र में ही आग लगी है, कहाँ-कहाँ बुझाऊँ? किस मुंह से वॉयसराय को संपूर्ण आजादी के लिए लिखूँ? तुम दोनो अच्छी तरह से पंजाबी जानते हो, गुजराती जानते हो, हिंदी जानते हो, फिर भी अंग्रेजी में बात कर रहे हो। इस गुलाम मानसिकता को क्या कहूँ। अंग्रेजी बुरी चीज नहीं, पर उसकी खातिर अपनी प्रादेशिक भाषाओं को छोड़ देना बुरा है।'

दोनों भाई-बहन ने अपनी गलती स्वीकारी।

पर हम अपनी गलती को आज भी कहाँ स्वीकार कर पा रहे हैं? प्रादेशिक भाषाओं का अपमान-अवमूल्यन करती हुई, हिंदी को पदाक्रांत करती हुई, अंग्रेजी आज भी एक गर्वीली अदा के साथ भारत में गूँज रही है। इस स्थिति पर गंभीरता से विचार करना जरूरी हैं आज हालत और ज्यादा खराब इसलिए हो गए हैं, क्योंकि भूमंडलीकरण के नाम पर हम एक छद्म 'विश्वगाँव' की कल्पना में निमग्न हो गए हैं, जो मात्र बाजारवाद है। उसके नाम पर अंग्रेजी को अपनाना सिर्फ धोखे का शिकार होना है।

भारतीय संविधान के अनुसार एक ओर हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया है, दूसरी तरफ उसकी जड़ें कमजोर हो रही हैं। इस अवमूल्यन में स्वतंत्र भारत के पूंजीगत वर्ग की भी अहम भूमिका है। वह पूंजीगत वर्ग, जो लाभ का गणित फैलाकर, पुरस्कारों की बड़ी-बड़ी राशि घोषित कर, दिग्गज हिंदी साहित्यकारों को खरीदता है, उसके घर में अंग्रेजी का समाचार पत्र आता है और उसके बच्चे ऐसे अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ते हैं, जहाँ हिंदी का एक शब्द भी बोलने वाले को हेठी निगाह से देखा जाता है। जहाँ लड़कियों को भारतीय पारंपरिक शृंगार-प्रसाधन मेंहदी तक हथेली पर लगाने की इजाजत नहीं है और जहाँ भारतीय संस्कृति की खुलेआम अवमानना होती है।

भारत को वैश्विक प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलने के लिए सूचना-प्रौद्योगिकी और तकनीक से जुड़ना जरूरी है, पर अपनी सांस्कृतिक विरासत को मटियामेट करने की कीमत पर नहीं। भूमंडलीकरण से हिंदी की व्याप्ति की संभावनाएँ बहुत अधिक हो गई हैं। पश्चिमी देश भारत को एक बड़ी मंडी के रूप में देख रहे हैं। यहाँ आने पर विदेशी व्यापारियों और उद्योगपतियों को हिंदी सीखनी ही होगी। हिंदी भाषा से अनभिज्ञ रूसियों ने 'मेरा जूता है जापानी' और 'जीना यहाँ मरना यहाँ, इसके सिवा जाना कहाँ', जैसे हिंदी फिल्मी गानों को कितनी रुचि से सीखा, सब जानते हैं। इसलिए हिंदी के भविष्य को लेकर हमें आशान्वित रहना चाहिए।

भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ ही उसे बोल-चाल की भाषा बनाने में सहयोग दिया है। अभिव्यक्ति की सशक्तता और भावों की विविधता के कारण हिंदी आज किसी अन्य भाषा से ज्यादा संपन्न है समस्या यह है कि हिंदी में विज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शन, विधि, प्रौद्योगिकी और अर्थशास्त्र जैसे विषयों की पुस्तकें बहुत कम हैं और स्तर की दृष्टि से भी पिछड़ जाती हैं। हिंदी का विकास मुख्यत: साहित्य, पत्रकारिता और फिल्म के माध्यम से ही हुआ है। इसके अवमूल्यन के लिए समाज का मध्य वर्ग विशेष रूप से दोषी हैं वह गलत-सलत अंग्रेजी बोलकर आत्मगर्व से दीप्त हो जाता है और यही भाव हिंदी पर कुठाराघात करता है।

इस देशद्रोही मध्यवर्ग के साथ मित्रवत खड़ी हैं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, जिनके दलाल का काम मीडिया ने संभाल रखा है। कार और मोबाइल की बिक्री

भले ही अंग्रेजी के विज्ञापनों से हो जाए, पर साबुन, तेल, नमक और चाय की पत्ती जैसे आम आदमी के काम आने वाले उत्पाद को बेचने के लिए हिंदी ही जरूरी है। कुछ विज्ञापनों में अंग्रेजी का छौंक इसलिए लगा दिया जाता है, ताकि संपन्न वर्ग भी उससे जुड़ जाए। इस तरह अंग्रेजी के घाल-मेल से टेलीविजन के विविध चैनलों द्वारा परोसी जाने वाली हिंदी किसी चाट या भेलपूरी से कम नहीं रहती। उसे चटखारे भरकर खाया तो जा सकता है, पर प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता।

हिंदी के भविष्य को लेकर यदि गंभीरता से सोचा जाए, तो दो दिशाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं- 1. सूचना विस्फोट, जिसका सीधा संबंध भाषा से होता है। टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले देशी-विदेशी चैनलों के कार्यक्रम न सिर्फ भारत, बल्कि हिंदी जानने वाले अन्य देशों में भी देखे जाते हैं। विदेशों में बसे भारतीय भी इनके दर्शक हैं 2. आर्थिक उदारीकरण, जो आने वाले वर्षों में भारत को एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरने का संकेत दे रहा हैं। भारत की वस्तुओं की जैसे-जैसे विदेशों में खपत बढ़ेगी, वैसे-वैसे आर्थिक संस्थानों को हिंदी जानने वालों की जरूरत पड़ेगी।

हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए दो बातें जरूरी हैं- 1. हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की ऐसी वैज्ञानिक व्यवस्था की जाए, जो अहिंदी भाषियों और विदेशियों के लिए समझने योग्य हिंदी को बढ़ावा दे। 2. हिंदी भाषा के स्वरूप में ऐसा लचीलापन लाया जाए, जिससे वह अन्य भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं की शब्द-सपंदा को लेकर समृद्ध हो सके।

सच तो यह है कि हिंदी का गगनचुंबी भवन लोकभाषाओं के मलबे पर खड़ा किया गया है। हिंदी के हित और उसके विकास की बात करने वाले अपनी लोकभाषाओं की उपेक्षा और दुर्दशा पर कभी चिंता और खेद व्यक्त नहीं करते। आचार्य शुक्ल ने 'चिंतामणि में एक स्थान पर इसकी चर्चा की है, जब वह अपने मित्र के साथ एक पहाड़ी पर चढ़ रहे थे। अचानक एक सोंधी गंध उनकी नासिका-रंध्रों से टकराई, तो मुँह से अनायास निकल पड़ा कि यहाँ महुए की गंध कितनी अच्छी आ रही है। मित्र तत्काल बिगड़कर बोले कि यहाँ महुए-सहुए का नाम मत लीजिए, कोई सुन लेगा तो हमें गंवार समझेगा।

पढ़े-लिखे लोगों की इस मनोवृत्ति पर शुक्लजी की चिंता स्वाभाविक थी कि ऐसे माहौल में और ऐसे सोच के चलते लोक की बोलियाँ कहाँ जाएँगी? जो शब्द हिंदी को संपन्न बनाने में समर्थ हैं, उनसे दूरी रखकर हिंदी अपनी विकास-यात्रा कैसे तय करेगी, यह सवाल हमारे सामने है। यह सोचने की बात है कि हिंदी आंदोलन के प्रवक्ता अपनी जन-बोलियों के प्रति इतने असहिष्णु और क्रूर हैं? आमजन के दुख-सुख, संघर्ष और जीवन-राग को व्यक्त करने वाली उन बोलियों को तुच्छ मानने का आखिर अर्थ और औचित्य क्या है, जिनमें अनिर्वचनीय मिठास भरी है और माटी की महक समाहित है।'

जनपदों की महिमा अनंत है। वे जीवन के निःसीम पहलुओं की लीलाभूमि हैं। उनमें स्पंदित होने वाला जीवन हमारे सामने किसी खुली पुस्तक की तरह फैला हुआ है। कहीं गोपन की चेष्टा, दुराव-छिपाव नहीं है। जनपदों की अकथ-कथा धरती और आकाश के बीच खुले परिवेश में लिखी हुई है। यदि जरूरत है तो सिर्फ हमारी उन निगाहों की, जो उस इबारत को देख-पढ़ और सुन-समझ सकें। जनपदों की एक खासियत यह है कि हिंदी पत्रकारिता का उदय ही हिंदीतर प्रदेशों में हुआ है। भारतेंदु युग के सभी साहित्यकार पहले पत्रकार थे और उसके बाद साहित्यकार/संपादक होने के कारण वे जीवन और जगत की समसामयिक विसंगतियों से परिचित थे। उस युग की पत्रकारिता जीवन का दर्पण थी। बाद में भी गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, कृष्णदत्त पालीवाल आदि ने जन-सामान्य की आशाओं-अभिलाषाओं, पीड़ा-तकलीफों को बयान किया है। हिंदी के प्रसार में पत्रकारिता के अमूल्य योगदान को स्वीकारना ही पड़ेगा।

साहित्यकारों ने भी हिंदी को संपन्न बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विष्णु प्रभाकर ने शरत की जीवनी 'आवारा मसीहा' लिखकर बंगाल में लोकप्रियता पाई। इसी प्रकार केरल के क्रांतिकारी तंभी दलवी पर एक नाटक लिखकर केरल में प्रसिद्धि अर्जित की। वहाँ की जनता ने नाटक पढ़कर अत्यंत गद्गद् कंठ से उन्हें 'केरल-बंधु विष्णु प्रभाकर' कहा।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी बेचारी नहीं है। वह अत्यंत संपन्न भाषा है। अभिव्यक्ति सामर्थ्य में दुनिया की किसी भी भाषा से टक्कर

ले सकती है। उसके मुख्य आश्रय स्थल हैं- विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के हिंदी विभाग, सरकारी कार्यालय और सार्वजनिक उपक्रमों के राजभाषा विभाग, प्रकाशन वर्ग, फिल्म, समाचारपत्र, टेलीविजन, सड़क और बाजार। उसकी संपन्नता के लिए उसका और ज्यादा लचीला होना जरूरी है, तभी हम एक कंठ से कह सकेंगे-

'जय हिंदी, जय देवनागरी, जय भारत की भारती
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण, सभी उतारें आरती।'

– 73 नॉर्थ ईदगाह, आगरा-10

❑❑❑

# विश्व परिदृश्य और हिंदी

**डॉ. बद्री प्रसाद पंचोली**

हिंदी हिंद की भाषा है। इसको बोलने वालों की संख्या 133 करोड़ है। संसार की यह प्रथम भाषा है। चीन की मंदारिन भाषा को बोलने वालों की संख्या 110 करोड़ है। भारत की सभी भाषाएँ इसी की अलग-अलग शैलियाँ है।

चेक गणराज्य के प्रोफेसर ओदोलेन स्मेकल के अनुसार हिंदी संसार की सबसे सरल भाषा है जिसके व्याकरण को पोस्टकार्ड पर लिखा जा सकता है। करना और होना क्रियाओं के माध्यम से जीवन के सभी कार्य-व्यापारों को व्यक्त किया जा सकता है। यह संस्कृत की जेठी बेटी है। इसके सब शब्द मुँह से बोलते हैं। इसके पास सबसे वैज्ञानिक देवनागरी लिपि है जिसमें जो सुना जाता है वह लिखा जाता है और जो लिखा जाता है वह बोला जाता है।

महात्मा गांधी ने कहा था कि आजादी और हिंदी में से एक को चुनना पड़ा तो मैं हिंदी को चुनूँगा। उनकी 150 वीं जयंती पर हिंदी को जीवन के हर क्षेत्र में प्रतिष्ठित करके हम उनको सच्ची श्रद्धांजलि दे सकते हैं। हिंदी की जितनी अवहेलना हमने की है हमारी आजादी उतनी ही अधूरी है। आजादी की लड़ाई में हिंदी हमारा प्रमुख हथियार था जिसने राष्ट्र की एकता को सुरक्षित रखा।

इजरायल में 500 वर्ष पहले लुप्त प्राय हिब्रू भाषा को अपनाया गया और उसको इतना प्रोन्नत किया कि उसके रचनाकार को नोबल पुरस्कार तक मिल गया। हम संसार की सबसे अधिक सुंदर और श्रेष्ठ हिंदी भाषा को अपनी

राष्ट्रभाषा कहते सकुचाते हैं। संविधान में राजभाषा का स्थान देने के उपरांत भी उसकी छाती पर अंग्रेजी को बिठा दिया। हिंदी की इतनी अवहेलना की गई कि उसकी अर्थ संपदा और संस्कार संपदा को नष्ट करने की षड्यंत्रपूर्ण कुचेष्टा की गई।

इसका दुष्फल यह हुआ कि दो हिंदीभाषी आपस में अंग्रेजी के बिना बातचीत नहीं कर सकते। इसी का फल यह हुआ कि हमारी सशक्त प्रांतीय भाषाएँ भी कमजोर पड़ गई। आज हिंदी को जीवन में पूरी तरह से प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। यह न भूलें कि महात्मा गांधी, स्वामी दयानंद सरस्वती, विपिनचंद्र पाल, रामानंद चट्टोपाध्याय, रवींद्रनाथ ठाकुर, बालगंगाधर तिलक, विनोबा भावे, काका कालेलकर आदि अहिंदी भाषी थे। उन्होंने हिंदी की शक्ति को समझकर ही उसका समर्थन किया था। तमिलनाडु में 1934 में राजगोपालचारी ने हिंदी को अनिवार्य किया था। मॉरीशस में शिवसागर रामगुलाम, विष्णु वासुदेव दयाल हिंदी के समर्थक थे। इन सबका हिंदी के विकास में योगदान अविस्मरणीय है। ट्रिनिदाद की प्रधानमंत्री विजयलक्ष्मी भी हिंदी की विदुषी हैं।

हिंदी की शक्ति को पहचान कर भगिनी निवेदिता ने भारत में हिंदी विद्यालय खोला। इसी को आधार मानकर ब्रिटेन की सरकार ने ऑक्सफोर्ड क्षेत्र में 23 हिंदी माध्यम के विद्यालय खोले। इंग्लैंड में 27 संस्कृतभाषी गाँव भी हैं। ब्रिटेन में संस्कृतभाषी गाँव का होना अपने आप में उल्लेखनीय बात है।

केंद्रीय हिंदी शिक्षण संस्थान, आगरा को केंद्र सरकार ने विश्वविद्यालय का दर्जा दे दिया है। मास्को और खाड़ी देशों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की जा रही है। संसार के 300 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन और शोध की सुविधा प्राप्त है।

भारत के विदेशमंत्री के रूप में माननीय अटल बिहारी वाजपेयी ने सबसे पहले संयुक्त राष्ट्रसंघ की साधारण सभा में हिंदी में भाषण दिया था। इसके बाद तो हिंदी में बोलने का क्रम ही चल पड़ा। भारत की विदेशमंत्री सुषमा स्वराज और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी सर्वत्र हिंदी में ही भाषण देते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्वीकृत भाषा अब तक हिंदी नहीं है। भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है। इसकी भाषा को संयुक्त राष्ट्र की स्वीकृत भाषा बनाया जाना भारत की ओर से

प्राथमिकता हो- यह भारत सरकार सोचे। जो अड़चन हो उसे दूर किया जाना चाहिए। स्पेनिश जैसी बहुत कम लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा भी संयुक्त राष्ट्र द्वारा मान्यता प्राप्त है।

हिंदी संस्कृत की बेटी है। संसार की अनेको भाषाओं की मूल संस्कृत भाषा है। इस स्थिति का लाभ हिंदी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में उठाया जा सकता है। सनतकुमार शास्त्री ने इंटरनेट पर वेद विश्वविद्यालय चला रखा है। उसमें हजारों विद्यार्थी वेद पढ़ रहे हैं। इंग्लैंड की महारानी को 10 वर्ष के बच्चों को वेद पाठ करते हुए देखकर अत्यधिक आनंद की अनुभूति होती है।

हिंदी का शुद्ध उच्चारण करने का अभ्यास किया जाना चाहिए। शुद्ध उच्चारण से हिंदी का अर्थ अपने आप स्पष्ट हो जाएगा। हिंदी फिल्मों ने हिंदी के प्रचार में बड़ा योगदान दिया है। हिंदी फिल्में विश्व के सभी देशों में लोकप्रिय हुई हैं। हमारे खिलाड़ियों ने भी हिंदी को व्यापक बनाया है। आर्यसमाज विश्व एकता का बड़ा आंदोलन है। आर्यसमाज के प्रचारक विश्वभर में जाकर अपने प्रवचनों के माध्यम से धर्म के साथ हिंदी भाषा का भी प्रचार करते हैं। आर्यसमाज के लिए स्वामीदयानंद के शब्दों में हिंदी आर्यभाषा है।

अनेक स्थानों पर विश्व हिंदी-सम्मेलन हुए हैं। उनसे हिंदी को बड़ी व्यापकता मिली है। हिंदी के समाचार पत्रों-पत्रिकाओं ने भी हिंदी को व्यापक बनाने में योगदान दिया है।

भारतेंदु के समय से ही हिंदी के साहित्यकारों ने संकल्पबद्ध होकर लिखना प्रारंभ किया। वे अकेले और मिलकर भी प्रयत्नशील थे कि हिंदी का साहित्य संसार की किसी भी भाषा के साहित्य से कमजोर नहीं रहना चाहिए। साहित्यकारों के इस संकल्प ने हिंदी साहित्य के भंडार को श्रेष्ठ हिंदी रचनाओं से भरा। कालजयी साहित्य की रचना हुई। कामायनी विश्व-स्तरीय महाकाव्य है। रामचरितमानस की लोकप्रियता असंदिग्ध है।

हिंदी अंतरराष्ट्रीय व्यापार की भाषा भी बनती जा रही है। विश्व बंधुत्व की भाषा तो हिंदी है ही। हिंदी मानव मात्र के लिए समझ की भाषा है इसलिए इसकी उपयोगिता और सार्थकता बनी रहेगी। वेद की उक्ति है-

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसिजानताम्।

साथ-साथ चलने, आपस में वार्तालाप करने और एक दूसरे के मन को समझने के लिए हिंदी से अधिक उपयुक्त कोई भाषा नहीं हो सकती।

– बी-6, दातानगर, रेंबल रोड, अजमेर-305001

❑❑❑

# राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी

**रमेश चंद्र**

हम जानते हैं कि देश में एक राष्ट्रलिपि का होना बहुत जरूरी है। ऐसी एक राष्ट्रलिपि की आवश्यकता पर जहाँ विद्वानों ने बहुत बल दिया है, वहीं उन्होंने एक लिपि होने के अनेक लाभ भी बताए हैं। परंतु वह एक लिपि कौन-सी हो, जो पूरे देश में अपनाई जा सके। यूँ इस बारे में विद्वानों ने रोमन, देवनागरी, उर्दू आदि के पक्ष में भी विचार व्यक्त किए हैं, परंतु देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, व्याप्ति, प्राचीनता आदि गुणों को देखते हुए सबसे अधिक समर्थन इसी लिपि को मिला है। इस लिपि को राष्ट्रलिपि के रूप में अपनाने से पहले निम्नलिखित पहलुओं पर विचार करना आवश्यक होगा :

(क) महापुरुषों के विचार

(ख) आदर्श राष्ट्रलिपि में अपेक्षित गुणों के संदर्भ में देवनागरी की परिपूर्णता

(ग) भाषाओं की परस्पर सन्निकटता प्रकट करने में सक्षमता

(घ) अन्य लिपियों से लैखिक सन्निकटता

(ङ) अन्य लिपियों के लेखों से स्वानिक सन्निकटता

**(क) महापुरुषों के विचार**

देश में एक लिपि के रूप में देवनागरी को अपनाने की आवश्यकता पर महापुरुषों ने समय-समय पर बल दिया है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया था। उन्होंने 'हरिजन सेवक' में एक स्थान पर लिखा है- "बंगाली में लिखी हुई गीतांजलि को सिवा बंगालियों के और पढ़ेगा ही

कौन? पर यदि यह देवनागरी लिपि में लिखी जाए, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। संस्कृत तत्सम और तद्भव शब्द उसमें बहुत हैं, जिन्हें दूसरे प्रांतों के लोग आसानी से समझ सकते हैं। मेरे इस कथन की सत्यता को हर कोई जान सकता है। हमें अपने बालकों को विभिन्न प्रांतीय लिपियों को सीखने का व्यर्थ कष्ट नहीं देना चाहिए। यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, उड़िया तथा बंगाली इन छह लिपियों को सीखने में दिमाग खपाने को कहा जाए।" गांधी ने काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता में देवनागरी लिपि में कुछ सुधार करने के लिए एक समिति भी बनाई थी। वे यह मानते थे कि हिंदी या प्रांतीय भाषाओं को सीखने में देवनागरी के माध्यम से उनका समय बच सकता है।

भारतीय साहित्य परिषद्, मद्रास की दूसरी बैठक के सभापति पद से दिए गए भाषण में उन्होंने कहा- मैं तजुर्बे के साथ आपसे कहता हूँ कि दूसरी देशी भाषा सीख लेना कोई मुश्किल बात नहीं, लेकिन इसके लिए एक सर्वसामान्य लिपि का होना आवश्यक है। तमिलनाडु में ऐसा करना कोई मुश्किल नहीं। यूरोप में वहाँ लोगों ने सामान्य लिपि का प्रयोग किया और वह बिल्कुल सफल रहा। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि हम भी यूरोप की रोमन लिपि को ग्रहण करें, लेकिन फिर वाद-विवाद के बाद यह स्वीकार हो चुका है कि हमारी सामान्य लिपि देवनागरी ही हो सकती है और कोई नहीं। कभी-कभी उर्दू को उसकी प्रतिस्पर्धी बताया जाता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि उर्दू या रोमन किसी में भी वैसी संपूर्णता और ध्वन्यात्मक शक्ति नहीं है, जैसी देवनागरी में है। याद रखिए कि आपकी मातृभाषाओं के खिलाफ मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ। अशिक्षितों को हम देवनागरी लिपि के द्वारा इन भाषाओं के साहित्य की शिक्षा क्यों न दें? हम जो राष्ट्रीय एकता हासिल करना चाहते हैं, उसकी खातिर देवनागरी को सामान्य लिपि स्वीकार करना आवश्यक है। इसमें कोई कठिनाई नहीं, बात सिर्फ यह है कि हम अपनी प्रांतीयता और संकीर्णता छोड़ दें। तमिल और उर्दू लिपियाँ मुझे पसंद न हों, सो बात नहीं है। मैं इन दोनों को जानता हूँ, लेकिन मातृभूमि की सेवा ने, जिसके लिए मैंने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है और जिसके बिना मेरा जीवन निरर्थक होगा, मुझे सिखाया है कि जो हमारे देश के लोगों पर

अनावश्यक बोझ हैं, उनसे उन्हें मुक्त करने की कोशिश हमें करनी चाहिए। तमाम लिपियों को जानने का बोझ अनावश्यक है और उससे आसानी से बचा जा सकता है। इसलिए सभी प्रांतों के साहित्यिकों से मैं प्रार्थना करूँगा कि वे इस संबंध के भेदभावों को भुलाकर इस अत्यंत आवश्यक विषय पर एकमत हो जाएँ।" इस कथन का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि गाँधीजी देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, व्यापकता तथा राष्ट्रीयता एवं उपयोगिता की दृष्टि से देवनागरी को समस्त भारत में व्यापक बनाना चाहते थे। उनके कथन के पीछे उनके देश प्रेम की भावना भी दिखाई देती थी।

देवनागरी लिपि को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार कराने का आग्रह विनोबा जी ने भी किया था। विनोबा जी ने कहा- "यदि हम सारे देश के लिए देवनागरी को अपना लें, तो हमारा देश बहुत मजबूत हो जाएगा, फिर तो देवनागरी ऐसी रक्षा कवच सिद्ध हो सकती है, जैसी कोई भी नहीं हो सकती।" उनका कहना था कि "हिंदुस्तान की तमाम भाषाएँ नागरी में लिखी जाएँ, तो उससे बहुत लाभ होंगे। इससे एक-दूसरे की भाषा सीखने में बहुत मदद होगी। आज कई भाषाएँ नागरी में लिखी जाती हैं। नेपाली भी नागरी में ही लिखी जाती है। गुजराती लिपि भी नागरी लिपि का ही एक रूप है। नागरी के ऊपर की शिरोरेखा हटते ही वह गुजराती बन जाती है। इसमें दो-चार अक्षरों का फर्क है। उसे वे लोग बदल देंगे, तो यह लिपि भी नागरी ही बन जाएगी। हिंदुस्तान की एकता के लिए इस बात की बहुत आवश्यकता है।" उनका कहना था कि "सारे भारत को एक रखने के लिए उन्हें जितने स्नेह-बंधनों से बांध सकते हैं, उतने स्नेह-बंधनों की आज जरूरत है। जैसे हिंदी एक स्नेह तंतु है, उतने ही महत्व का तंतु देवनागरी लिपि हैं।" इसी बात को दोहराते हुए एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था- 'यदि सभी भाषाओं के लिए एक देवनागरी को स्वीकार कर लिया जाए, तो निश्चित ही यह भारत में व्याप्त विविधता की खाई को पाटने का काम कर सकती है।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने कहा था कि "मेरे नेत्र तो वे दिन देखना चाहते हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का ही उपयोग और प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में अपने सभी ग्रंथ नागरी हिंदी भाषा

में लिखे और प्रकाशित किए हैं।" डॉ. मलिक मोहम्मद का मानना है कि "जिस प्रकार से भारतीय एकता के लिए संपर्क भाषा के रूप में हिंदी भाषा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती आ रही है, उसी प्रकार संपर्क लिपि के रूप में देवनागरी की उपयोगिता निर्विवाद है। एक तो विशाल जनसमूह की संपर्क भाषा की लिपि होने के कारण देवनागरी काफी प्रचलन में है, दूसरे वैज्ञानिकता और व्यावहारिकता की दृष्टि से भी वह भारत के जनसमाज के लिए अधिक अनुकूल है।" कोलकाता हाई कोर्ट के जस्टिस शारदाचरण मिश्र के मतानुसार 'केवल देवनागरी ही ऐसी लिपि है, जो समस्त भारत में प्रचलित की जा सकती है।' उन्होंने नागरी को सबसे सुगम, सुंदर एवं व्यापक माना था। वे इसे संसार की समस्त लिपियों में श्रेष्ठ मानते थे। उनकी प्रेरणा से कलकत्ता में 'एकलिपि विस्तार परिषद्' नामक एक परिषद की स्थापना भी की गई थी। इस परिषद् ने एक मासिक पत्रिका 'देवनागर' भी निकाली थी, जिसमें भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं के लेख देवनागरी में छपते थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में - "देवनागरी को समूची भारतीय भाषाओं के लिए अतिरिक्त लिपि के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। इससे एक राज्य के निवासी दूसरों की भाषाएँ आसानी से सीख सकेंगे, क्योंकि असली कठिनाई भाषा की उतनी नहीं, जितनी लिपि की है।" डॉ. राजेंद्र प्रसाद का कहना था कि "कुछ लोग यह भी सुझाव रखते हैं कि नागरी की बजाय रोमन लिपि को ही स्वीकार कर लेना चाहिए। यह सुझाव सिद्धांततः उचित नहीं है, यदि रोमन लिपि को ही स्वीकार करना उचित समझ लिया जाए, तो स्वतंत्रता की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। विदेशी राज्य से भी काम चल सकता था, क्योंकि डेढ़ सौ वर्षों से तो चल ही रहा था। इसलिए नागरी लिपि ही संपूर्ण देश को एक भाषा मंच पर लाकर खड़ा कर सकती है।" उनका कहना था कि "भारत की प्रत्येक भाषा की सुंदर, आनंदप्रद कृतियों का स्वाद भारत के अन्य प्रदेश के लोगों को कैसे करवाया जाए, इस बारे में यह उचित होगा कि प्रत्येक प्रदेश की भाषा की साहित्यिक संस्थाएँ उस भाषा की कृतियों को देवनागरी में भी छपवाने का आयोजन करें। समान लिपि के रूप में देवनागरी का प्रयोग

अधिक उपयोगी होगा। देवनागरी के पक्ष में सबसे बड़ी बात यह है कि संस्कृत का समस्त साहित्य देवनागरी लिपि में है।" उनका यह भी कहना था कि "आज हिंदुस्तान में नागरी और उससे मिलती-जुलती लिपियाँ भिन्न-भिन्न भाषा-क्षेत्रों में प्रचलित हैं, परंतु स्वरूप में भिन्न होने पर भी भारत की सभी भाषाओं की वर्णमाला तथा ध्वनि-पद्धति एक ही है। अतः देश के पढ़े-लिखे लोग नागरी लिपि सीख जाएँ, तो भारत में एक सामान्य लिपि का रास्ता खुल जाएगा।"

देवनागरी की वैज्ञानिकता के बारे में सेठ गोविंददास ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए थे- "हमारी देवनागरी इस देश की ही नहीं, समस्त संसार की लिपियों में सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है। हमारी लिपि में स्वरों और व्यंजनों का जैसा वैज्ञानिक पृथक्करण है, वैसा अन्य लिपियों में नहीं। हर विषय की शिक्षा हमारी लिपि के द्वारा जितनी सुगमता से दी जा सकती है, उतनी अन्य किसी लिपि के द्वारा नहीं। फिर हमारी लिपि संस्कृत लिपि होने के कारण अन्य प्रांतीय भाषाओं की लिपियों के जितनी सन्निकट है, उतनी अन्य कोई लिपि नहीं। मराठी में तो इस लिपि का उपयोग होता है, गुजराती लिपि और हिंदी की लिपि में भी अधिक अंतर नहीं और बंगला लिपि के भी अधिकांश अक्षर नागरी लिपि से मिलते-जुलते हैं। इतना ही नहीं, बर्मा, सिंहल, मलाया, श्याम, हिंदेशिया और हिंदी-चीन आदि की वर्णमालाएँ भी प्रायः देवनागरी वर्णमाला के ही समान हैं। फिर भी आधुनिक काल में उसमें थोड़े-बहुत सुधारों की आवश्यकता है। विशेषज्ञों की राय से इन सुधारों को अवश्य ही स्वीकार कर लेना चाहिए। इस दिशा में हम संकुचित वृत्ति न रखें।

नागरी लिपि के संबंध में आचार्य नरेंद्र देव का विचार था- "नागरी लिपि ही हमारे देश की सर्वमान्य लिपि हो सकती है, किंतु प्रयत्नों की कमी के कारण इस दिशा में हमारे देश के विद्वान, शासक या व्यवसायी लोग कुछ विचार नहीं कर रहे हैं। प्रायः लोगों को यह मालूम नहीं कि प्रांतीय लिपियों की अपेक्षा नागरी लिपि की छपाई अधिक आसानी से हो सकती है और सस्ती भी है। नागरी ज्यादा वैज्ञानिक और स्वयंपूर्ण है और स्वयंपूर्ण अक्षर का होना ही उसकी सफलता का मुख्य कारण है।" नागरी के राष्ट्रीय पक्ष को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा,

"भारतीय राष्ट्रसंघ के विभिन्न प्रांतों में व्यवहृत होने वाली भाषाओं की लिपियाँ भिन्न अवश्य हैं, किंतु बोलने वालों की दृष्टि से हिंदी भाषा और नागरी लिपि का विश्व में चौथा स्थान है। भारत की कतिपय अन्य लिपियों से सादृश्य होने के कारण इसके प्रसार की संभावना और भी अधिक प्रतीत होती है। जहाँ तक तेज लिखने की बात है, कई लिपियों में यह गुण नागरी से अधिक अवश्य है, तो नागरी में इनकी अधिकता स्पष्ट प्रतीत होती है।"

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन का मानना था- "संसार की कोई लिपि यदि सर्वाधिक पूर्ण है, तो एकमात्र देवनागरी ही।" महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता स्वयं सिद्ध" बताई, राहुल सांकृत्यायन ने इसे "दुनिया की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि" कहा और जॉन क्राइस्ट ने इसे "मानव मस्तिष्क से निकली हुई वर्णमालाओं में सबसे अधिक पूर्ण वर्णमाला" बताया।

डॉ. एम.एस. दक्षिणामूर्ति का कथन है- "एक भाषा के लोग दूसरी भाषा को सीखना चाहते हैं, तो कभी-कभी लिपि बाधक होती है। एक सामान्य लिपि के स्वीकरण द्वारा इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में देवनागरी लिपि की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।" डॉ. रामप्रकाश सक्सेना का मानना है कि "यदि भारत की सभी भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाएँ, तो इससे देश में भावनात्मक एकता बढ़ेगी और ज्ञान के क्षेत्र में भी संपूर्ण लाभ होगा। इसके लाभ निकट भविष्य में चाहे कम दिखाई दें, पर दीर्घकाल में बहुत होंगे।" डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का विचार है कि "भारत की सभी लिपियाँ देवनागरी लिपि की स्वगोत्र या कौटुंबिक लिपियाँ ही सिद्ध होती हैं। वास्तव में स्वभावतः देवनागरी ही भारत की एकमात्र राष्ट्रीय लिपि है। साथ ही, उसमें निहित उसके गुण भी बिल्कुल प्रत्यक्ष हैं।"

डॉ. कुंज बिहारी वार्ष्णेय का कहना है कि "प्राचीन काल से नागरी लिपि का संबंध बहुत सी भाषाओं के साथ होने के कारण नागरी लिपि देश की प्रमुख और व्यापक लिपि रही है। नागरी लिपि अपनी अनेक मर्यादाओं के बावजूद दूसरी लिपियों की अपेक्षाकृत अधिक गुणयुक्त और वैज्ञानिक है।" पंडित कलानाथ शास्त्री का निष्कर्ष है कि "भाषाशास्त्रीय प्रतिमानों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि नितांत वैज्ञानिक, अधिकाधिक

पूर्ण और समृद्ध है।" डॉ. रघुत्तम राव का मानना है कि "देवनागरी लिपि ही एकमात्र ऐसी लिपि है जिससे समूचे देश में अधिक लोग परिचित हैं।" सुश्री निर्मला देशपांडे के शब्दों में 'देवनागरी दोहरा काम कर सकती है, प्रेम का और ज्ञान का। दिलों को जोड़ने का और ज्ञानवर्धन का। (देवनागरी के राष्ट्रलिपि के रूप में अपना लिए जाने से हम) अनेकों भ्रांतियों को छोड़कर एक-दूसरे की भाषा को सीख सकेंगे, एक-दूसरे के साहित्य से लाभ उठा सकेंगे।"

इस प्रकार, देश के भिन्न-भिन्न विद्वानों, समाज-सुधारकों, राजनीतिज्ञों आदि ने देवनागरी को ही राष्ट्रलिपि बनाने पर बल दिया है और इस हेतु इसके कुछ गुणों का भी वर्णन किया है। आइए, देखते हैं कि आदर्श लिपि अथवा राष्ट्रलिपि में क्या-क्या गुण होने चाहिए और देवनागरी उन गुणों पर कितनी खरी उतरती है।

**( ख ) आदर्श राष्ट्रलिपि में अपेक्षित गुणों के संदर्भ में देवनागरी की परिपूर्णता**

देवनागरी भारत के बहुत बड़े भू-भाग में व्यवहार में लाई जाने वाली लिपि है। इसी बात को देखते हुए दिनांक 10 अगस्त से 12 अगस्त, 1961 तक दिल्ली में हुए मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया था- "भारत की सब भाषाओं के लिए एक लिपि होनी वांछनीय है। यह सब भाषाओं में मेल-जोल बढ़ाने के लिए कड़ी बन सकेगी। यह देश की एकात्मकता को मजबूत करने में भी सहायक सिद्ध होगी। भारत के आज के भाषा-विषयक वातावरण में एकमात्र देवनागरी लिपि ही यह स्थान ग्रहण कर सकती है। इस लिपि को तत्काल मान्यता प्रदान करने में बाधाएँ आ सकती हैं, पर भविष्य में इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए और इसके लिए एक योजना बनानी चाहिए।"

इस प्रस्ताव से देवनागरी लिपि के राष्ट्रलिपि बनने की क्षमता को बहुत बल मिला। परंतु देवनागरी ही राष्ट्रलिपि क्यों? इसके लिए किसी लिपि को राष्ट्रलिपि बनने के लिए आवश्यक गुणों के संदर्भ में देवनागरी के गुणों का विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है :

(1) राष्ट्रलिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग प्रतीक होना चाहिए और वह जैसी लिखी जाए वैसी ही बोली जाए तथा जैसी बोली जाए वैसी ही लिखी भी जाए, ताकि देश के किसी भी भाग में लिखित ध्वनि प्रतीक के बोलने में और उच्चारित ध्वनि-प्रतीक के लिखने में कोई भ्रम न हो। देवनागरी लिपि इस गुण से पहले ही संपन्न है और यही गुण है, जो इसकी वैज्ञानिकता का प्रमुख पहलू है।

(2) **राष्ट्रलिपि दूसरी लिपियों की अधिकतम ध्वनियों के ध्वन्यात्मक (Phonetic) और स्वनिमात्मक (phonemic) प्रतिलेखन (transliteration) में सक्षम हो।** देवनागरी लिपि अपने परिवर्धन के बाद न केवल दूसरी लिपियों में बद्ध भाषाओं की अधिकतम ध्वनियों और स्वनिमों का प्रतिलेखन करने में पूर्ण रूप से संपन्न है, बल्कि इसमें ध्वन्यात्मक और स्वनिमात्मक प्रतिलेखन के गुणों से युक्त आइपीए (international phonetic alphabet) के अनुरूप लेखिम (grapheme) भी हैं। देश की अन्य भाषा-ध्वनियों को लिखने के लिए परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला में 12 स्वरों तथा 36 व्यंजनों के अलावा 12 मात्राएँ, अनुस्वार, विसर्ग, अनुनासिकता चिह्न, हल-चिह्न, अन्य भाषाओं के 8 स्वरों के विशेषक चिह्न और उनकी मात्राएँ तथा अन्य भाषाओं की 18 व्यंजन ध्वनियों के विशेषक चिह्न हैं। इनके अतिरिक्त लिपि में द्वित्व, संयुक्ताक्षरों, आक्षरिकता के साथ-साथ वर्णात्मकता, सर्वाधिक वैज्ञानिकता, आईपीए के मान स्वरों के प्रति अनुरूपता, स्वरीय छटाएँ और स्वर-वर्ण मिश्रण; ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरों; हलंत, विसर्ग, श, ष, स; ध्वनिग्राफ आदि की व्यवस्था, लौखिक-वाचिक संगति, लालित्य, सहजता, सरलता, लेखिमों का नामकरण, उनके उच्चारण मान के रूप में होना आदि गुण भी विद्यमान हैं। देवनागरी में लौकिक संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत, वैदिक भाषाओं, भारोपीय भाषाओं आदि का प्रतिनिधित्व करने वाले ध्वनि संकेत ही नहीं है, बल्कि कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य, ओष्ठ्य, दंत्योठ्य अंतस्थ, ऊष्म आदि उच्चारणिक स्थानों के प्रतीक वर्ण; घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, अल्पप्राण अघोष, अल्पप्राण सघोष, महाप्राण अघोष, महाप्राण सघोष, स्पर्श, संघर्षी, स्पर्श-संघर्षी, अर्ध-स्वर, पार्श्विक, अनुनासिक, अनुस्वारयुक्त आदि समस्त ध्वनि-प्रभेदों तथा विश्व भाषाओं के

ध्वनि-प्रभेदों को अविकल रूप में व्यक्त करने वाले ध्वनि प्रतीक भी हैं। इसमें सघोष महाप्राण, मूर्धन्य, लुंठित, उत्क्षिप्त आदि वे ध्वनि-प्रतीक भी हैं, जो विश्व की अधिकांश भाषाओं में नहीं मिलते। इतने गुणों से संपन्न देवनागरी देश-विदेश की हर ध्वनि को प्रकट करने में सक्षम है। डॉ. कामेश्वर वर्मा का तो कहना है कि 'देवनागरी लिपि अतिशय ध्वन्यात्मक लिपि है। इसलिए इस लिपि में वर्तनी की विविधता जिस हद तक कयामत ढा सकती है, उस हद तक किसी और लिपि में नहीं।"

(3) **राष्ट्रलिपि की ध्वनि-व्यवस्था अन्य लिपियों से मिलती-जुलती हो।** देवनागरी लिपि जहाँ हिंदी, संस्कृत, मराठी, आधुनिक सिंधी, पालि, नेपाली, गुजराती आदि भाषाओं के लिए पहले ही काम में ली जा चुकी है, वहीं पंजाबी, बंगला, असमिया, ओडिआ, कन्नड, तेलुगू, मलयालम आदि भाषाओं की लिपियों की वर्णमाला और ध्वनि-व्यवस्था देवनागरी लिपि जैसी ही है और लगभग उसी क्रम में व्यवस्थित है।

(4) **राष्ट्रलिपि का रूप चिर-प्रचलित हो, ताकि वह देश के अधिकतर भू-भाग में पहले ही जानी-पहचानी हो।** देवनागरी इस कसौटी पर भी खरी उतरती है। इसका उद्‌भव दसवीं शताब्दी में हुआ था और इसका वर्तमान रूप पंद्रहवीं-सोलहवीं शताबदी में स्थिर हो चुका था। इस प्रकार देवनागरी देश के अधिकतर भू-भाग में जानी जाने वाली लिपि है।

(5) **राष्ट्रलिपि का संबंध देश की किसी एक ही भाषा से न हो, बल्कि वह देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में पहले ही व्यवहृत हो।** देवनागरी लिपि इस अपेक्षा को भी पूरा करती है। इस लिपि में देश की मराठी, हिंदी, संस्कृत, नेपाली, बोडो, डोगरी, सिंधी, कोंकणी आदि भाषाएँ तथा अवधी, ब्रजभाषा, बघेली, छत्तीसगढ़ी, बुंदेलखंडी, मगही, मैथिली, बांगरू, राजस्थानी, खड़ी बोली, डोगरी आदि बोलियाँ पहले ही लिखी जा रही हैं। इसके अतिरिक्त पंजाबी, गुजराती, बंगला और असमिया लिपियाँ देवनागरी से साम्य रखती हैं तथा उन प्रदेशों के लोग देवनागरी से भली-भांति परिचित हैं। साथ ही, देश के अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी यह एक जानी-पहचानी लिपि है। इतना ही नहीं, देश के बाहर

नेपाल, पाकिस्तान, बर्मा, मॉरीशस, फिजी, जावा, सुमात्रा, बांग्ला देश, आदि देशों में इस लिपि को जानने वालों की संख्या बहुत अधिक है। इस प्रकार इस लिपि का व्यवहार क्षेत्र न केवल देश में, बल्कि विदेशों में भी दूर-दूर तक है।

(6) **राष्ट्रलिपि के वर्ण शब्द में प्रयोग के बाद विश्लेष्य हों।** देवनागरी आक्षरिक लिपि होने के कारण इसमें आक्षरिकता के सभी गुण तो हैं ही, साथ ही संयुक्ताक्षरों, संधियों, द्वित्वों आदि में भी इसके वर्ण अविश्लेष्य नहीं हैं और उनको वर्णात्मक लिपि की भांति पृथक-पृथक करके देखा जा सकता है। इससे भाषा में प्रयुक्त शब्द का विश्लेषण करने, उसका अर्थ निश्चित करने अथवा जानने और नए शब्द बनाने में सहायता मिलती है। आक्षरिक होने के कारण इस लिपि में कर्ण-ग्राह्य और नेत्र-ग्राह्य माध्यमों में संगति रहती है। इस प्रकार देवनागरी लिपि, लिपि के सभी गुणों से संपन्न होने के साथ-साथ ध्वनि-विश्लेषण में भी सुकर है।

(7) **राष्ट्रलिपि के साथ देश के अधिकांश लोगों का भावनात्मक संबंध हो।** देवनागरी लिपि देश के लोगों से भावनात्मक स्तर पर एकाकार है। देश के प्रसिद्ध धर्मग्रंथ वेद, महाभारत, रामायण, पुराण, स्मृतियाँ आदि भाषिक शिल्प के अनुष्ठान शाकुंतलम्, मृच्छकटिक, कादंबरी, अष्टाध्यायी, नाट्यशास्त्र आदि, आयुर्वेदीय अध्ययन चरक संहिता आदि सभी संस्कृत में हैं, जो देवनागरी लिपि में है। वैसे भी देश की सभी भाषाओं का साहित्य किसी न किसी रूप में संस्कृत का ऋणी है। इसके अतिरिक्त यह लिपि ब्राह्मी (ब्रह्मा द्वारा बनाई गई) लिपि की वंशजा होने की अनुभूति भी कराती है तथा देवभाषा संस्कृत को रूपायित करने वाली होने के कारण इसके व्यवहारकर्ताओं को धार्मिक गौरव भी प्रदान करती है। इन कारणों से देश के लोग न केवल देवनागरी लिपि को जानते हैं, बल्कि इससे उनका धर्म, संस्कृति, भाषा आदि के स्तर पर भावनात्मक संबंध भी है। इस प्रकार यह लिपि सामासिक भाषिक संस्कृति की संवाहिका तथा राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान बन गई है।

(8) **राष्ट्रलिपि लेखन और वाचन दोनों दृष्टियों से सहज हो।** देवनागरी लिपि दोनों ही तरह सहज है, क्योंकि इसमें वर्तनी संबंधी झंझट नहीं

रहता और शब्दों की स्पेलिंग या उनका उच्चारण याद नहीं रखना पड़ता, क्योंकि इसमें जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है, वैसा ही बोला जाता है।

(9) **राष्ट्रलिपि त्वरा-लेखन के अनुकूल हो।** देवनागरी लिपि में सहजता, सरलता, पूर्ण लैखिक-वाचिक संगति, पूर्ण वैज्ञानिकता, वर्णात्मक लिपि के गुणों के साथ-साथ आक्षरिकता के गुणों से युक्तता तथा अनुस्वार एवं अनुनासिक चिह्नों, शुद्ध व्यंजनों, सभी भाषा-ध्वनियों के प्रतीकों, मात्राओं एवं द्वित्वता की व्यवस्था होने के कारण इसमें कुछ याद रखना और रटना नहीं पड़ता तथा लिखते समय वर्तनी आदि के बारे में कुछ सोचना नहीं पड़ता जिससे इसमें तेजी से लिखा जा सकता है।

(10) **राष्ट्रलिपि संकीर्णतावादी न होकर विकासवादी होनी चाहिए।** देवनागरी लिपि पूर्णतः विकासवादी है। सर्वप्रथम तो ब्राह्मी, गुप्त, कुटिल आदि से विकसित होने के कारण इसका स्वरूप ही विकासवादी है। दूसरे, आधुनिक युग की ध्वन्यात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसने हाल ही में अपने कुछ वर्णों के रूप में परिवर्तन किया है और कुछ नए स्वरों तथा व्यंजनों के विशेषक चिह्न शामिल किए हैं। इस प्रकार, यह लिपि समय के साथ अपने रूप में परिवर्तन और परिवर्धन करती रहती है और विश्व की सभी ध्वनियों को सटीक अभिव्यक्ति देने के लिए प्रयासरत रहती है।

(11) **राष्ट्रलिपि टंकण, मुद्रण, कंप्यूटर और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में प्रयोग के अनुकूल तथा सहज हो।** देवनागरी लिपि इन गुणों से भी संपन्न है। इसके टाइपराइटर तथा टेलीप्रिंटर की-बोर्ड को पहले ही अंतिम रूप दिया जा चुका है, कंप्यूटर का की-बोर्ड भी अंतिम रूप दिए जाने की अवस्था में है तथा पेजर, इंटरनेट, वेबसाइट आदि अन्य माध्यमों में भी इसका उपयोग सुगमता से किया जा सकता है। स्वनिमिक लिपि होने के कारण यह कंप्यूटर आदि के फोनेटिक की-बोर्ड के बहुत अनुकूल है।

**(ग) भाषाओं की परस्पर सन्निकटता प्रकट करने में सक्षम**

भारत की भाषाएँ परस्पर इतनी सन्निकट हैं कि यदि उन्हें देश में सर्वाधिक जानी-पहचानी लिपि देवनागरी में लिखा जाए, तो एक भाषा के अनेक

शब्दों से दूसरा भाषा-भाषी अपने आपको परिचित महसूस करता है और तब वह भाषा उसके लिए नितांत अपरिचित नहीं लगती। उसे यह भाषा उसकी अपनी ही भाषा जैसी लगती है, क्योंकि लिपि रूप बदलने से उस भाषा के शब्द दूसरी भाषा के शब्दों से उसी प्रकार एकाकार हो गए लगते हैं, जैसे कोई वेश-भूषा बदलकर दो रूप बना ले इस प्रकार देवनागरी देश की भाषाओं की परस्पर सन्निकटता प्रकट करने में सक्षम है। कारण यह है कि देवनागरी में देश में उच्चारित सभी स्वनिमों के लेखिम हैं, जिनके माध्यम से वह उन्हें सही-सही रूप में प्रकट करके उनके सही रूप को सामने ला देती है। इस बात को देश की कुछ भाषाओं के शब्दों को देवनागरी में लिप्यंतरण से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है :

ज्योति प्रसाद आगरवाला की असमिया कविता-

| | |
|---|---|
| *हे मोर सकलो शत्रु* | *हे मेरे समस्त शत्रुओ!* |
| *तोक नमस्कार....* | *तुम्हें नमस्कार।* |
| *तोक बंधु रूपहे चाओं* | *तुम्हें मैं बंधु रूप में चाहता हूँ।* |
| *तोरे सते मोर* | *तुम्हारे साथ संघात (संघर्ष)* |
| *संघात लागि* | *से मैं जीवन में* |
| *मोर जीवन ते* | *नया प्रकाश पाता हूँ!* |
| *धुनीया प्रकाश पाओ* | |

रवींद्रनाथ टैगोर की 'मानसी' पुस्तक की 'सूरदासरे प्रार्थना' से-

*अपार भुवन, उदार गगन, श्यामल काननतल*
*वसंत अति मुग्ध मूरति, स्वच्छ नदीर जल*

गुजराती कवि नरसिंहराव भोलानाथ की 'हृदय वीणा' कविता से-

*सुंदर शिव मंगल गुण गाऊं ईश्वरा*
*विभुवर भव भय हारक नमुं महेश्वरा*

ओडिआ कवि मधुसूदन राव की कृति 'भारत भावना' से-

*एहि कि से पुण्य भूमि भुवन-विदित,*
*सविस्तीर्ण रंगभूमि आर्य-गौरवार?*

*एहि कि भारत, यार महिमा, संगीत–*
*गंभीर–झंकारे पूर्ण दिग–दिगंतर?*
डॉ. बदरीनाथ कल्ला की एक कश्मीरी कविता से–
*म्योन भारत छुय महान, म्योन भारत हुय महान*
*यिछु सानुय पासबान, यिछु सोनुय गुलिस्तान*
हिंदी रूपांतरण–
*मेरा भारत है महान, मेरा भारत है महान*
*यह हमारा पासवान, यह हमारा गुलिस्तान*
कन्नड़ कवि कुमार वाल्मीकि की कविता से–
*सुकविग सुम्मान सूरि प्रकर दमलज्ञान मुनिकर*
*मुकुर गुणिगलिगे मूढ़ निधि सुरसरि सुधाशरधि*
मलयालम रचनाकार नपियार विरचित 'तल' कथक से–
*शरण मद मंदननाकिय, वरण वदनन् जनाशुभ–*
*वारण निपुणन समदासुर रिपु, वारण सेवित चरण सरोजन*
तेलुगू रचना 'पोतत्र महाभागवतुम' से–
*बाल रसाल साल नव पल्लव कोमल काव्य कान्याकन्*
*कू किच्चि यप्पडुमु गूडु मुंजिंचुट कटे सत्कबुल*

**( घ ) अन्य भाषा-साहित्य के लिप्यंतरण में सक्षम**

नागरी लिपि के माध्यम से अंग्रेजी भाषा लिखने के सहस्त्रों उदाहरण हैं। उद्धरणों को प्राय: नागरी लिपि में देने का प्रचलन प्रारंभ हो गया है। नागरी लिपि के माध्यम से अंग्रेजी भाषा पढ़ाने के प्रयोग भी हुए हैं। यह प्रयोग ज्ञान प्रबोधिनी युवती प्रशाला, पुणे, महाराष्ट्र ने किया है।

भारतीय भाषाओं के साहित्य को नागरी लिपि में लिप्यंतरित करने तथा वे भाषाएँ नागरी हिंदी माध्यम से सिखाने के लिए स्वयं शिक्षक व बालपोथियाँ बनाने का काम पर्याप्त अंशों में किया जा चुका है। भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ; भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली; साहित्य अकादमी, दिल्ली; भाषा विभाग, चंडीगढ़; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा; नागरी लिपि परिषद्, राजघाट, नई दिल्ली; दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास; सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी; निखिल

भारतीय भाषापीठ, जयपुर; के. एम. हिंदी इंस्टीट्यूट, आगरा; केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा; संथाल पहाड़ियाँ सेवा मंडल, देवधर, बिहार आदि का नाम उल्लेखनीय है। भुवनवाणी ट्रस्ट ने माधव कंदली रामायण (असमिया); कृतिवास रामायण (बंगला), रामचरित मानस (ओडिआ), वैदेही विलास (ओडिआ), जगमोहन रामायण (ओडिआ), भानुभक्त रामायण (नेपाली), रामावतार चरित (कश्मीरी), गिरधर रामायण (गुजराती), श्रीराम विजय (मराठी), रंगनाथ रामायण (तेलुगू), मौल्ल रामायण (तेलुगू), रामचंद्र चरित पुराणम् (कन्नड), भावार्थकृत रामायण (मराठी) आदि रचनाएँ नागरी लिपि में प्रकाशित की हैं। फारसी ग्रंथ सिर्र-ए-अकबर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, केठ, प्रश्न, मुंडक, ऐतरेय और श्वेताश्वर उपनिषदों का भाष्य) का नागरी लिपि में प्रकाशन हुआ है। गुरमुखी में लिखित गुरुग्रंथ साहिब के अतिरिक्त बाइबल, कुरान आदि का भी नागरी लिप्यंतरण किया जा चुका है।

भारत में ऐसी बहुत-सी बोलियाँ हैं, जिनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा को इन बोलियों के लिए देवनागरी पुस्तक प्रकाशन में पर्याप्त सफलता मिली है। पूर्वांचल की कूकी, खासी, मिजो, मिकिर, हमार, मणिपुरी, त्रिपुरी, बोडो, लेपचा, नगामी, भोटी, मीरी, नेपाली, हो, संथाली आदि 40 बोलियों की प्रारंभिक पुस्तकें, शब्दावलियाँ तथा स्वयं शिक्षक पुस्तकें ब्रजबिहारी कुमार के संपादन में नागरी में प्रकाशित हो चुकी हैं। मध्य प्रदेश के गोंड, भील आदि लोगों की भतरी, भीलाली, भीली, गोंडी, हलबी, खरिया, कोकू, कोरवा मुरिया, धूर्वा आदि चौबीस लिपिहीन बोलियों में से कुछ के लिए नागरी लिपि का व्यवहार होता है। अंडमान निकोबार में अंडमानी, अंग, शौम्पेन तथा निकोबारी भाषाओं में नागरी माध्यम से पुस्तकें लिखने का काम हुआ है। डॉ. रामकृपाल तिवारी ने शौम्पेन हिंदी शब्दावली तथा डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी ने अंडमान तथा निकोबार के आदिवासियों की बोली पर पुस्तक प्रकाशित की है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह देखने में आता है कि देश के अनेक राजनीतिज्ञों, शिक्षाविदों, समाज-सुधारकों, न्यायविदों आदि ने अपने विचार एक राष्ट्रलिपि के पक्ष में व्यक्त किए हैं। इस बारे में सभी ने देवनागरी लिपि का

समर्थन किया है। देवनागरी लिपि ही ऐसी लिपि है, जो पूरी तरह से वैज्ञानिक, आदर्श, राष्ट्रलिपि के अपेक्षित गुणों से युक्त तथा देश की भाषाओं और लिपियों के लेखिमों और उनकी स्वानिक सन्निकटता प्रकट करने में सक्षम है। इसमें लिखित-वाचिक संगति, दूसरी लिपियों की अधिकतम ध्वनियों के ध्वन्यात्मक और स्वनिमात्मक प्रतिलेखन में सक्षमता, अन्य लिपियों से मिलती-जुलती ध्वनि-व्यवस्था, देश की अनेक भाषाओं में चिरकाल से व्यवहृत रहने, वाचन, त्वरा लेखन, इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में सुकर प्रयोग संबंधी गुण तथा वर्णात्मक लिपि के गुणों के साथ-साथ आक्षरिक लिपि के भी सभी गुण हैं। परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला में वे सभी आवश्यक ध्वनि-प्रतीक हैं, जो देश-विदेश के स्वनिमों को सही-सही रूप दे सकते हैं। यही ऐसी लिपि है, जिसके बहुत से वर्ण या तो अन्य लिपियों के उन्हीं वर्णों से अथवा किन्ही अन्य वर्णों से मिलते-जुलते हैं। ध्वनिक स्तर पर यह लिपि देश की अन्य लिपियों के और भी अधिक निकट है। देवनागरी को छोड़कर देश की अन्य लिपियाँ अपनी रचना-प्रक्रिया आदि में संकीर्णतावादी तथा रूढ़िबद्ध हैं। इन लिपियों की संरचना प्रायः एक ही भाषा के लिए की गई होती है और इस प्रकार ये एक-आयामी तथा यथास्थितिवादी हैं। प्रयोग स्तर पर रूढ़ होने के कारण ये लिपियाँ प्रकार्य स्तर पर भ्रांतिजनक हैं। इनके विपरीत देवनागरी लिपि की संरचना सहज, सरल, लचीली, लालित्यपूर्ण, आकर्षक, पद्धतिबद्ध और विकासवादी होने के कारण देश तथा काल-भेद से उच्चारण और लेखन की परिवर्तित आवश्यकताओं को पूरी तरह प्रकट करने में सक्षम रही है। अन्य लिपियों में अनुरक्षण की भावना तो रही है, परंतु वे विकासवादी नहीं रहीं। दूसरी ओर देवनागरी लिपि अनुरक्षित लिपि रहने के साथ-साथ सर्वस्पर्शी भी बनी रही। यही कारण है कि यह सभी राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय भाषिक अभिव्यक्तियों को सही-सही रूप देने में सक्षम है।

इस लिपि में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक के सभी लैखिमीय तत्व मौजूद हैं। इसमें नाग भाषाओं का ङ, प्राकृत अपभ्रंश का ण, मराठी का मूर्धन्य पार्श्विक ळ, नासिक्य लिपि चिह्न, द्रविड़ भाषाओं के ह्रस्व ए, ओ, ट, ठ, ड, द; कश्मीरी भाषा के विशिष्ट स्वर और व्यंजन तथा सिंधी अंतःस्फोटी

व्यंजन के अलावा तमिल, मलयालम, बंगला, असमिया, उर्दू, फारसी, अरबी, रोमन आदि अनेक भाषाओं के ध्वनि तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीक है। इतना ही नहीं, घ, ध, भ सघोष महाप्राण ध्वनियाँ केवल देवनागरी का ही लक्षण हैं। अपने विकास-क्रम के माध्यम से इसने समय-समय पर सजातीय तथा विजातीय हर प्रकार के ध्वनि-प्रतीकों को अपने में समाविष्ट किया है। इस प्रकार देवनागरी लिपि ही ऐसी लिपि है, जो सामाजिक समरसता की द्योतक है और आदर्श राष्ट्रलिपि के सभी गुणों से संपन्न है।

– 46/22, गांधी नगर, पिंक इंडिया के पीछे, पटौदी रोड, गुड़गांव,
हरियाणा-122001

❑❑❑

# पूर्वोत्तर की भाषाओं पर हिंदी का प्रभाव

**डॉ. रामचंद्र राय**

भारत के उत्तरी-पूर्व सीमा पर अवस्थित एक राज्य है जिसे असम कहा जाता रहा है। इस असम राज्य को तीन ओर से विदेशी राष्ट्रों ने घेर रखा है। पश्चिमी सीमा का अधिकांश भाग बांग्लादेश से घिरा हुआ है। इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से इसका महत्व अत्यधिक है। इसका कुल क्षेत्रफल 85,012 वर्गमील है। असम पूर्वकाल से ही प्रकृति प्रधान देश रहा है। यहाँ के जन-जीवन का संबंध नदी-पर्वत आदि के साथ ही रहा है। प्रकृति उसके जीवन में कभी आशीर्वाद तो कभी अभिशाप बनकर आती है। यहाँ भूचाल होता है। बाढ़ आती है। भौगोलिक दृष्टि से यह भूमिभाग शेष भारत से अलग-थलग रहा है। यहाँ के मौसम में भी नमी रहती है। इन सबका प्रभाव पूर्वोत्तर की भाषा पर होना स्वाभाविक ही है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका प्रभाव पूर्वोत्तर की बोलियों/भाषाओं के उच्चारण में भी दिखाई पड़ता है। असमी में **स** का उच्चारण **ह** और **च** का उच्चारण **स** होता है। पूर्वोत्तर के प्रदेशों में संस्कृत के शब्दों, ध्वनियों आदि का उच्चारण भी अपने अनुकूल बना लिया गया है। पूर्वोत्तर की कुल आबादी के करीब सत्तर प्रतिशत लोग असमी भाषा ही बोलते हैं।

संस्कृत के असम का अंग्रेजी रूप असाम है। असमी भाषा में भी असम को असाम या अहोम ही कहा जाता है जिसका अर्थ अतुलनीय अथवा असमान माना जा सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि अहोम राजा के नाम पर ही असम नाम पड़ा है। असम के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. सूर्यकुमार भुइंया एवं डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार अ-शान से यह नाम पड़ा है। अर्थात् तेरहवीं

शती में अहोम शासक-वर्ग जब शान (बर्मा) देश से यहाँ आए तब यहाँ के लोगों को अ-शान कहा जाता था और आगे चलकर इस अंचल का नाम भी अ-शान, अ-शाम-आसाम फिर असम पड़ा। कुछ लोग इस नाम के साथ महाभारत के अश्म अंचल को संबोधित करना चाहते हैं। किंतु अहोम के आगमन से पूर्व इस अंचल का नाम कामरूप और प्रागज्योतिष था। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपनी कामरूप भ्रमण के विवरण में इस अंचल का नाम काम-लुप उल्लेख किया है। असम का महाभारत, रामायण, रघुवंश, योगिनी तंत्र आदि में भी इस अंचल का उल्लेख मिलता है। इस अंचल में वाणासुर, नरकासुर, घटोत्कच, बब्रवाहु आदि अनेक पौराणिक महाप्रतापी असुर अथवा किरातराज हुए हैं। श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी के अतिरिक्त उषा, चित्रलेखा, हिडिंबी, चित्रगंदा आदि महिषी नारियों की जन्मभूमि भी कामरूप साम्राज्य ही मानी जाती है।

इस प्राचीन क्षेत्र विशेष को प्रशासनिक सुविधा के लिए सन् 1972 ई. में भाषाई आधार पर छोटे-बड़े सात राज्यों में विभाजित कर दिया गया है। ये राज्य- असम, मेघालय, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा हैं। इन्हें सात बहिनी (Seven Sisters) राज्य से भी संबोधित किया जाता रहा हैं। किंतु सन् 2000 ई. में सिक्किम का भारत में विलय हो जाने के बाद, यह राज्य, पूर्वोत्तर के आठवें राज्य के रूप में संबोधित किया जाता है। आजकल पूर्वोत्तर भारत के इन राज्यों को आठ बहिनी (Eight Sisters) के नाम से संबोधित किया जाता है। ये राज्य राजनैतिक दृष्टि से अलग-थलग होने के बाद भी नृविज्ञान, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से असम का ही अंग माना जाता है।

भौगोलिक दृष्टि से इन राज्यों को 1. ब्रह्मपुत्र घाटी, 2. बराक घाटी एवं 3. पार्वत्य अंचल तीन भागों में विभाजित किया गया है।

1. ब्रह्मपुत्र घाटी के अंतर्गत चौबीस समतल जिले हैं। 2. बराक घाटी के अंतर्गत वर्तमान में केवल कछाड़ सहित तीन जिले ही अवस्थित हैं। यह एक ओर बांग्लादेश और शेष तीन ओर पहाड़ी राज्यों से घिरा हुआ है। 3. पार्वत्य अंचल के अंतर्गत दो पहाड़ी जिले कार्वी-आंग्लॉग और उत्तर काछाड़ हैं। पूर्वोत्तर की मुख्य नदियों में ब्रह्मपुत्र नदी के अतिरिक्त अलवा, आइ, मनाह पागलदिया,

बेकी, भरली, कपिली, घनशिरि, जोंजी, दिबंग, डिक्रंग आदि चंचल पहाड़ी नदियाँ हैं।

इन राज्यों में भाषा परिवार की- 1. तिब्बती-चीनी 2. आग्नेय एवं 3. भारतीय आर्य तीन भाषाएँ/बोलियाँ एवं साहित्य का प्रचलन हैं। अनुमान है कि भारत में लगभग छह सौ से अधिक भाषाएँ/बोलियाँ प्रचलित हैं। इनमें से एक तिहाई अर्थात् दो-सौ से अधिक भाषाएँ/बोलियाँ पूर्वोत्तर भारत के इन राज्यों में ही प्रचलित हैं। प्रत्येक भाषा/बोली के नाम से न केवल भाषा/बोली का बोध होता है अपितु उससे बोलनेवालों का भी बोध होता है।

तिब्बती चीनी भाषा परिवार के अंतर्गत तिब्बती-बर्मी उप परिवार में बोड़ो (बोरो) समूह की तेरह भाषाएँ (बोरो, गारो, काकबरोक, कार्वी, रियाड, राभा, दिमासा, कछारी, जमातिया, देउरी, कोच, टिपरा और लालुड़) ये सभी भाषाएँ असम में बोली जाती है। भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि बोड़ो भाषा-भाषी का मूल स्थान चीन की याड़ सिक्यांग और ह्वायांगहो नदियों के उद्गम स्थल के बीच एवं चीन के उत्तर-पश्चिम में रहा है। सन् 2001 ई. की जनगणना के अनुसार बोड़ो जनजाति की जनसंख्या 5,09,006 बताई गई है। बोड़ो अपने उप-परिवार की भाषाओं में सबसे विकसित भाषा मानी जाती है। इस भाषा का क्रम विकास सन् 1884 ई. में सिडनी एंगल की पुस्तक The Cacharies से माना जाता है। सन् 1955 ई. में बोड़ो साहित्य सभा ने The Bodo (द बोड़ो) नाम्नी द्विभाषी पत्रिका (देवनागरी और रोमन लिपि) का प्रकाशन आरंभ किया। सन् 1963 ई. में इसे शिक्षा का माध्यम बनाया गया। सन् 2003 ई. में असम के गोवालपारा एवं धुबरी जिले में इसे सह-राजभाषा के रूप में मान्यता मिली। अन्य जनजातियों की भाषा/बोलियों की तरह इसकी अपनी कोई लिपि नहीं थी। ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए बोडो को रोमन लिपि में लिखना आरंभ किया। किंतु बोड़ो भाषियों ने इसे स्वीकार नहीं किया। लिपि को लेकर बहुत तर्क-वितर्क आरंभ हुआ। परिणामस्वरूप इंदिरा गांधी के हस्तक्षेप से सन् 1975 ई. से बोड़ो भाषा देवनागरी लिपि में लिखना आरंभ हुई।

इस उप परिवार की भाषाओं में सबसे कम बोलनेवाले लालुड़ भाषा-भाषी हैं। गारो भाषा असम के अतिरिक्त मेघालय के गारो पहाड़ की भी भाषा है। इसे

भी रोमन लिपि में लिखते हैं। यह भाषा बोड़ो भाषा की तरह विकसित भाषा नहीं है। किंतु जनसंख्या की दृष्टि से गारो भाषा-भाषी दूसरे नंबर पर आते हैं।

इस उप परिवार की तीसरी प्रमुख भाषा कार्वी है जो असम के कार्वी आंग्लांग जिले में बोली जाती है। इस भाषा में लोककथा के रूप में रामायण मिलती है जो **साविनआलुन** के नाम से ख्यात है। साविनआलुन में कार्वी संस्कृति का पूरा परिचय मिलता है। कार्वी आंग्लांग जिला परिषद् ने लिपि के रूप में नागरी लिपि को मान्यता दी है। आजकल पाठ्य-पुस्तकें भी देवनागरी लिपि में ही प्रकाशित होती हैं। नागरी लिपि को अपनाने के फलस्वरूप बोड़ो एवं कार्वी लोगों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य सहज हो गया है।

प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर त्रिपुरा प्रदेश में कई जनजातियाँ निवास करती हैं। बरक जाति उनमें प्रमुख हैं। बरक के अंतर्गत त्रिपुरा प्रदेश की विभिन्न जनजातियाँ आती हैं। जैसे त्रिपुरी (देववर्मा) नोवातिया, रियॉग, जमातिया, मूरासिंह, रूपिनी, कलई और ऊँचाई। कॉकबरक इन्हीं जनजातियों की भाषा कही जाती है। कॉकबरक त्रिपुरा की जनजाति की भाषा है। कॉकबरक भाषा को पहले त्रिपुरी, तिपुरी या तितेराई नाम से जाना जाता था। यह असम के कुछ हिस्सों में भी प्रचलित है। त्रिपुरा की राजभाषा बंगला है। किंतु कॉकबरक को त्रिपुरा राज्य सरकार ने द्वितीय राजभाषा के रूप में मान्यता दे दी है। त्रिपुरा में पाँचवी कक्षा तक हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। इसलिए कॉकबरक को देवनागरी लिपि में लिखने का प्रयास चल रहा है। अभी तक यह भाषा रोमन एवं बंगला लिपि में ही लिखी जाती रही है। बोड़ो समूह की अन्य भाषाएँ, रियाड, राभा, दिमासा, कछारी, देउरी, कोच आदि असम के मैदानी इलाके की जनजातियों की भाषाएँ हैं। असम की राजभाषा असमिया होने के कारण, संपर्क भाषा असमी ही हैं। किंतु हिंदी लगभग सभी समझते-बूझते हैं। यही नहीं, पूरे असम में हिंदी के माध्यम से सहज ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक की यात्रा की जा सकती है। किसी को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है।

असम के पहाड़ी जिले कार्वी-आङ्लाङ् में कार्वी जनजाति के लोग रहते हैं। लालुङ् जनजाति को ही तिवा कहा जाता है। हाजड़ों की आबादी असम के ग्वालपारा, धुबरी, लखीमपुर, धोमाजी आदि क्षेत्रों में फैली हुई है। इसकी भाषा

बंगला और तिब्बती-बर्मी का मिश्रित रूप है। मिशिङ् लोग पहले मिरी के नाम से जाने जाते थे। मिरी का अर्थ सभ्य मानव होता है। मिशिङ् भाषा को तानी आगम भी कहा जाता है। दिमासा कछारी के बहुत सारे गाँव नागालैंड के दीमापुर के आसपास हैं। राभा जनजाति में अगर पिता चाहे तो अपना हिस्सा बेटी को भी दे सकता है। किंतु वास्तविक उत्तराधिकारी बेटा ही होता है। देउरी जनजाति में गंधर्व विवाह की परंपरा है और संपत्ति का उत्तराधिकारी पुत्र ही होता है। सोनोवाल कछारी रेंगमा, हमार आदि जनजातियाँ भी इसे बुरा नहीं मानती हैं। हमार में लड़का-लड़की की सहमति से ही विवाह होता है।

असम के उत्तर-पूर्व में अरुणाचल प्रदेश है। सन् 1962 में भारत-चीन युद्धोपरांत, इस क्षेत्र को सुरक्षा की दृष्टि से नेफा (नॉर्थ ईस्ट फ्रंटीयर एजेंसी) के नाम से केंद्र सरकार के अधीन स्वशासित क्षेत्र घोषित किया गया। किंतु सन् 1972 ई. में भाषाई आधार पर विभाजन के बाद अरुणाचल के नाम से स्वतंत्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आया। अरुणाचल में लगभग छब्बीस बड़ी और एक सौ के आसपास कम जनसंख्यावाली जनजातियाँ निवास करती हैं। इन जनजातियों में मोपा और खामती बौद्ध धर्मावलंबी जनजातियों के पास कुछ लिखित साहित्य है इनकी अपनी लिपि भी है। कुछ जनजातियाँ अपनी लिपि विकसित कर रही है। किंतु इन सबकी संपर्क भाषा हिंदी ही है। यहाँ दूसरी भाषा के रूप में हिंदी को मान्यता प्राप्त है। हिंदी के माध्यम से ही शिक्षा देने के कारण पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्यों से हिंदी की स्थिति अच्छी है। अरुणाचल की संपर्क भाषा हिंदी ही है। अरुणाचल में आदि, न्यीशी, आपातानी, तागिन, मिसमो, नोक्तेबांचो, तांगसा, सिंगफू, मोम्पा, अका, मेवास आदि प्रमुख जन-जातियाँ हैं। यही नहीं राज्य की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या जनजाति की हैं इन जनजातियों की भाषा एवं संस्कृति में काफी विविधता है। मिनियोढ़, गालोड़, पदम, पासी, बोकार आदि जनजातियों के लोग सियाड़ जिले के वासी हैं। खाम्ती, सिंगपो तथा तांगसा लोहित क्षेत्रों में बसे हुए हैं। खाम्ती की टाई लिपि में समृद्ध साहित्य है। इनके यहाँ पिटक हैं। जातक कथाएँ हैं और रामायण और ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। कुछ लोगों का मानना है कि अरुणाचल के नोक्ते तथा बांगचो मूल वाले जब डिब्रूगढ़ गए तब नागा और कूकी भाषाओं के मेल से कार्वी भाषा बनी थी। जिस प्रकार

अरबी, फारसी और हिंदी के मेल से उर्दू बनी है। बाचो और यनासैकते दोनों जातियाँ तिरप में बसी हैं। आपातानी अरुणाचल की अत्यंत विकसित जनजाति है। यह लोअर सुवनसिरी के आसपास बसी हुई है। ये लोग भारतीय मंगोलियन मूल के हैं। इनका समाज पितृसत्तात्मक समाज है। ये लोग चाकू, तलवार, कपड़े बुनने में निपुण होते हैं। इनका हस्तशिल्प बहुत ही लोकख्यात है। न्यीशी जनजाति की संख्या पूरे प्रदेश की जनसंख्या का बीस प्रतिशत है। इनका लिखित साहित्य नहीं है। यह जाति बहुत ही बहादुर और लड़ाकू जाति रही है। ये लोग सूरज और चाँद (दयोना पोला) की पूजा करते हैं जिनसे पूरे ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई है। अरुणाचल में आपस में एक-दूसरे से बोलचाल की भाषा हिंदी ही है।

नागालैंड में पंद्रह मुख्य एवं बीस गौण समुदाय की जनजातियाँ रहती हैं। इनकी सबकी भाषा अलग-अलग है किंतु संपर्क भाषा के रूप में नागामीज का प्रयोग करते हैं जो नागा एवं असमी के मिश्रण से बनी है। आजकल हिंदी का प्रचार-प्रसार धीरे-धीरे बढ़ रहा है। नागालैंड भाषा परिषद लगभग एक सौ पचास से भी अधिक से विभिन्न नागा बोलियों के कोश, शब्द-संग्रह आदि प्रकाशित हुए हैं। नागालैंड में पाँचवीं कक्षा तक हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। यही नहीं, दीमापुर में हिंदी शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना से हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रगति हुई है। पूरे नागालैंड की भाषाओं को भाषा वैज्ञानिकों ने नागा-बोड़ो और नागा-कूकी आदि वर्गों में विभाजित किया है। किंतु नागालैंड की राजभाषा अंग्रेजी है। ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरी मणिपुर राज्य की घाटी, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र का वह भू-भाग है जिसका पौराणिक इतिहास एक ओर अर्जुन और चित्रांगदा की प्रणय लीला से ओत-प्रोत है तो दूसरी ओर इस राज्य की पहाड़ियों के घने जंगलों के आदिवासी स्वयं को उन आदिम जातियों के वंशज बताते हैं जो कभी दक्षिण-पश्चिम चीन में रहते थे एवं वहाँ से जीविकोपार्जन की खोज में इस क्षेत्र में आकर बस गए। सांस्कृतिक मापदंडों के आधार पर मणिपुर को तीन सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। राज्य का मध्य भाग जो समतल एवं घाटियों से बना है वह मैतेयी संस्कृति का गढ़ माना जाता है। राज्य की पूर्वी, उत्तरी तथा पश्चिमी पहाड़ियों में नागा संस्कृति का

वर्चस्व है। दक्षिण की पहाड़ियों में कूकी संस्कृति का बोलबाला हैं। इन तीनों में न केवल सांस्कृतिक विषमताएँ हैं बल्कि भाषा, वेष-भूषा, शारीरिक विशिष्टताओं, रीति-रिवाजों में अनेक विभिन्नताएँ हैं। स्वतंत्र भारत की जनगणना में कुकी और नागा दो आदिवासी जनजातियों का उल्लेख मिलता है। किंतु आज इस राज्य में उनतीस आदिवासी समूहों को भारत सरकार ने संवैधानिक मान्यता दे दी है। मणिपुरी बोलने वालो की संख्या सन् 2001 ई. की जनगणना के अनुसार अठारह लाख रही है। यह कुल आबादी का इकसठ प्रतिशत है। मणिपुर की मुख्य भाषा मैतेलोल, मैतैरोल, मीतैलोन (मणिपुरी) है। मणिपुरी बहुत ही प्राचीन और समृद्ध भाषा है। पहले यह भाषा असमी लिपि में लिखी जाती थी जिसे विष्णुप्रिया कहा जाता था। आजकल विष्णुप्रिया के बदले मैतेइमयेक लिपि में लिखी जा रही है। इसका प्राचीन साहित्य बहुत ही समृद्ध रहा है। मणिपुर में मैतेइ के अतिरिक्त तांगखुल, माओथाडो, कूकी आदि बोलनेवाले के अतिरिक्त बंगला, गोरखा (नेपाली) और हिंदी बोलनेवाले भी हैं। मणिपुर में भी पाँचवीं कक्षा तक हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है।

**मिजोरम** की भाषा मिजो (लुशाई) है। मिजो जनजाति के अतिरिक्त थाड्रो पाइते, गाड़ते, बाइफे बोलने वाली जनजातियाँ भी रहती हैं। किंतु सबकी संपर्क भाषा मिजो है। मिजो का प्राचीन साहित्य नहीं मिलता है। मिजोरम में ईसाई मिशनरियों के आगमन से रोमन लिपि में पढ़ाई-लिखाई आरंभ हुई हैं मिजोरम की अठानवे प्रतिशत जनता ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है। मिजोरम की राजभाषा अंग्रेजी है। मिजोरम में पाँचवीं कक्षा तक हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। किंतु आपस में एक दूसरे से हिंदी में ही वार्तालाप करते हैं।

**मेघालय** में गारो, खासी और जयंतियाँ जनजातियाँ रहती हैं। इसमें खासी ही केवल आग्नेय कुल की मानख्वेर-निकोबार उप वर्ग के अंतर्गत आती है। इस आधार पर भाषा वैज्ञानिक खासी को मेघालय का मूल निवासी नहीं मानते हैं। खासियों को बर्मा से आनेवाली जाति कहा जाता है। खासी की प्रमुख बोलियाँ जयंतियाँ, पनार (सिनतेंग), बार तथा भोई है। खासी और गारो दोनों मातृसत्तात्मक जातियाँ हैं। लेकिन दोनों ही भाषाएँ भिन्न-भिन्न परिवार की हैं। दोनों जनजातियों में संपत्ति की उत्तराधिकारी पुत्री होती है। ये लोग दूध, दही, मक्खन खाने से

परहेज करते हैं। किंतु सभी जानवरों का मांस खाते हैं। मेघालय की राजधानी शिलांग सन् 1872 ई. से लेकर 1972 ई. तक पूरे पूर्वोत्तर राज्य की राजधानी रही है। इसके फलस्वरूप शिलांग और इसके आसपास असमी के साथ हिंदी का चलन बहुत पहले से रहा है। हिंदी का पहला दैनिक समाचार-पत्र सन् 1939 ई. में शिलांग से ही प्रकाशित हुआ था। असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य किया जा रहा है। मेघालय की राजभाषा अंग्रेजी है।

पूर्वोत्तर का **सिक्किम** पूर्णतः पहाड़ी राज्य है। सिक्किम को नेपाल वाले सुखिम कहते हैं। सिक्किम में मूलतः लेप्चा और भूटिया जनजातियों का निवास है एवं इनकी भाषा भी लेप्चा और भूटिया है। दोनों जनजातियों में नस्ल की भी समानताएँ हैं। लेप्चा भाषा का नाम रोंग भी है। लेप्चा, लाप्चो का अपभ्रंश है। लेप्चा लोग मूलतः बौद्ध हैं। लेप्चा के अतिरिक्त यहाँ लिंबू भाषा भी बोली जाती है जो दार्जिलिंग क्षेत्र में भी बोली जाती है। लेप्चा, लिंबू के अतिरिक्त यहाँ गुरुंग, तामांग और राई भाषाएँ भी हैं। तामांग लोग महायानी बौद्ध हैं। इस राज्य में भारत में विलय होने से पूर्व हिंदी का प्रचार-प्रसार नहीं के बराबर था। किंतु भारत में विलय होने के बाद हिंदी के प्रचार-प्रसार में गति आई है। इसमें व्यापारियों, श्रमिकों एवं हिंदी फिल्मों की मुख्य भूमिका है। सिक्किम की राजभाषा नेपाली है।

इस प्रकार देखा जाता है कि पूर्वोत्तर में केवल तिब्बती-चीनी परिवार के उप वर्ग की भाषाओं की ही प्रधानता है। केवल खासी भाषा आग्नेय परिवार की भाषा है। इन दोनों परिवारों के अतिरिक्त असमी, बंगला, हिंदी (ब्रजावली) और चकमा भारतीय आर्य भाषा परिवार की बोलियों/भाषाओं के अंतर्गत आती हैं। चकमा भाषा-भाषी त्रिपुरा में रहते हैं जिनकी संख्या बहुत कम है। इनके अधिकांश लोग बांग्लादेश के चटगाँव जिले में रहते हैं। चकमा जनजाति अधिकांश बौद्ध धर्मावलंबी हैं।

इस प्रकार देखा जाता है कि सन् 1972 ई. से पूर्व संपूर्ण असम की संपर्क भाषा असमी ही थी किंतु विभाजन के बाद हिंदी का महत्व बढ़ा है। असम में बंगला बंगालियों की भाषा है। इन दोनों भाषाओं का साहित्य भी समृद्ध है।

इसलिए असम में असमी के अतिरिक्त बंगला भी वहाँ की राजभाषा है, जिसका क्षेत्र बांगलादेश के सिलहट जिले से सटा हुआ है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में साधु-संतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जिस प्रकार शंकरदेव ने विभिन्न प्रकार के धर्मसंप्रदायों को अपने वैष्णव धर्म के माध्यम से एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया, उसी प्रकार असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में शंकरदेव एवं उनके अनुयायियों का नाम सर्वप्रथम आता है। शंकरदेव ने द्वारका से लेकर बद्रीनाथ तथा रामेश्वरम् तक की पदयात्रा की थी। इस पदयात्रा में उन्होंने उन अंचलों के साहित्य, संस्कृति, सभ्यता और जन-जीवन से अपना संपर्क स्थापित किया था- जिसके फलस्वरूप भारत की भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने के हेतु इन्होंने एक नई भाषा को जन्म भी दिया था- जिसे उस समय के संतों की माध्यम भाषा भी कहा सकता है। यह भाषा केवल उन लोगों के लिए ही सुबोध नहीं बन गई थी अपितु समग्र उत्तर भारत के लोग भी इसे आसानी से समझ पाते थे। शंकरदेव ओर माधवदेव के नाटकों और गीतों में ही साधारणतया प्रयुक्त ब्रजावलि नामक इस भाषा को आगे इतनी लोकप्रियता मिली कि उस काल के खुले रंगमंच की केवल यही एकमात्र नाट्य भाषा बनी। मैथिली-ब्रज-भोजपुरी-असमी मिश्रित ब्रजावलि नामक इस कृत्रिम भाषा में नाटक रचने की यह परंपरा अंग्रेजों के आगमन के बाद तक यानी सन् 1826 ई. तक बनी रही। यही नहीं आज भी इसका मंचन असम एवं उसके आसपास के राज्यों में उसी निष्ठा के साथ हो रहा है। श्री शंकरदेव के इस अवदान के संबंध में असमी लेखक श्री देवकांत बरुआ ने कहा है कि शंकरदेव ने असम को भारत में विलीन कराया और भारत को असम के निकट पहुँचाया। इस प्रकार श्री शंकरदेव के समय से ही असमी और हिंदी भाषा के आदान-प्रदान की एक परंपरा रही है। असमी और हिंदी के विनिमय का एक और अवसर नाथ-पंथियों के साहित्य-साधना के माध्यम से आया था। यह सर्वमान्य है कि नाथ या गोरखपंथी संतों का संबंध असम-कामरूप से ही रहा है। इसलिए इनके पदों में अनेक असमी अथवा असमी के तद्भव शब्दों का प्रयोग मिलता हैं डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी साहित्य उद्भव और विकास' में कहा भी है कि गोरखनाथ के पदों को असमी भाषा में रचित पद ही कहा जाना चाहिए। डॉ.

दशरथ ओझा ने अपने 'हिंदी नाट्य साहित्य का उद्‌भव और विकास' में ब्रजावली भाषा में असम के संतों द्‌वारा रचित नाटकों को हिंदी का आदिनाटक माना है।

इसके बाद, सन् 1918 ई. में हिंदी साहित्य सम्मेलन का इंदौर में अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के लिए महात्मा गांधी को अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया गया था। सम्मेलन में पारित प्रस्ताव के आधार पर भारत में स्वदेशी भावना और भावनात्मक एकता को पुनः संगठित करने के लिए हिंदीतर भाषी प्रदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य आरंभ हुआ। महात्मा गांधी के नेतृत्व में दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार के महान उद्‌देश्य को लेकर एक बड़े आंदोलन का सूत्रपात हुआ। पश्चिम और दक्षिण भारत की यह हिंदी-गंगा सिंचित करने के बाद पूरब की ओर उन्मुख हुई। परंतु पूरब की ओर संगठित रूप से वह नहीं पनपी। पूरब में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कोई अस्तित्व ही नहीं था। उसी समय असम के शिवसागर जिले के एक निःस्वार्थ देशप्रेमी भुवनचंद्र गगै ने सन् 1918 ई. में असम पॉलिटेकनिक इंस्ट्टीयूशन नामक एक विद्‌यालय की स्थापना की। इस विद्‌यालय में देशप्रेम मूलक शिक्षण दिया जाने लगा। उन्होंने इस विद्‌यालय में अन्य विषयों के साथ-साथ हिंदी को भी एक विषय के रूप में रख दिया। इस प्रकार असम में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सन् 1926 ई. से आरंभ हुआ। आरंभ में हिंदी शिक्षक के अभाव में हिंदी के पठन-पाठन में प्रगति नहीं होने के कारण, सन् 1928 ई. में बनारस से एक योग्य हिंदी शिक्षक नियुक्त किया गया। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्‌वारा संचालित परिक्षाएँ भी आयोजित की जाने लगी। 'उच्च स्तर के छात्रों के लिए एक हिंदी पुस्तकालय भी खोला गया जिनमें हिंदी की स्तरीय पुस्तकें संरक्षित करने की व्यवस्था की गई।'

पूर्वोत्तर में महात्मा गांधी की हिंदी प्रचार योजना को बढ़ावा देने के लिए उत्तर प्रदेश के जनप्रिय देशसेवक कर्मठ पुरुष बाबा राघवदासजी को दायित्व सौंपा गया। उन्होंने सन् 1934 ई. से लेकर सन् 1937 ई. तक विभिन्न व्यक्तियों के सहयोग से हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य किया।

इस प्रकार, हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य असम में सन् 1926 ई. से ही आरंभ हो गया था। इसके बाद सन् 1938 ई. में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हुई। हिंदी-असमिया के आदान-प्रदान के क्षेत्र में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का अवदान भी सराहनीय है।

आजकल पूर्वोत्तर के प्रत्येक राज्य में केंद्रीय विद्यालय एवं विश्वविद्यालय की स्थापना होने के बाद, प्रत्येक विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा एवं साहित्य में आरंभिक से लेकर उच्चतर शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है। पूर्वोत्तर में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है।

– सचिव, शांतिनिकेतन हिंदी प्रचार सभा, रूपांतर परिसर, रतनपल्ला नॉर्थ, शांतिनिकेतन-731235, पश्चिम बंगाल

❑❑❑

# हिंदी साहित्य की कथा विधा में उपेक्षित हैं जासूसी कथाएँ

**गोपाल जी गुप्त**

*[भारतीय वाङ्मयों, नीतिग्रंथों, स्मृतियों, राजनीति शास्त्रों के महान आचार्यों, बृहस्पति, शुक्र, नारद, कौटिल्य आदि के ग्रंथों, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, किरातार्जुनीयम (भारवि), मुद्राराक्षस (विशाखादत्त) सभी में गुप्तचरों को राजा का आँख, कान कहा गया है जिनकी सूचनाओं पर मंत्रिपरिषद में गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श कर नीति निर्धारण का निर्देश भी दिया गया है। उल्लेख्य है कि ऋग्वेद के अनुसार शीघ्रगामी, दुष्टों को बाँधने में कुशल गुप्तचर, जिनकी पलकें नहीं झपकती, जो मधुर जिह्वा वालों के भी वश में नहीं आते, राष्ट्रवासियों की सुरक्षा करते हुए विविध व्यवहार के केंद्रों में दुष्टों को उपतप्त करते हैं। किरातार्जुनीयम के 25 श्लोकों में युधिष्ठिर के वनवासावधि में द्वैवन में ब्रह्मचारी वेश में गुप्तचर वनैचर, जो ब्रह्मचारी वेश में था, से प्राप्त विवरण का उल्लेख है। रामायण तथा महाभारत कालीन सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था का भी विवरण मिलता है। इस तरह विभिन्न पुरातन वाङ्मयों में गुप्तचर्या उनके कौशल, चतुराई, कारनामों के विवरण मिलते हैं। बावजूद इसके आज तक गुप्तचरी कथाओं को साहित्य में उपेक्षा ही मिली है, उन्हें फुटपथिया साहित्य कह कर उसे हेय माना गया है जबकि अनेक प्रख्यात साहित्यकारों ने भी कुछ जासूसी कथाएँ लिखी हैं तथा साहित्यकारों ने अपने जीवन में जासूसी साहित्य पढ़े हैं, विचारणीय है कि इस उपेक्षा का मूल कारण क्या है? इसी पर प्रस्तुत है यह संक्षिप्त रचना....]*

यद्यपि रहस्य, रोमांच, तिलस्म से पूर्ण जासूसी कहानियाँ, उपन्यास, फिल्में आज भी लोगों के बीच लोकप्रिय हैं तथापि यह आश्चर्यजनक है कि हिंदी साहित्य में इसे मान्यता नहीं दी जाती इसे कचरा साहित्य कहा जाता है जबकि हमारे पुरातन वाङ्मयों में इसे पूर्ण स्थान मिला है। वैदिक साहित्य में इंद्र के गुप्तचरों की कथाएँ मिलती हैं। ये गुप्तचर इंद्र को असुरो की गतिविधियों की जानकारी देते रहते थे। रावण के गुप्तचर पूरे आर्यावर्त में फैले थे जो उसे पूरी जानकारी देते थे। राम रावण युद्ध के पूर्व रावण के गुप्तचर राम की सेना में गए थे। हनुमान भी परोक्षत: राम के गुप्तचर माने जाते हैं जो सीता की खोज में लंका गए तथा रावण भी शक्ति, सैन्यशक्ति, दुर्ग आदि का पता लगाते हैं महाभारत के वनपर्व में हनुमान ने भीम से कहा है कि राजा को चाहिए कि वह गुप्तचरों के माध्यम से देश तथा दुर्ग का हाल-चाल जानता रहे क्योंकि गुप्तचर पराक्रम, परामर्श, बुद्धि, दंड तथा कृपा में राजा के सहायक होते हैं अत: उनकी नियुक्ति राजधर्म है जिनके बिना कुशल राज्य संचालन कठिन है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि ग्रंथों में भी गुप्तचर की महत्ता पर काफी कुछ लिखा गया है।

यूरोप में तो सत्रहवीं शताब्दी में ही जासूसी (गुप्तचरी) साहित्य को पृथक विधा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी तब इसे वहाँ बरोक कथा कहा जाता था। अट्ठारहवीं शताब्दी में तो पूरे विश्व में इस विधा को सर्वाधिक लोकप्रियता मिल गई। उस काल में जोसेफ कानरेद की कृति 'सीक्रेट एजेंट' को सर्वश्रेष्ठ जासूसी कथा का गौरव मिला था। पाश्चात्य विश्व में शनै: शनै: जासूसी साहित्य समृद्ध होता गया। जासूसी साहित्य के रचनाकारों को तो अंतरराष्ट्रीय ख्याति, धन, सम्मान तो मिला ही उनकी कृतियों पर फिल्मों का निर्माण भी होने लगा। ये फिल्में भी काफी सफल प्रमाणित हुईं।

टी.ए. हाफमैन, एडगर एलेन पी. सर आर्थर कानन डॉयल, अर्ल स्टैनली गार्डेनर, अगाथा क्रिस्टी, ईयानफ्लेमिंग, ग्राहम ग्रीन, एल. टी. क्वीन, मॉरिस एल वेस्ट, इर्विंग वालेस, जेम्स हेडली चेइज सहित अनेक नाम पूरे विश्व में प्रख्यात हो गए। इनकी कृतियों में आए पात्र कल्पित न होकर जीवंत मान लिए गए। यहाँ तक कि जन समुदाय अपनी समस्याएँ सुलझाने के लिए इन पात्रों के नाम पते पर पत्र भेजने लगे। सेक्सटन ब्लेक, राबर्ट, ब्लेक के बेकर स्ट्रीट, लंडन के पते

पर पत्रों का उत्तर देने के लिए कर्मचारी तक थे। पी के सी आगास्त, गर्डिनर के पैरीमैसन, फ्लेमिंग के जेम्स बांड, क्रिस्टी के मार्फेल, कानन डायल के शारलाक होम्स ने वैश्विक ख्याति अर्जित की, शॉरलाक होम्स की मृत्यु से डायल ने जब रचना बंद की तो लोगों के जुनून एवं विरोध को भी उन्हें सहना पड़ा और मजबूर होकर शॉरलाक होम्स को जीवित करना पड़ा। इन पात्रों को लेकर लोगों में जुनून चरम पर था।

भारत में जब देवकीनंदन खत्री ने ऐयारी, तिलस्मी उपन्यासों की शृंखला (चंद्रकांता, संतति, भूतनाथ, रोहतास मठ, नरेंद्रमोहिनी आदि) लिखनी शुरू की। तभी उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर जनपद के गहवर गाँव के गोपाल राम जायसवाल ने गोपाल राम गहमरी के नाम से बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जासूसी कहानियों का प्रचलन शुरू किया। सन् 1900 में उन्होंने मासिक पत्रिका 'जासूस' का प्रकाशन शुरू किया तथा सन् 1939 तक निरंतर प्रकाशित करते रहे। उन्होंने अपनी जासूसी कहानियों से लोकप्रियता प्राप्त की। डॉक्टर वेद प्रताप वैदिक के अनुसार गहमरी ने लगभग पौने चार सौ पुस्तकें लिखीं। गहवर इंटर कॉलेज, गाज़ीपुर ने 1963-64 में गोपाल राम गहमरी स्मृति अंक प्रकाशित किया जिसके अनुसार गहमरी ने केवल जासूसी कथाएँ ही नहीं लिखीं बल्कि उन्होंने विविध विधाओं की 240 से भी अधिक पुस्तकों का सृजन किया। डॉ. राम प्रसाद मिश्र ने अपनी कृति 'हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' में लिखा है "गहमरी ने एक भूल यह की कि उन्होंने बहुत अधिक लिखा अन्यथा उनमें हिंदी जगत के आर्थर कानन डॉयल बनने वाली समस्त परिस्थितियाँ विद्यमान थी। अत्यधिक लिखने के चलते वह मौलिकता का आदर नहीं कर सके फलतः वह अनेक कृतियों में एकरूपता के जाल में फंस कर रह गए...."

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इलाहाबाद, वाराणसी, मेरठ, दिल्ली आदि स्थानों से छपने वाली जासूसी उपन्यासों की बाढ़ सी आ गई, अनेक छद्म लेखक बरसाती मेढक की तरह छा गए जो भौंडे उपन्यास लिखने लगे जिनमें ऊल-जुलूल कथानक, फूहड़पन, हास्यास्पद घटनाएँ, सेक्स होने से समालोचकों ने इन पर ध्यान देने की जरूरत ही नहीं समझी। ऐसा नहीं है कि आज गंभीर पाठकों का अभाव हो। आज भी विदेशी जासूसी उपन्यास बहुतायत से पढ़े जा

रहे हैं। उल्लेखनीय है कि जासूसी साहित्य की विशिष्टता यह है कि यह व्यस्तता ग्रस्त को विश्वास प्रदान करता है, मनोरंजन करता है। एक ओर इसमें जहाँ बुद्धियुक्त घात-प्रतिघात होता है वहीं दूसरी ओर मानव मन की दुष्प्रवृत्तियों की झलक भी दिखाता है, जिसमें सत्य की असत्य पर, अच्छाई की बुराई पर विजय का संदेश भी देता है लोगों को बुराई से दूर रहने की प्रेरणा देता है तथा आत्मविश्वास जगाता है।

यह हिंदी का दुर्भाग्य है कि इसे साहित्य में उपेक्षा ही मिली जिसका मुख्य कारण यह है कि रचनाकार गंभीर नहीं है। उसे विषय की अधूरी, अधकचरी जानकारी होती है, उनमें मौलिकता का अभाव होता है पैसा कमाने की होड़, भूख होती है, कथानक में एकरूपता होने के साथ सभी घटनाएं हास्यास्पद, अविश्वसनीय, ऊल-जुलूलता से भरी होती हैं। प्रकाशक, लेखक दोनों ही पैसा बटोरना चाहते हैं। लेखकों से एक हफ्ते/दस दिनों में उपन्यास लिखकर देने का प्रकाशक दबाव डालता है। प्रायः विदेशी उपन्यासों की घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर भौड़ेपन से लेखक अपनी कृति में डाल देता है। यही कारण है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में गोपाल राम गहमरी के अलावा किसी भी अन्य जासूसी उपन्यासकार, कहानीकार का उल्लेख नहीं मिलता है जिसके लिए प्रकाशक तथा लेखक दोनों ही जिम्मेदार हैं।

निश्चित रूप से यदि गंभीर, सूझबूझ वाले प्रतिष्ठित लेखक गण इस दिशा में अपना सहयोग प्रदान करें। श्रेष्ठ, मौलिक उपन्यास का सृजन करें तथा नवोदितों को प्रोत्साहित करें तो इस विधा को भारत में भी प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है। ज्ञातव्य हो कि कई प्रतिष्ठित हिंदी रचनाकारों ने भी जासूसी कहानियाँ लिखी हैं किंतु जब उन्हें समुचित मान नहीं मिला तो वे उदासीन हो गए तथा अपना सारा ध्यान साहित्यिक रचना में लगा दिया।

– एम.आई.जी. 292, कैलाश विहार, आवास विकास योजना- प्रथम, कल्याणपुर, कानपुर-208017

❑❑❑

# हिंदी में अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रचलन, हिंदी के लिए आशीर्वाद है

**सिद्धेश्वर**

भाषा का संबंध केवल बोलने तक सीमित नहीं होता। इसके व्यापक सरोकार हैं। दृश्य, श्रृव्य, लेखन और बात-व्यवहार जैसी गतिविधियों से, भाषा को ऊर्जा मिलती है। अंग्रेजी की बात छोड़ भी दें, तो अपने ही देश में क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में प्रचलित भोजपुरी, मैथिली, बंगला, गुजराती, कन्नड़, मलयालम जैसी तमाम भाषाओं से, हिंदी की श्रीवृद्धि और समृद्धि ही हुई है। ये भाषाएँ, हिंदी के विकास में कभी बाधक नहीं हुईं, बल्कि हिंदी को और व्यापक बनाया है। हम क्षेत्रीय भाषाई लोग ही संकीर्ण भावना के कारण, हिंदी का उपहास करते रहे हैं। सच कहा जाए तो, ये विभिन्न भाषा रूपी नदियाँ, हिंदी के सागर में समा कर, विस्तार देती हैं। अन्य भाषाओं के शब्द हिंदी ने अंगीकर कर लिए हैं और हिंदी के सौंदर्य और उपयोगिता में वृद्धि ही की है। विश्व की भाषाओं के साथ ऐसी बातें नहीं है। इसीलिए, विश्व की अन्य भाषाओं के साथ, क्षेत्रीय बोली या अन्य भाषाओं का प्रचलन भले अभिशाप हो, किंतु हिंदी के लिए आशीर्वाद है।

इसका सबसे सफल उदाहरण यह है कि प्रयोगमूलक हिंदी में अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग, मीडिया और विज्ञापन के रूप में होता रहा है और इस कारण हिंदी विश्वव्यापी हो गई है। विद्वानों और चिंतकों के एक बड़े समूह ने स्वीकार किया है कि सत्ता और धन के बाद भाषा सबसे समर्थ संसाधन है।

भाषा की प्रयुक्ति पर विचार करने पर हम पाते हैं कि प्रयुक्ति का संबंध बोलने, सुनने, समझने और लिखने इन चारों भाषा प्रयोगों से है। इसलिए भी हिंदी अन्य भाषा के शब्दों को अपने भीतर आसानी से पचा लेती है। स्टेशन, प्लेटफॉर्म, इंजीनियर, डॉक्टर, एडवोकेट, मेहरारू, जोरू, मोशाय, ख्वाब, इंटरव्यू, गैस सिलिंडर, सकूल, कॉलेज, पासबुक, बैंक, बैटरी, रेडियो, ट्रैक्टर, बर्थ जैसे हजारों-लाखों देश-विदेश की जन भाषाओं के शब्दों को हिंदी ने अपने आंचल में समाहित कर लिया है। जिसने हिंदी की सौंदर्य वृद्धि में चार चाँद ही नहीं लगाया, बल्कि हिंदी को विश्वव्यापी भी बनाया है।

सर्वप्रथम यूरोप और अमरीका में 1950 के पहले 'फंक्शनल' लैंग्वेज की अवधारणा बनी थी। जिसके लिए आंध्र प्रदेश के प्रख्यात हिंदी सेवी मोटूरि सत्यनारायण जी ने प्रयोजनमूलक भाषा और तदुपरांत प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रयोग किया था। इस छोटे-से लेख में बिहार के तमाम ऐसे शब्दों के तालमेल का उल्लेख तो नहीं किया जा सकता है किंतु यह एक उदाहरण काफी है, इस बात को समझने के लिए कि भाषा अध्ययन के क्षेत्र में प्रयोजन मूलक हिंदी की संकल्पना आधुनिक और बहुसंदर्भी है। उसका अपना विशेषार्थ है और उसके कई आयाम हैं। भारत में 1950 से लेकर 1980 के दशक में प्रयोजनमूलक हिंदी और पारिभाषिक शब्दों का कई दृष्टियों से काफी विकास हुआ है, ऐसा हिंदी सेवी ईश्वरचंद्र मिश्र भी स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि जो लोग हिंदी पत्रकारिता को अंग्रेजी अनुवाद से आक्रांत मानते हैं, वे गलत हैं। काफी सारी वाक्य संरचनाएँ और शब्द अंग्रेजी अथवा अन्य भाषाओं से प्रभावित और प्रेरित अवश्य हैं, किंतु वहाँ भी हिंदी के अभिव्यक्ति रूपों की मर्यादा, गरिमा और उनका सौंदर्य मन को मोहनेवाला है। ये भाषाएँ हिंदी के सौंदर्य में वृद्धि ही करते हैं, कहीं से वे अभिशापित नहीं है।

भाषायी विद्रूपदताओं की अपेक्षा भाषायी एकता से सांस्कृतिक एकता तथा राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है। एक सर्वेक्षण के दौरान बी.आर.विप्लवी ने हिंदी के लिए अन्य भाषाओं की महत्ता को स्वीकार करते हुए ठीक ही कहा है कि अशुद्धता का भ्रम फैलाकर आदिम समाज की भाषा, संस्कृति, धर्म और ज्ञान-विज्ञान को खारिज करना, भाषा के प्रति अन्याय है। कई बार तो

असली-नकली की शिनाख्त करके पुरानी चीजों को सामने लाना भी कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए पाली के शब्द भिक्खु, भिक्खा, पाणी, सिक्खा, मूसा, पमाद, पबज्जा, मग्ग, मिच्छाचार, कम्मकार, भग्ग, भरिया, विकप्प, विक्खित जैसे शब्दों को बदल कर क्रमशः भिक्षु, भिखा, प्राणी, शिक्षा, मृषा, प्रमाद, प्रब्रज्या, मिथ्याचार, कर्मकार, भग्न, भार्या, विकल्प, विक्षित जैसे शब्दों का निर्माण कर, अन्य भाषाओं ने हिंदी भाषा के सौंदर्य में न सिर्फ वृद्धि की है, बल्कि हिंदी को समृद्ध भी किया है। "कुछ लोग भाषा की शुद्धता को लेकर सिर धुनते रहते हैं। भाषा की शुद्धता के लिए चिंता करने वालों को समझ लेना चाहिए कि भाषा इतनी गतिशील है, जितना जीवन। यह बन-बनकर बिगड़ती है और बिगड़-बिगड़ कर बनती है। भाषा की सबसे छोटी इकाई वाक्य होते हैं, वाक्य के कुछ शब्द नहीं। अधिकांश शब्द विजातीय भी हों, किंतु वाक्य-रचना हिंदी की हो तो अभिव्यक्ति हिंदी की मानी जाएगी।" ईश्वरचंद्र के इस विचार को हिंदी में अन्य भाषाओं के शब्दों के प्रचलन की सार्थकता के रूप में देखा जा सकता है। मेरा मानना है कि जहाँ लोग अंग्रेजी भाषा के प्रति झुक रहे हैं, विशुद्ध हिंदी के प्रयोग के दबाव से विमुख हो रहे हैं, शुद्ध हिंदी के प्रयोग से घबराकर भागम-भाग मचाए हुए हैं, उन्हें हिंदी को अपनाने के लिए उत्साहित करते हुए, तमाम बंदिशों से मुक्त कर देना चाहिए। विश्व की सारी भाषाएँ, दूसरों की भाषाओं को अंगीकार कर रही है, क्योंकि नित नए जुमले इज़ाद किए जा रहे हैं। ऐसे में अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रचलन, हिंदी के लिए आशीर्वाद के रूप में स्वीकार करना ही, हिंदी के प्रति न्यायसंगत होगा। जींस पर कुर्ता और कमीज पहनने वाली पीढ़ी को चलताऊ भाषा चाहिए, अकादमिक भाषा का बोझ नहीं।

– 'सिद्धेश सदन' (किड्स कार्मल स्कूल के बाएँ), द्वारिकापुरी रोड नं. 2, हनुमान नगर, बी.एच.आई. कंकड़बाग, पटना-800026 (बिहार)

❑❑❑

# राजभाषा प्रयुक्ति

**राहुल शर्मा 'अस्त्र'**

हमारा देश भारत एक बहुभाषिक राष्ट्र है। देश के विभिन्न स्थानों में अलग-अलग भाषाएँ एवं बोलियाँ प्रचलित हैं। विभिन्न राज्यों की प्रमुख भाषा वहाँ की राजभाषा है। इसी प्रकार केंद्रीय स्तर पर हिंदी है, जिसे 14 सितंबर, 1949 को भारत की संविधान सभा ने भारत की राजभाषा स्वीकार किया था, जो विभिन्न भाषायी क्षेत्रों व राज्यों के साथ प्रशासनिक पत्र-व्यवहार में काम आती है। इस प्रकार राजभाषा ही संपर्क भाषा के रूप में हमारे बहुभाषिक समाज को एक सूत्र में पिरोकर राष्ट्रीय एकता को बल प्रदान करती हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में हिंदी के विकास एवं प्रचार का दायित्व भारत सरकार को सौंपा गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार, "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।"

इस अनुच्छेद में चार बिंदु उभरकर आते हैं :

- हिंदी भाषा को भारत की सामासिक संस्कृति का वाहक बनाना

• आठवीं सूची में विनिर्दिष्ट भाषाओं के पद, शैली व रूप का हिंदी में यथोचित समावेश कराना

• मुख्यत: संस्कृत और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण कर हिंदी शब्द-भंडार को समृद्ध कराना

• हिंदी भाषा की मूल प्रकृति को बनाए रखना

भारत सरकार संघ की राजभाषा हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग को बढ़ाने हेतु प्रतिबद्ध है। इस दिशा में किए जा रहे प्रयासों को सार्थक दिशा देने के लिए राजभाषा विभाग एवं इसके अधीनस्थ कार्यालय (संसदीय राजभाषा समिति सचिवालय, केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, विभिन्न क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय तत्संबद्ध नगर राजभाषाकार्यान्वयन समितियाँ) विभिन्न कार्यालयों, निगमों, स्वायत्त निकायों, कंपनियों, उद्यमों, बैंकों इत्यादि में कार्यरत राजभाषा अधिकारी एवं कर्मचारीगण, विभिन्न संस्थाएँ आदि अथक प्रयास कर रहे हैं। इन प्रयासों का ही असर है कि स्वतंत्रता से लेकर आज तक हिंदी के कार्यालयीन प्रयोग में निरंतर वृद्धि हुई है। परंतु हम सभी यह अनुभव कर सकते हैं कि अभी भी काफी कार्य किया जाना है। हिंदी के बढ़ते प्रयोग के साथ-साथ हमारे देश में अंग्रेजी के प्रयोग में भी भारी वृद्धि हुई है। आज, आम जनमानस के सामान्य व्यवहार में अंग्रेजी के शब्दों, वाक्यांशों/वाक्यों की भरमार देखी जा सकती है। इसके साथ ही, अंग्रेजी ज्ञान का होना पढ़े-लिखे होने की पहचान समझा जाता है। इसी मानसिकता से प्रभावित कई लोग सरकारी कार्यालयों में भी आसानी से मिल जाते हैं। विडंबना यह है कि हमारे देश में अंग्रेजी के निरंतर प्रयोग की वकालत करने वालों की संख्या भी कम नहीं है। राजभाषा अधिनियम, 1963 (यथा संशोधित, 1967) में यह व्यवस्था की गई है कि वर्ष 1965 के बाद केवल हिंदी ही संघ की राजभाषा होगी। किंतु अंग्रेजी के प्रयोग की छूट तब तक बनी रहेगी जब तक हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले सभी राज्यों के विधानमंडल अंग्रेजी का प्रयोग समाप्त करने के लिए संकल्प पारित न कर दें और उन संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद के दोनों सदन इस संबंध में संकल्प पारित न कर दें। इस व्यवस्था के अनुसार आज

हर कर्मचारी को अपना कामकाज हिंदी अथवा अंग्रेजी दोनों में करने की छूट है। साथ ही, जनसाधारण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उक्त अधिनियम की धारा 3(3) में यह व्यवस्था की गई है कि किसी भी केंद्रीय कार्यालय से जारी होने वाले, आम जनता के उपयोग के सारे पत्र व आदेश द्विभाषी हों।

हमारे देश में प्रशासन के तीनों अंगों (विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका) में राजभाषा का प्रयोग किया जाना अपेक्षित है। अपने देश की भाषा हिंदी को अपने व्यवहार में उतारे बिना, राजभाषा के प्रभावी कार्यान्वयन का लक्ष्य, एक दूरगामी लक्ष्य बनकर ही रहेगा। इस लक्ष्य को पाने की सबसे सरल एवं सबसे कठिन कुंजी यही है कि हर व्यक्ति अपने आचार-विचार, व्यवहार तथा संस्कार में अपनी राजभाषा हिंदी का भरपूर प्रयोग करे। सरल इसलिए, क्योंकि हिंदी सदियों में हमारे देश में रची-बसी हमारी अपनी भाषा है तो इसके भरपूर प्रयोग में कैसा संकोच? कैसी हीन भावना? इसके उलट हमें अपनी राजभाषा का प्रयोग करने में गर्व का अनुभव होना चाहिए। यदि अवसर मिले, तो देश ही नहीं विदेशों में भी हमें अपनी राजभाषा के प्रयोग में तत्परता दिखानी चाहिए। कठिन इसलिए, क्योंकि भारत में इतने लंबे समय से विभिन्न स्तरों पर किए गए, व निरंतर किए जा रहे अनगिनत प्रयासों के बाद भी हमें अपने ही देश में, अपनी ही राजभाषा हिंदी को 'बढ़ावा' देने की बातें व प्रयास करने पड़ रहे हैं। सरकारी कार्यालयों में कार्यरत हमारे अपने देश के नागरिकों से ही हमें देश की भाषा में कार्य करने के लिए आग्रह करना पड़ रहा है। हम हिंदी पखवाड़ा मनाते हैं, कार्यालयों में सूचनापट्ट लगाते हैं कि, "इस कार्यालय में हिंदी में कार्य करने की छूट है" या "इस कार्यालय में हिंदी में लिखे पत्र भी स्वीकार किए जाते हैं", ताकि अधिकारियों व कर्मचारियों के हृदय में राजभाषा हिंदी के प्रति मोह पैदा हो सके।

राजभाषा अधिनियम, 1963 (यथा संशोधित 1967) में की गई व्यवस्था को सरकारी कार्यालयीन कार्यों में प्रयोग करने के लिए राजभाषा नियम 1976 बनाया गया, जिनका अनुपालन केंद्र सरकार के नियंत्रणाधीन विभिन्न कार्यालयों, निगमों, स्वायत्त निकायों, कंपनियों, उद्यमों, बैंकों इत्यादि द्वारा किया जाना

अनिवार्य है। राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी विभिन्न नियमों, अधिनियमों व आदेशों आदि के अनुसार भारत सरकार के अंतर्गत किसी भी कार्यालय को संपूर्ण कार्य हिंदी में करने वाले कार्यालयों की सूची में शामिल होने के लिए कुछ मापदंड होते हैं। गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा वार्षिक लक्ष्यों के रूप में इन्हें प्रतिवर्ष जारी किया जाता है।

निम्न 15 सूत्रों के अनुपालन से कोई भी कार्यालय, संपूर्ण कार्य हिंदी में करने वाले कार्यालयों की सूची में सम्मिलित हो सकता है :

1. राजभाषा नियम 1976 के नियम 12(1)(ii) के अनुसार केंद्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह राजभाषा नीति के सम्यक अनुपालन के लिए उपयुक्त और प्रभावशाली जाँच के उपाय करे। अतः इस हेतु कार्यालय में जाँच बिंदु बनाए जाएँ।

2. राजभाषा नियम 1976 के नियम 12(1)(i) के अनुसार केंद्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों के अधीन जारी किए गए निर्देशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा हैं परंतु यह कार्य स्टॉफ के सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकता। अतः कार्यालय में कार्यरत प्रत्येक अधिकारी एवं कर्मचारी का यह नैतिक एवं मौलिक दायित्व है कि वह अपना संपूर्ण कार्य हिंदी में ही करे।

3. राजभाषा नियम 1976 के नियम 9 के अनुसार जिस अधिकारी या कर्मचारी ने–

(क) मैट्रिक/10वीं या समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिंदी माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है, या

(ख) स्नातक या समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिंदी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो, या

(ग) यदि कोई अधिकारी या कर्मचारी इस आशय की घोषणा करता/करती है कि उसे हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है, तो उसे हिंदी में प्रवीणता प्राप्त माना जाता है।

राजभाषा नियम 1976 के नियम 10 के अनुसार जिस अधिकारी या कर्मचारी ने–

(i) मैटिक/10वीं या समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिंदी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है, या

(ii) केंद्रीय सरकार की हिंदी प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या, जहाँ उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अंतर्गत कोई निम्न परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, या

(iii) केंद्र सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, या

(iv) यदि वह इन नियमों के उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है की उसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो उसे हिंदी में कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त माना जाता है।

अत: जिस कार्यालय के 80% अधिकारी/कर्मचारी हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान रखते हैं, उस कार्यालय के प्रमुख को अविलंब अपने कार्यालय को राजभाषा नियम 1976 के नियम 10(4) के अंतर्गत अधिसूचित करवाने संबंधी कार्यवाही करनी चाहिए। उन कार्यालयों के नाम भारत के राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे।

4. राजभाषा नियम 1976 के नियम 8(4) के अंतर्गत हिंदी में प्रवीणता प्राप्त अधिकारियों/कर्मचारियों को कार्यालय प्रमुख द्वारा प्रतिवर्ष, व्यक्तिश: आदेश जारी किए जाएँ।

5. राजभाषा अधिनियम 1963 (यथा संशोधित, 1967) की धारा 3(3) के अनुसार सामान्य आदेशों का हिंदी व अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में जारी किया जाना कानूनी आवश्यकता है। अत: इसका अनिवार्यत: अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। इस धारा में वर्णित 14 प्रकार के कागजात/दस्तावेजों (संकल्प, सामान्य आदेश, नियम, अधिसूचनाएँ, प्रशासनिक व अन्य रिपोर्टें, प्रेस विज्ञप्तियाँ, संसद के किसी सदन या दोनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक व अन्य रिपोर्टें सरकारी कागजात, संविदा, करार, अनुज्ञप्तियाँ, अनुज्ञापत्र, निविदा सूचनाएँ

और निविदा प्रपत्र) को द्विभाषी (हिंदी एवं अंग्रेजी) रूप में जारी किया जाए। राजभाषा नियम 1976 के नियम 6 के अनुसार, जो अधिकारी इन कागजातों/दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करते हैं वे सुनिश्चित करें कि कागजात/दस्तावेज दोनों भाषाओं (हिंदी व अंग्रेजी) में जारी किया जा रहा है। साथ ही, यदि एक ही पृष्ठ पर द्विभाषीकरण किया गया है तो हिंदी, अंग्रेजी से ऊपर/पहले हो तथा हिंदी के वर्णों का आकार अंग्रेजी से छोटा न हो।

6. राजभाषा नियम 1976 के नियम 5 व 7(2) के अनुसार कार्यालय में प्राप्त हिंदी के पत्र या हिंदी में हस्ताक्षरित किसी भी पत्र, आवेदन, अपील या अभिवेदन (चाहे किसी भी भाषिक क्षेत्र से प्राप्त हुआ हो) का उत्तर (यदि अपेक्षित हो तो) अनिवार्य रूप से हिंदी में ही दिया जाना है। कार्यालय प्रमुख/हिंदी में प्राप्त पत्र के उत्तर पर हस्ताक्षर करने वाले अधिकारी इस नियम का अनुपालन सुनिश्चित करें।

7. प्रत्येक कार्यालय में गठित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन हर तिमाही में किया जाना अनिवार्य है। कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान की अध्यक्षता में आयोजित इस बैठक में सभी उपस्थित सदस्यों द्वारा भाग लिया जाए तथा किए गए कार्यों की समीक्षा करने के साथ-साथ हिंदी के प्रयोग को और अधिक बढ़ाने हेतु कार्य-योजना पर भी चर्चा की जाए। साथ ही, अपने नगर में गठित नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों में कार्यालय के प्रमुख अवश्य उपस्थित हों।

8. प्रत्येक तिमाही के दौरान कार्यालय में कार्मिकों की ज्ञान वृद्धि तथा राजभाषा का प्रयोग बढ़ाने हेतु 'हिंदी कार्यशाला' का आयोजन किया जाए।

9. राजभाषा नियम 1976 के नियम 11 के अनुसार- (1) कार्यालय से संबंधित सभी मैन्युअल, संहिताएँ और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य हिंदी और अंग्रेजी में द्विभाषी रूप में, यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा। (2) कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्रारूप और शीर्षक हिंदी और अंग्रेजी में होंगे। (3) कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी संकेतपट्ट, सूचनापट्ट, नामपट्ट, रबड़ की मोहरें, पत्रशीर्ष, लिफाफों

पर उत्कीर्ण लेख व लेखन सामग्री की अन्य मदें तथा सभी प्रदर्शित प्रचार सामग्री द्विभाषी होंगी।

यहाँ ध्यान रखें कि हिंदी, अंग्रेजी के ऊपर/पहले हो व हिंदी के वर्णों का आकार अंग्रेजी से छोटा न हो।

10. कार्यालय के जो भी अधिकारी तथा कर्मचारी कंप्यूटर पर कार्य करते हैं वे सुनिश्चित करें कि उनका कंप्यूटर यूनिकोड (मंगल फॉन्ट) समर्थित हो। संबंधित सॉफ्टवेयर Hindi India IME को www.bhashaindia.com की वेबसाइट से अपने कंप्यूटर में डाउनलोड करके रन करें। तत्पश्चात् कंट्रोल पैनल पर जा कर 'Language' या 'Region and Language' पर जाएँ तथा वहाँ से हिंदी की-बोर्ड सक्रिय करें। ऐसा करने से कंप्यूटर द्विभाषी हो जाएगा तथा उस पर हिंदी के साथ-साथ, आवश्यकतानुसार, अंग्रेजी में भी कार्य किया जा सकेगा।

11. यूनिकोड समर्थित कंप्यूटरों से ई-मेल भी हिंदी में ही भेजे जाएँ। कंप्यूटरों पर यूनिकोड सक्रिय करने से हिंदी में तैयार दस्तावेजों, वेब पृष्ठों तथा ई-मेल भेजने तथा प्राप्त करने आदि में फॉन्ट संबंधी समस्याओं से बचा जा सकता है। साथ ही, मोबाईल फोन पर प्रयोग होने वाली संदेश सेवाओं में भी बड़ी सरलता से हिंदी की-बोर्ड तथा गूगल वॉयस लेखन के द्वारा सभी संदेश लिखकर या बोलकर हिंदी में भेजे जा सकते हैं।

12. कार्यालय परिसर में सामान्य बोलचाल व व्यवहार सहित, आयोजित होने वाली सभी बैठकों/संगोष्ठियों/कार्यशालाओं आदि की भाषा हिंदी हो।

13. जिन अधिकारियों/कर्मचारियों की मातृ भाषा हिंदी नहीं है तथा जिन्हें प्रशिक्षण की आवश्यकता है, उन्हें समुचित हिंदी प्रशिक्षण दिए जाने की व्यवस्था की जाए।

14. सेवा में आने के समय तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण हिंदी माध्यम में ही दिए जाने की व्यवस्था की जाए। गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा विकसित कराए गए विभिन्न आई.टी.टूल्स (हिंदी सीखने के लिए लीला-प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ; मशीन अनुवाद (अंग्रेजी से हिंदी) मंत्र-राजभाषा, श्रुतलेखन-राजभाषा (हिंदी स्पीच से हिंदीटेक्सट), प्रवाचक राजभाषा (हिंदी

टेक्सट से हिंदीस्पीच) तथा (ई-महाशब्दकोश) को अपने कार्याकालीन कार्यों में आवश्यकतानुसार उपयोग किया जाए।

15. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा राजभाषा के कार्यान्वयन की प्रगति की समीक्षा करने के लिए सभी अधीनस्थ कार्यालयों से एक तिमाही प्रगति रिपोर्ट मँगाई जाती है। कार्यालय में हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित तिमाही रिपोर्ट, प्रत्येक तिमाही की समाप्ति पर, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार को इसकी वेबसाईट www.rajbhasha.nic.in पर जा कर 'सूचना प्रबंधन प्रणाली' लिंक द्वारा ऑनलाइन प्रेषित की जाए। साथ ही, तिमाही रिपोर्ट अपने नियंत्रक कार्यालय को भिजवाना सुनिश्चित किया जाए।

एक सामान्य कार्मिक के लिए उपरोक्त सभी प्रावधानों को याद रख पाना कठिन हो सकता है। इस परेशानी का बहुत ही सरल-सा हल यह है की कार्यालय में कार्यरत प्रत्येक अधिकारी व कर्मचारी (कनिष्ठतम कार्मिक से लेकर वरिष्ठतम अधिकारी तक) अपने से संबंधित सभी प्रकार के कार्य (बोलचाल, हाथ से लिखना तथा कंप्यूटर पर पत्राचार, ई-मेल आदि) केवल और केवल हिंदी में ही करना सुनिश्चित करें। ऐसा करने से स्वत: ही उपरोक्त प्रावधानों का अनुपालन हो जाएगा व किसी भी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं रह जाएगी तथा आपका कार्यालय भी, संपूर्ण कार्य हिंदी में करने वाले कार्यालयों की सूची में सम्मिलित हो जाएगा।

– म. न. ए-13, ओम नगर, गली न. 4, मोहन नगर, गाज़ियाबाद, उ.प्र. 201007

❑❑❑

# मिज़ोरम में हिंदी भाषा का विकास

**डॉ. सी. ललरमपना**

मिज़ोरम पूर्वोत्तर भारत का एक सुंदर प्रदेश है। इसका प्राकृतिक सौंदर्य अत्यंत सुखद और सुहावना है। मिज़ोरम की राजधानी आइज़ोल है। इसका भूगर्भीय क्षेत्र 21,081 वर्ग किलोमीटर है। मिज़ोरम भौगोलिक स्थिति देशांतर डिग्री 92.15 पूर्वी से 93.29 पूर्वी और अक्षांश डिग्री 21.58 उत्तर से 24.35 उत्तर है। इसकी लंबाई उत्तर से दक्षिण तक 277 किमी और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक 121 किमी है। इसकी अंतरराष्ट्रीय सीमा बर्मा के साथ 404 किमी बांग्लादेश के साथ 318 किमी है। अंतरराज्यीय सीमा असम के साथ 123 किमी त्रिपुरा के साथ 66 किमी और मणिपुर के साथ 95 किमी है। प्रशासनिक सेटअप की दृष्टि से मिज़ोरम में आठ जिले, तीन स्वायत्त जिला परिषद तथा 23 उपमंडल, 26 आरडी ब्लॉक और 830 गाँव हैं। 2011 जनगणना के अनुसार जनसंख्या सुविधा 10,97,206 हैं। इनमें से 5,55,339 पुरुष और 5,41,867 महिलाएँ हैं। दशकीय जनसंख्या वृद्धि 1991-2011 तक 2,08,633 अर्थात 23.48 प्रतिशत है।

**मिज़ोरम प्रदेश में हिंदी का पहला कार्यान्वयन :**

सन् 1950 ई. में कुछ विद्यालयों में हिंदी भाषा प्रचार-प्रसार कार्य शुरू किया गया। सन् 1956 ई. में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी द्वारा हिंदी प्रेमियों के घर व कुछ स्कूलों में हिंदी प्रचार केंद्र खोलकर मिज़ो लोगों को हिंदी पढ़ाई जाती थी। इसी दौरान मिज़ोरम में योग्य हिंदी शिक्षक अनुपलब्ध थे इसके कारण मिज़ो स्वायत्त जिला परिषद ने अनिवार्यत: पूर्व सैनिकों को योग्य हिंदी शिक्षक के रूप में स्वीकार कर हिंदी शिक्षक के लिए नियुक्त किया। इन हिंदी

शिक्षकों की हिंदी चाहे शुद्ध हो या न हो स्कूलों में हिंदी पढ़ानी पड़ी। परिणामस्वरूप मिज़ो विद्यार्थियों को शुद्ध और मानक हिंदी से परिचित कराना असंभव रहा। इस कारण वे हिंदी बोलने, लिखने, समझने में पूर्ण सक्षम नहीं हैं।

धीरे-धीरे हिंदी की स्थिति मजबूत बनीं। सन् 1972 ई. में मिज़ोरम केंद्रशासित प्रदेश बन गया। इससे सरकार ने हिंदी के प्रति जोर देकर प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए सार्थक कदम उठाया। इसके अतिरिक्त हिंदी प्रेमियों के निरंतर प्रयास के कारण मिज़ोरम के हिंदी प्रेमियों ने प्रथम बार के लिए यानि कि सन् 1971 में अपनी निजी हिंदी प्रचार सभा संस्था स्थापित की। इस संस्था के प्रशासन के तहत पदाधिकारी, कार्यकारी अधिकारी, परीक्षा बोर्ड, 5 कर्मचारी तथा कई सुबह व शाम के हिंदी स्कूल हैं। इन हिंदी स्कूलों से कई मिज़ो स्त्री-पुरुष तथा किशोर बच्चों ने हिंदी पढ़कर विभिन्न हिंदी योग्यताएँ प्राप्त की।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा तथा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी द्वारा कई स्थानों में हिंदी प्रचार केंद्र चलाए जाते थें। इनसे कई मिज़ो विद्यार्थियों ने हिंदी सीखकर हिंदी बोलने तथा समझने का प्रयत्न किया। कहा जा सकता है कि उपरोक्त हिंदी संस्थाओं को हिंदी सीखने या शिक्षक बनने का प्रभावशाली साधन और स्त्रोत माना जा सकता है।

**हिंदी के लिए सरकारी नीति**

जब मिज़ोरम 1972 ई. से केंद्रशासित प्रदेश बना तब से सरकार ने हिंदी प्रचार-प्रसार कार्य पर ध्यान देते हुए ठोस कदम उठाना शुरू किया। फलस्वरूप सरकार ने राज्य के हर मिडिल स्कूल में हिंदी पढ़ाने का प्रस्ताव रखा। सरकार ने अपने प्रावधान को उचित ढंग से अपनाने के लिए 1973-1974 ई. में निदेशालय, शिक्षा विभाग में एक हिंदी शाखा खोली। इस शाखा में एक अधीक्षक समेत एक एल.डी.सी., एक यू.डी.सी. तथा एक चपरासी है। इसके अतिरिक्त दो हिंदी निरीक्षण अधिकारी जैसे हिंदी शिक्षा अधिकारी तथा एक उप-निदेशक हिंदी हैं। वर्तमान में शिक्षा विभाग के तहत हिंदी निरीक्षण अधिकारी यानि कि एक उप-निदेशक (हिंदी) सहित 8 हिंदी शिक्षा अधिकारी, 19 सहायक हिंदी शिक्षा अधिकारी के स्वीकृति पद हैं। परंतु अभी 8 हिंदी शिक्षा अधिकारी के स्वीकृति पदों में से केवल 4 पद भरे हुए हैं और 6 रिक्त हैं। ठीक उसी तरह 19 सहायक हिंदी शिक्षा अधिकारी के स्वीकृति पदों में से 15 पद भरे हुए हैं

और 4 पद खाली हैं। मिज़ोरम सरकार की आर्थिक दशा गंभीर रूप से अस्थिर है इसलिए सभी रिक्त पदों को भरने में सक्षम नहीं है। सारे मिज़ोरम में निदेशालय, विद्यालय, शिक्षा विभाग के अधीनस्थ 19 शैक्षिक उप-विभाजन तथा 8 जिला शिक्षा कार्यालय हैं। यदि इन सभी शिक्षा के क्षेत्रों में हिंदी निरीक्षण अधिकारी का खाली स्थान भर दिया जाता तो पूरे प्रदेश में हिंदी का माहौल बन पाता।

**स्कूल में हिंदी की स्थिति**

मिज़ोरम के सभी स्कूलों जैसे उच्च-प्राथमिक विद्यालय से लेकर हाई स्कूल तक अर्थात कक्षा 5 से लेकर कक्षा 10 तक सरकार ने हिंदी पढ़ाने का प्रावधान रखा है। अतः समस्त स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई होती है। इतना ही नहीं सन् 1977 से एम.एस.एल. सी. बोर्ड परीक्षा में हिंदी एक अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित होकर पूर्णांक 100 ले जाता है। सन् 1991 से हिंदी विषय में 100 पूर्णांक को 50 अंक कर दिया। सन् 1997 से लेकर 2011 तक हाई स्कूल में हिंदी तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती थी और 2012 से आज तक कक्षा 9 और 10 में वर्गीकृत विषय के रूप में पढ़ाई जा रही है। अब एच.एस.एल.सी. और एच.एस.एस.एल.सी. परीक्षा में एम.आई.एल. के रूप में सम्मिलित हुई है।

इसके अतिरिक्त सन् 1975 में सरकार ने मिज़ोरम हिंदी प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की जिसमें केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा का पाठ्यक्रम प्रस्तावित है। इसमें हिंदी शिक्षक डिप्लोमा, हिंदी शिक्षा विशारद तथा हिंदी शिक्षण पारंगत कोर्स चलाया जा रहा है। यह निदेशालय उच्च और तकनीकी शिक्षा विभाग की अधीनस्थ संस्था है।

**हिंदी विंग के कार्य :**

निदेशालय, विद्यालय शिक्षा विभाग, हिंदी विंग के कार्यों को निम्नांकितानुसार उल्लेख किया जा सकता है।

जैसे:-

1. हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति, स्थानांतरण और पोस्टिंग तथा सेवा पदार्थ पर्यावेक्षण और निगरानी।

2. केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, शिलांग, गुवाहाटी क्षेत्र के सहयोग से हिंदी शिक्षकों के विभिन्न प्रशिक्षणों का आचरण।

3. विभिन्न कोर्स के प्रशिक्षणों के लिए हिंदी शिक्षकों का चयन।

4. राज्य में हिंदी भाषा का विकास करना।

5. हिंदी को विकसित करने के लिए विभिन्न योजनाएँ बनाकर भारत सरकार में सुझाव प्रस्तुत करना।

**हिंदी शिक्षकों की वर्तमान स्थिति :**

राज्य में सरकार ने यथासंभव कई हिंदी शिक्षक-शिक्षिकाओं की नियुक्ति की है। इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। वर्तमान में, हिंदी शिक्षकों की स्थिति निम्नलिखित रूप में उल्लिखित की जा सकती है। भाषा शिक्षण योजना के तहत राज्य में सरकार ने आवश्यकतानुसार कई हिंदी शिक्षक-शिक्षिकाओं की नियुक्ति की है। इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे :

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. हाई स्कूल हिंदी शिक्षक (नियमित) | 298 | खाली पद | 79 |
| 2. मिडिल स्कूल हिंदी शिक्षक (नियमित) | 451 | खाली पद | 269 |
| कुल खाली पद | 749 | | 348 |
| | | | (स्थायी पद) |

3. केंद्र प्रायोजक योजना के तहत हिंदी शिक्षक (अस्थायी) 2011 फरवरी से 2017 तक के राज्य के स्कूलों में संलग्न किए गए थे परंतु योजना वर्ष का अंत होने के कारण इन्हें स्कूलों से रिहा कर दिया गया। इसलिए स्कूलों में सुचारू रूप से हिंदी पढ़ाने के लिए पर्याप्त हिंदी शिक्षक उपलब्ध नहीं हैं। अगर ऐसा न होता तो राज्य के हर स्कूल में हिंदी की पढ़ाई सुचारू रूप से होती।

मौजूदा सरकार राज्य में हिंदी भाषा का विकास करने और गुणात्मक प्रलोभन के लिए लगातार प्रयास करती है। इसको ध्यान में रखते हुए सन् 2008 के राज्य आम चुनाव में अपने चुनावी घोषणापत्र द्वारा यह घोषित किया गया था कि "राज्य में अलग से हिंदी निदेशालय की स्थापना की जाएगी।" परंतु आज तक इसका कार्यान्वयन नहीं हुआ।

**टिप्पणी-**

अब मिज़ोरम में कुल मिलाकर 749 हिंदी शिक्षक-शिक्षिकाएँ हैं और 348 खाली पद हैं। खाली पद होने का मूल कारण है कि कोई हिंदी शिक्षक-शिक्षिका पेंशन ले लेते हैं, कोई गुजर जाते हैं, कोई स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेते हैं, कोई अक्षम व्यक्ति बन जाते हैं और कोई अपने पद को

छोड़कर दूसरे विभाग में व्यावसाय करने चले जाते हैं। परंतु वित्तीय अस्थिरता के कारण राज्य सरकार इन खाली स्थानों की पूर्ति करने में सक्षम नहीं है।

मिज़ो लोगों को हिंदी भाषा के प्रति अत्यंत प्रेमभाव हैं और उन्हें अध्ययन करने में जिज्ञासा होती है। परंतु भाषांतर तथा भाषा परिवार की दृष्टि से मिज़ो भाषा हिंदी भाषा से बिल्कुल भिन्न है। इसलिए वाचन करने, लिखने तथा भाषण करने में बाधा होती हैं। इसके बावजूद भी हर आदमी हिंदी भाषा से परिचय प्राप्त करने का संभव प्रयास करता हैं। यदि मानव संसाधन विकास मंत्रालय, केंद्र सरकार अहिंदी भाषी-भाषाओं के लिए सार्थक एवं प्रभावशाली कार्यक्रम या योजना बनाकर हिंदी प्रचार-प्रसार कार्य करें तो वर्तमान स्थिति काफी प्रगतिशील होगी। जिस तरह एस.एस.ए. तथा आर.एम.एस.ए. में ब्लॉक रिसोर्श सेंटर है ठीक उसी तरह जिले के तौर पर हिंदी प्रचार-प्रसार केंद्र की स्थापना की जाए तब पूरे देश में प्रभावशाली ढंग से हिंदी की उन्नति होगी। केवल स्कूल में बच्चों को हिंदी अध्यापन कराना अधूरा समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वैच्छिक संघ वगैरह सामाजिक संस्थाओं को सहयोग द्वारा हर संभव निश्चित कार्यक्रम तैयार कर हिंदी प्रचार-प्रसार कार्य किया जा सकता है। परिणामस्वरूप हर अहिंदी भाषा-भाषियों के क्षेत्र में हिंदी का विकास पूर्ण रूप से किया जा सकता हैं। अतः माननीय प्रधानमंत्री मोदी जी के नेतृत्व में बनी मौजूदा केंद्र सरकार से नम्रतापूर्वक आग्रह करना अनिवार्य समझता हूँ कि विशेषकर अहिंदी भाषा-भाषियों के क्षेत्र में हिंदी प्रचार-प्रसार कार्य प्रभावशाली करने के लिए सार्थक योजना बनाकर पर्याप्त रूप से वित्तीय सहायता स्वीकृत करें। अहिंदी भाषा-भाषी के क्षेत्रों के हर स्कूलों में हिंदी शिक्षक नियुक्त करने का प्रावधान रखें। तभी पूर्ण रूप से हिंदी का विकास संभव होगा। जय हिंद।

– हिंदी शिक्षा अधिकारी, शिक्षा निदेशालय विद्यालय शिक्षा विभाग, आइजाल, मिज़ोरम

❑❑❑

# आज के कवि/बुद्धिजीवी का संकट

**डॉ. नरेंद्र मोहन**

आज मैं, जिस समय में खड़ा हूँ और जिस परिस्थिति में पड़ा हूँ, उसमें क्या कर सकता हूँ? अस्तित्ववादी शब्दावली में प्रश्न होगा- आत्महत्या और विद्रोह में से आप क्या चुनना चाहेंगे सही और सार्थक ढंग से जीने के लिए? घोर निराशा, हताशा या निरर्थक होते जाने के दंश को झेलता हुआ कोई भी व्यक्ति आत्महत्या का वरण कर सकता है। जैसे कि किसान और दलित लगभग हर प्रदेश में आत्महत्याएँ कर रहे हैं। इसी तरह जातिवाद के कोढ़ के विरुद्ध दलित और स्त्री की मुक्ति के पक्ष में जो यूनिवर्सिटियाँ संघर्ष के स्थल रही हैं, उनकी स्वायत्ता/स्वतंत्रता को कुचलने की कोशिश एक लंबे अरसे से हो रही है। लेखकों-बुद्धिजीवियों और दलितों की हत्याएँ भी उसी का हिस्सा हैं। लेखक-बुद्धिजीवी से अधिक कौन जानता होगा कि मानवता के कल्याण से बड़ा मूल्य क्या होगा लेकिन विसंगति देखिए कि उसी मूल्य को सत्ता-व्यवस्था ने एक ढोंग में बदल कर रख दिया है। दुहाई मानव कल्याण और विकास की और उसकी आड़ में मानव विनाश और विध्वंश, इससे बड़ी मानवीय त्रासदी क्या होगी?

सवाल है हम क्या चुनते हैं? विद्रोह और संघर्ष के सिवा कोई रास्ता नहीं है। अपने खोल से बाहर आना, अपने संस्कारों से लड़ना, अपनी परिस्थिति से दो-चार होना, उसे बदलने के लिए सोचना और सोच को अमल में ढालने के लिए कार्यरत होना है तो जूझने और संघर्षरत होने के सिवा कोई राह नहीं है। आत्मघाती स्थितियों से बचने के लिए संघर्ष एक-मात्र विकल्प है- संघर्ष जो

आत्म के धरातल से आगे बढ़कर सामाजिक और राजनैतिक धरातलों पर प्रतिफलित होता है।

आज की परिस्थिति में जिस संघर्ष की बात हम कर रहे हैं, वह मनुष्य और समाज की बेहतरी से जुड़ा है। उसकी बुनियाद है मुल्क और कौम। आज के लेखक की बेचैनी अगर महज व्यक्तिगत है तो किसी काम की नहीं है। व्यक्तिगत से आगे वह मुल्क और कौम की बेचैनी से जुड़ी हुई है। व्यक्ति से उसका विरोध नहीं है लेकिन व्यक्ति का रूपांतरण और अतिक्रमण अभिप्रेत जरूर है। उर्दू के प्रसिद्ध लेखक सआदत हसन मंटो ने एक जगह लिखा है, "अदब दर्जा हरारत है अपने मुल्क का, अपनी कौम का। वह उसकी सेहत और बीमारी की खबर देता रहता है।" साहित्य के जरिए यह खबर हमें मिलती ही रहती है। यह खबर प्रारंभिक तौर पर तैयार करती है हमें, जागरूक और चेतना संपन्न बनाती है। वर्तमान स्थिति में छिपी असंगतियों और विडंबनाओं को खोलने में इससे हमेशा मदद मिलती रहती है। मुल्क और कौम से जुड़ी खबर का सृजनात्मक रूपांतरण और उपयोग संघर्ष के रचनाधर्मी पहलुओं को पुख्ता आधार देने के लिए जरूरी है।

वर्तमान स्थिति है क्या? कुछ लोगों के लिए यह स्थिति एक शून्य-शून्य की है तो कुछ दूसरे लोगों के लिए निपट शून्य और सन्नाटे की। यह कहने वाले मिल जाएंगे कि संक्रमण के समय मोहभंग के ऐसे दौर आते ही हैं जब मूल्य और मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं, संस्थाएँ बेमाने और एक तरह की अराजकता आ घेरती है। यह कहने वालों की भी कमी नहीं है, 'भाई, सब चलता है। एक बड़े पैमाने पर जब परिवर्तन हो रहे हों, टूट-फूट होना, हिंसा होना, दंगे-फसाद और आतंक फैलना, पर्यावरण का संतुलन भंग हो जाना लाजिमी ही है। इस तरह की प्रतिक्रियाएँ यथास्थिति की स्वीकृति-भर हैं, उनके प्रति कोई नया दृष्टिकोण या अस्वीकृतिमूलक रुख पेश नहीं करतीं। एक तरह ही लाचारगी, निष्क्रियता और समर्पण इन कथनों में झलकता है जिससे स्थिति की विकटता कई गुना बढ़ जाती है।

प्रश्न सीधा और दोटूक है कि वर्तमान स्थिति में लेखक क्या करें? हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारंभ से लेकर अब तक जिन दर्शनों, वादों,

विचारधाराओं और आंदोलनों से प्रेरित, प्रभावित होकर लेखक जिस ढंग से प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता आ रहा है, क्या वैसा करना आज उसके लिए संभव है? जिन संवेदनात्मक उद्देश्यों, विचारधारात्मक-आलोचनात्मक रवैयों को वह अपनी कृतियों के जरिए व्यक्त करता रहा है, बदलती हुई स्थितियों में उन उद्देश्यों और रवैयों की बुनियाद हिलती देखकर भी, क्या वह ठीक वैसा करता रह सकता है? जाहिर है अब वैसे उद्देश्य और रवैये उचित और विश्वसनीय नहीं होंगे। आज हम जिस बड़े संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं, उसमें हम साक्षी बन रहे हैं एक युग के आखिरी सिरे पर पहुँचने के यानी वे सभी दर्शन और विचारधाराएँ-मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, समाजवाद, गांधीवाद अपना अर्थ और आकर्षण खो रहे हैं जो बीसवीं शताब्दी के चिंतन और कलाओं पर छाए रहे। इनसे जुड़ी शासन प्रणालियाँ और संस्थाएँ- लोकतंत्र, साम्यवाद, क्रांति और सर्वसत्तावाद जिन्हें कभी एकमात्र सही और अटल सिद्धांतों के रूप में प्रतिपादित किया गया था, अब शोध के विषय बन रहे हैं और इनमें जुड़ी साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ और सरोकार प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नई कविता, नई कहानी, अकविता, उग्र वामपंथी कविता, विचार कविता, जनवादी कविता आदि जो इन विचारधाराओं और इनके राजनैतिक प्रारूपों से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई थीं- इनके आधारों के सामने भी प्रश्न चिह्न लग गए हैं। एक बड़ी हद तक यह उपभोक्ता संस्कृति के विस्तार, अर्थ-तंत्र के बदलाव, सूचना-तंत्र और टेक्नालॉजी के दबावों की वजह से हुआ है। इससे हमें समाज, संस्कृति और राजनीति पर और उनसे जुड़ी कविता पर नए सिरे से कुछ इस तरह विचार करना होगा जो इंसानी स्वभाव और मानव सभ्यता के विकास का विरोधी न हो। उस सूरत में हम सभ्यता के उन प्रारूपों और विन्यासों की तरफ भी जा सकते हैं जो पुराने होने के बावजूद आज हमारे काम के हों। आज हम एक नए युग के प्रारंभ होने की कसमसाहट प्रसव पीड़ा-सी महसूस कर रहें हैं जैसे कभी भारतेंदु ने आधुनिक युग के प्रारंभ में महसूस की थी। हम देख रहे हैं कि आज अर्थ-तंत्र और टेक्नोलॉजी के दबावों से सामाजिक अंतर्धाराओं में बुनियादी किस्म के परिवर्तन हो रहे हैं जिन्हें नई तरह से, नए सिरे से सिद्धांतबद्ध करना जरूरी हो गया है।

एक बात हमें साहसपूर्वक स्वीकार करनी होगी, बिना आत्मदया दिखाए या आत्मभर्त्सना किए कि इस दौर में हम पूरी तरह खंडित और आत्मविभाजित हो चुके हैं। साथ ही, हमें और अधिक साहस से खंड-खंड होती अपनी अस्मिता और आत्मविभाजन को, उन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारणों की खोज करते हुए चुनौती देनी होगी उन तत्वों और ताकतों को जिनकी वजह से हमारी यह दुर्गति हुई है।

अस्मिता और आत्म कोई हवाई चीजें नहीं हैं। इन्हें हम अर्जित करते हैं सदियों की सभ्यता के विकास के भीतर से- उन आचरणों, विचारों, मिथकों, स्मृति-चिह्नों और बिंबों की मार्फत जो जाने-अनजाने हमें एक पहचान देते हैं, किन्हीं मूल्यों और मर्यादाओं का सामूहिक बोध प्रदान करते हैं- एक अंतर्ग्रंथित जीवन-शैली के तौर पर जिसे हम भारतीय शैली या भारतीय पहचान कहते हैं। यह तथ्य है कि इस पहचान को हम तेजी से गंवाते जा रहे हैं। अभी वक्त है कि हम इस पहचान की खुशबू को अपने बीचोंबीच लौटा लाए- उससे रिश्ता महसूस करते हुए, उससे स्पंदित होते हुए, उसे जांचे-परखें, उसका पुनर्परीक्षण करें और यों ही साहित्य के छद्म क्रांतिकारियों और उत्तर आधुनिकतावादियों की तरह सारवान परंपरा के प्रति नाक-भौं न सिकोड़ते फिरें।

विश्वभर में प्रचलित राज्यतंत्र प्रणालियों को लेकर आज तीव्र मंथन और पुनर्विचार हो रहा हैं और नए समीकरण बन रहे हैं। ऐसे में क्या यह एक भीषण विसंगति ही नहीं है कि हम अपनी इधर-उधर से बटोरी हुई राज्य-तंत्र प्रणाली से चिपके रहें और उसके गिर्द राष्ट्रीय एकता और अखंडता की संकल्पनाएँ बुनते रहें? उधार ली हुई राज्य-तंत्र प्रणाली से बनी और मजबूत हुई राष्ट्रीय एकता और अखंडता की लाठी से आप अलगाववाद, आतंकवाद और सांप्रदायिक दंगों से नहीं निपट सकते। जो प्रणाली एक बड़ी हद तक जिम्मेदार हैं इन समस्याओं को पैदा करने के लिए, उससे या उस पर आधारित राष्ट्रीय एकता और अखंडता जैसी खुशफहमी से इन समस्याओं का निदान भला कैसे हो सकता है? समस्याओं का निदान लोगों के बीच जाकर, उनसे जुड़कर, उनके बीच फैले सांस्कृतिक एकता के तारों को जोड़कर किया जा सकता है बशर्ते मौजूदा राज्य-तंत्र व्यवस्था के स्थान पर हम अपने देश की प्रकृति के अनुकूल एक नए

राज्य-तंत्र के निर्धारण की प्रक्रिया का प्रारंभ कर सके। साम्यवादी राज्यतंत्र प्रणाली और प्रशासनिक ढांचे की विफलता के बाद समाजवादी प्रजातांत्रिक प्रणाली की बात जोर पकड़ रही है। क्या हम इस बात को अपनी परंपरा और प्रकृति के अनुरूप एक नई राज्य-तंत्र प्रणाली के रूप में नहीं गढ़ सकते जो हमारी वास्तविकताओं और आकांक्षाओं, सपनों और मिथकों के ज्यादा करीब हो?

यह काम किसी या किन्हीं राजनेताओं के जरिए हो सकता है, लेकिन राजनेताओं के चरित्र को देखते हुए, उनसे उम्मीद नहीं रह गई है। यह काम बौद्धिकों और साहित्यकारों पर आ पड़ा है जो उन्हें अंजाम देना ही है आज नहीं तो कल आत्महत्या से बचने के लिए। इस संकट की घड़ी में, पूरी संवेदनशीलता और वैचारिक मुस्तैदी से कवियों को अपने समय का हाल ही नहीं बताना, साक्षी-भर ही नहीं बने रहना बल्कि परिवर्तनकारी सामाजिक शक्तियों और आंतरिक प्रक्रियाओं से एकजुट होकर नई संस्थाओं के निर्धारण की दिशा में भी अग्रसर होना होगा। इसके लिए उन्हें एक ओर अर्थ, राजनीति और टेकनोलॉजी के निरंतर दबावों के तहत सभ्यता-संस्कृति के प्रारूपों और सामाजिक स्थितियों और सामाजिक व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों को विचारों और संवेदनाओं के धरातलों पर आत्मसात करना होगा, संघर्ष के लंबे दौरों में से गुजरते हुए, दूसरी ओर मौजूदा परिस्थितियों में निहित और उनसे टकराहटों और सामाजिक अंतर्धाराओं को इस तरह अभिव्यक्त करना होगा कि आम आदमी के संताप और संघर्ष सामने आएँ, साथ ही रचना-प्रक्रिया के दौरान जन्में संदेह, खौफ और मसलहत से बचकर जमीर की आवाज़ को भी अभिव्यक्ति मिल सके। पुराने मिथकों को नए मिथकों में ढालना आसान काम नहीं हैं। इसके लिए अपने पूर्वाग्रहों और प्रतिवर्तों को तोड़ना और बदलते हुए समाज की संरचना के बरक्स इन मिथकों को रखकर देखना होगा और नई वस्तु के समतुल्य लोक-जीवन में से खींचकर लाना होगा। बिंबों, प्रतीकों और लक्षणाओं को, नए सौंदर्य उपकरणों को डी-स्टेवेलाइज करके भाषा की नींव नए सिरे से रखनी होगी। नए सौंदर्यशास्त्र के विषलेषण और मूल्यांकन की नई-से-नई विधियों का केंद्र एक लंबे अरसे से यूरोप रहा है और आज भी है जब कि जरूरत इस बात की है

कि भारतीय उपमहाद्वीप की परिस्थितियों और साहित्य को सामने रखते हुए नए मूल्यांकन आधारों और विधियों की खोज हो।

हमारे देश में राजनीति का जो चरित्र मौजूद है, उसमें कुछ भी साफ-साफ तय करने की, निर्णय लेने की या किसी मूल्य या विचार/विचारधारा पर टिके रहने की मानसिक दृढ़ता का अभाव है। यहाँ हद दर्जे तक धुंधलाने की प्रवृत्ति है (लेखन और अन्य ज्ञान निकायों में भी यह प्रवृत्ति तेजी से फैल रही है।) ताकि कोई चीज अपनी सही, अराजक और खतरनाक शक्ल अख्तियार न कर सके। यह चीजों को गड्डमड्ड करने की- पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद को एक सांस में बड़बड़ाने वाली प्रवृत्ति है जिससे यथास्थिति को बनाए रखने में मदद मिल सके और अवसरवाद पनपता रहे। ऐसे माहौल में दृष्टिकोण संबंधी कोई निश्चित रवैया अपनाना कठिन हो जाता है। हाँ, विद्रोह और संघर्षों को संचालित करने वाली दो दृष्टियाँ इधर साफ दिख रही हैं- राजनीति में भी और साहित्य में भी। एक दृष्टि राजनैतिक अर्थ में उदारवादी-उग्रतावादी है, दूसरी दृष्टि अराजनैतिक अर्थ में उग्र-सुधारवादी। राजनैतिक अर्थ में उग्र-सुधारवादी वे लोग हैं जो व्यवस्था को बनाए रखकर उसमें बदलाव के हामी हैं। दूसरी और अराजनैतिक क्षेत्र के ऐसे उग्रतावादी लोग हैं जो हर प्रकार की व्यवस्था के प्रति विद्रोह करने में विश्वास करते हैं।

इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि लेखकों-बौद्धिकों की मानसिकता और संस्कार भी कई बार परिवर्तनों के आड़े आते हैं। लेखकों-बौद्धिकों का एक वर्ग ऐसा है जो कहता है: "भई, मैं स्वयं इन बातों को ठीक नहीं समझता, पर मुझे लगता है कि हम व्यवस्था को बदल नहीं सकते।" दूसरे ऐसे लेखक-बौद्धिक भी हैं जो साफ-साफ व्यवस्था का पक्ष लेते हैं, उसकी नीतियों का समर्थन करते हैं और उनकी पैरवी के लिए तर्क गढ़ते रहते हैं। ऐसे लेखक सृजन-कर्म के प्रति सच्चे नहीं रह जाते। बुनियादी लेखकीय निष्ठाओं के साथ समझौता करते हुए इन्हें कोई दुविधा नहीं होती। सुविधाएँ बटोरते हुए और प्रलोभनों के जाल में धंसते हुए इन्हें कोई ही संशय नहीं घेरता। ऐसे लेखकों को व्यवस्थापोषक कहेंगे जिनके लिए साहित्यकार के संकट या दायित्व का कोई

प्रश्न नहीं रह जाता और जिनके साथ सही विद्रोही लेखकों की टकराहट निरंतर चलती रहती है।

आज के कवि/बौद्धिक का संकट यह नहीं है कि वह व्यक्तिगत खोल से बाहर आए, खोल से बाहर तो वह कब का आ चुका है और अब उसके वहाँ दुबकने का प्रश्न ही नहीं है। उसका संकट विचारों की विपन्नता का भी नहीं है, वह अधुनातन विचारों और विचारधाराओं से लैस है। उसका संकट अपने प्रति सच्चे रहते हुए एक ओर अपनी सामाजिक संबद्धता को अर्थवान और विश्वसनीय बनाने का है तो दूसरी और विचारों-विचारधाराओं की पुनः पड़ताल का है। यह तब तक संभव नहीं जब तक वह यह नहीं समझ लेता कि वह कहाँ खड़ा है, इतिहास के किस संधि-स्थल पर, संक्रमण के किस दौर में, किन लोगों के बीच खड़ा है, परस्पर काटती चलने वाली किन अंतर्धाराओं में किन सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं से जूझ रहा है तथा उसके विचारों, सरोकारों की जड़े कहाँ हैं? यानी बड़ा संकट उसकी पहचान का है जो पिछले कुछ दिनों से धुंधली पड़ती गई है जिसे आज उसे अभिव्यक्त करना है।

सही और सार्थक अभिव्यक्ति के रास्ते में बाधाएँ भी हैं और खतरे भी। सबसे बड़ा खतरा है अभिव्यक्ति के हथियार यानि शब्द के लगातार होते जा रहे अवमूल्यन का- व्यवस्था द्वारा उसे भोंथरा बनाने की कोशिशों का। मूल्य, मर्यादा, लोकतंत्र, समाजवाद, मानववाद, मार्क्सवाद आदि शब्दों के व्यवस्था द्वारा मनमाने प्रयोग ने इन शब्दों के भीतर की आत्मा नष्ट कर दी है। आज लेखक को इन शब्दों की आत्मा को अपने आचरण से पुनः जगाना होगा। अभिव्यक्ति से जुड़ी दूसरी बात है साहस से सच कहने का मुद्दा। पंजाब हो या बिहार, मणिपुर हो या कश्मीर या सांप्रदायिकता का कोई मुद्दा, क्या वह साहसपूर्वक अपने विचार व्यक्त कर पा रहा है? यह एक बड़ा संकट है। जहाँ साहस दिखाने का मतलब जान गंवाना हो वहाँ लेखक का विसंगतियों, विडंबनाओं से घिर जाना स्वाभाविक ही है। इसे ईमानदार अभिव्यक्ति से खारिज नहीं किया जा सकता है। लेखकीय कर्म और धर्म से जुड़ी यह अभिव्यक्ति नए रास्तों का संधान तो तय कर ही सकती है। अभिव्यक्ति का संकट सीधे-सीधे

उसकी पहचान के संकट से आ जुड़ा है। उसकी अभिव्यक्ति सही, दो टूक और बेबाक तभी होगी जब वह अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े विचारों और संवेदनाओं को, प्रतीकों और बिंबों को, लय और भाषा को अपनी वर्तमान स्थिति की पहचान के सिलसिले में, बदलती हुई आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में से, अवरोधकारी मानव विरोधी शक्तियों से संघर्ष करते हुए साहसपूर्वक उजागर करेगा– पहचान के पुराने धागों को अपनी चेतना में अंतर्ग्रथित करके, एक बड़े युग प्रवर्तनकारी अनुभव और चेतना के रूप में।

239–डी, एम.आई.जी. फ्लैट्स, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली–110027

❑❑❑

# भाषा शिक्षण और राष्ट्रवाद

**डॉ. प्रियंजन**

भारत में भाषा शिक्षण एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का इतिहास सदियों पुराना है। भाषा के निर्माण से लेकर आधुनिक हिंदी में राष्ट्रवादी विचारधारा के सफर को समेटना आसान कार्य नहीं है। किसी राष्ट्र की पहचान एक राष्ट्र के रूप में कैसे होती है इस संबंध में राजनैतिक विचारक एंथोनी डी. स्मिथ ने राष्ट्रवाद की संकल्पना पर लिखते हुए कहा है कि मानव समुदाय, जिनकी अपनी मातृभूमि हो, जिनकी समान गाथाएँ और इतिहास एक जैसा हो, समान संस्कृति हो, अर्थव्यवस्था एक हो और सभी सदस्यों के अधिकार और कर्तव्य समान हो, राष्ट्र है। हालांकि जब हम विश्व के इतिहास पर नज़र डालते हैं, तो बहुत से राजवंशों का इतिहास मिलता है। एक स्वतंत्र इकाई के रूप में राष्ट्र कम मिलते हैं। पिछले पाँच सौ सालों के इतिहास में राष्ट्र का अस्तित्व सामने आता है। भारत का इतिहास पिछले पाँच सौ वर्षों में भाषा और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दृष्टि से उथल-पुथल भरा रहा है। चाहे मुगल हों या अंग्रेजी राज, भाषा और संस्कृति में समयानुसार बदलाव आता रहा है। इस बदलाव का मुख्य कारण राजनैतिक ही रहा है।

18वीं शताब्दी के पूर्व ही अनेक विदेशी यात्री कई नए देशों की खोज करते हुए भारत की ओर भी आ पहुँचे। रोम से कई शताब्दियों पूर्व से ही स्थल मार्ग द्वारा व्यापार होता आ रहा था। यूनान से भी राजनैतिक और व्यापारिक संबंध स्थल मार्ग द्वारा बहुत पहले ही स्थापित हो चुके थे। जल मार्ग से भी पश्चिमी यूरोप के कुछ साहसी व्यवसायी और नाविक आने लगे। शाहजहाँ के

समय में 'सर टॉमस रो' नामक एक अंग्रेज भारत आया था जिसने अंग्रेजों के निवास के लिए सूरत में भूमि शाहजहाँ से ली थी। इधर दक्षिण में वास्को-डि-गामा ने पश्चिमी तट पर गोवा, दमन और दीव को अपना केंद्र बनाकर पुर्तगाली शासन की नींव रखी। इसके पश्चात फ्रांसीसी आए और उन्होंने पांडिचेरी, माही, कारीकल आदि स्थानों में अपने व्यावसायिक केंद्र स्थापित किए। इन केंद्रों में से प्रत्येक देश की व्यावसायिक कंपनी ने अपने एवं अधीन कर्मचारियों के पुत्रों को शिक्षा देने के लिए विद्यालय खोले जिनमें कंपनी के कर्मचारियों के पुत्रों (मात्र पुरुष बालक) को उन्हीं की भाषा में पढ़ाया जाने लगा। किंतु जब इन केंद्रों में भारतीय कर्मचारियों की संख्या बढ़ी, तब पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेजी के बदले एक पंचमेल भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाने लगी जिसे भारतीय लोग फिरंगी भाषा कहने लगे। प्रारंभ में ये सब व्यापारिक कंपनियाँ केवल व्यापार के लिए ही आई थी किंतु पुर्तगाली लोग व्यापार के लिए ही नहीं वरन् ईसाई धर्म का प्रचार करने भी आए थे। इसलिए उन्होंने गोआ, दमन, दीव, कोचीन और हुगली में पैर जमाते ही धर्म परिवर्तन करवाए एवं धर्म परिवर्तन से नए ईसाई बने हुए लोगों को शिक्षा देने के लिए विद्यालय खुलवा दिए। जिनमें पुर्तगाली और स्थानीय भाषा में लिखना, पढ़ना और कैथोलिक धर्म सिखाया जाता था। फ्रांसीसियों ने भी पांडिचेरी और चंद्रनगर में अपने व्यापार केंद्रों के साथ प्रारंभिक विद्यालय खोल दिए जिनमें भारतीय अध्यापक मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देते थे। इसी दौरान ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी अपने व्यावसायिक केंद्रों में काम करने वालों के बच्चों के लिए और इसाई मत का प्रसार करने के लिए विद्यालय खोले। डच लोग भी सत्रहवीं शताब्दी तक भारत में आ चुके थे। सन् 1790 में प्रोटेस्टेंट ईसाई मत में विश्वास रखनेवाले डेन लोग (डेनमार्क में रहने वाले) भारत के दक्षिण पूर्वी तट पर ट्रंकोबार नामक स्थान पर पहुँचे। डेनों ने आते ही पुर्तगाली और तमिल भाषाएँ सीख कर हिंदू और मुस्लिम बच्चों के लिए सन् 1625 में सत्रह विद्यालय तथा ईसाई बच्चों के लिए चार मिशनरी स्कूल खोले। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी इन सबकी देखा-देखी अपने विद्यालय खोलने का विचार किया। तंजौर के रेजिडेंट सुलीवन ने उच्च वर्ग के अधिकारियों के बच्चों की शिक्षा के लिए सन् 1748 में जो योजना प्रस्तुत की वह कंपनी ने

स्वीकार कर ली और संचालक मंडल (कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स) ने सन् 1787 में इस योजना को हाथ में लेकर प्रत्येक विद्यालय के लिए सौ पौंड वार्षिक सहायता स्वीकार करते हुए आदेश दिया कि इन विद्यालयों में अंग्रेजी, गणित, तमिल, हिंदी और ईसाई धर्म सिखाया जाए। ये अंग्रेजी विद्यालय बहुत लोकप्रिय हो गए क्योंकि इनमें केवल उन ब्राह्मणों के पुत्रों को ही शिक्षा दी जाती थी जो अपने पुत्रों को कंपनी में क्लर्क बनाकर रखना चाहते थे।

अंग्रेजों ने पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिए 31 दिसंबर 1600 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना इंग्लैंड में की। स्थापना के बाद लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक कंपनी का प्रधान उद्देश्य पूर्वी देशों से व्यापार मात्र करना था। इसके साथ-साथ ईसाई धर्म के प्रचार के भी कुछ प्रयत्न चलते रहे। 1659 ई. में कंपनी के निदेशकों ने भारतीयों के बीच ईसाई मत का प्रचार करने का भी निर्णय लिया। इसी उद्देश्य से कुछ ईसाई पादरियों का भारत में आगमन हुआ। 1698 में कंपनी के आज्ञापत्र का नवीकरण करते हुए ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक धारा जोड़ दी कि कंपनी अपने भारतीय कारखानों में धर्म गुरुओं या धर्म मंत्रियों को भी रख सकती है। इस आज्ञापत्र के अनुसार कलकत्ता, बंबई, मद्रास, (कोलकाता, मुंबई, चेन्नई) स्थित कारखानों में कुछ पादरी रहने लगे और वे ईसाई तथा एंग्लो इंडियन बालकों की शिक्षा की देखभाल करने लगे। भारतीय बच्चों की शिक्षा के लिए इस समय तक कोई प्रयास नहीं किया गया था।

1765 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी केवल एक व्यापारिक संस्था न रही वरन् एक राजनैतिक शक्ति भी बन गई। इस समय तक कंपनी भारतीयों की शिक्षा के प्रति उदासीन थी। परंतु अब अधीनस्थ प्रदेशों के बच्चों की शिक्षा का उत्तरदायित्व उनके सामने था। फिर भी दो कारणों से कंपनी इस जिम्मेदारी को टालती रही। पहला कारण था कि कंपनी लाभ कमाने को ही अपना मुख्य ध्येय समझती थी। दूसरा यह कि इंग्लैंड में अभी तक राज्य सरकार ने शिक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लिया था। दीवानी मिलने के बाद कंपनी के कुछ अधिकारियों का ध्यान भारतीयों की शिक्षा की ओर भी आकृष्ट हुआ। बंगाल के नवाब जो कंपनी से पहले इस प्रांत के शासक थे, शिक्षा प्रचार के लिए मदरसों को अनुदान दिया करते थे। राज्य के उलटफेर के सिलसिले में ये मदरसे

आश्रयहीन हो गए और इनकी दशा शोचनीय हो गई। कंपनी ने उन्हें पुनर्जीवित करने का कोई प्रयास नहीं किया परंतु अमीरों और सरदारों का विश्वास प्राप्त करने के लिए तथा उनके प्रभाव से लाभ उठाने के लिए 1781 ई. में कलकत्ते (कोलकाता) में एक मदरसे की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य कंपनी के उच्च पदों पर काम करने के लिए मुस्लिम सरदारों के लड़कों को तैयार करना था। साथ-ही-साथ उन्हें अपना पक्षधर भी बनाना था।

1781 ई. में बनारस में बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य हिंदुओं के धर्म, साहित्य और कानून की रक्षा करना तथा न्याय कार्य के लिए योग्य व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त करना था। कंपनी के पहले देशी राजाओं तथा नवाबों के आश्रय में मखतब, मदरसे, टोल और पाठशालाओं का उत्थान हो रहा था। कंपनी के शासक अपने पूर्ववर्ती शासकों से पीछे रहना नहीं चाहते थे। ऐसा करने से उन्हें जनता की दृष्टि में नीचे गिर जाने का भय था। अतः उन लोगों ने प्रभावशाली भारतीयों के बच्चों को शिक्षा देने का निश्चय किया। उनके प्रयासों में उनकी कूटनीति तथा आवश्यकता दोनों सन्निहित थी। भारतीय मुकदमें, हिंदू तथा मुस्लिम रीति एवं नीतियों के अनुसार देखे जाते थे। इस दिशा में शिक्षा का उद्देश्य था कि अंग्रेज न्यायधीशों की सहायता के लिए कुछ पढ़े-लिखे कर्मचारी जो कंपनी के अधीन उच्च पदों पर काम करेंगे और साथ-ही-साथ कंपनी के भक्त बन कर उसको मजबूत करेंगे। मदरसा और संस्कृत कॉलेज की स्थापना के द्वारा कंपनी ने अपनी धार्मिक तटस्थता का परिचय दिया जिससे भारतीय जनमत में अंग्रेजी राज्य के प्रति किसी प्रकार की शंका न रहे।

प्रारंभ में अंग्रेजों ने अपनी शिक्षा नीति को भारतीयों के अनुकूल ही रखा। हिंदू और मुस्लिम दोनों को उनकी प्राचीन पद्धतियों के अनुसार ही शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा का माध्यम संस्कृत, अरबी तथा फारसी होता था। पाश्चात्य शिक्षा के ज्ञान को देने में जल्दबाजी नहीं की गई। मिशनरियों के धर्म प्रचार के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गई थी। 1765 से लेकर 1813 ई. तक भारत में अंग्रेजों की यही शिक्षा नीति थी। 1823 ई. में जब कंपनी का आज्ञा-पत्र पुनः

नवीकरण के लिए ब्रिटिश संसद में आया तो इसकी 43वीं धारा में धर्म तथा शिक्षा प्रचार के संबंध में निम्नलिखित बातें सम्मिलित की गई:-

• भारतवासियों को शिक्षित करना अंग्रेजों का उत्तरदायित्व है। इसके लिए उन्हें उचित व्यवस्था करनी चाहिए। जो लोग भारत में जाकर धर्म तथा शिक्षा का प्रचार करना चाहते हैं उन्हें पूरी सहूलियत दी जाए।

• प्रतिवर्ष एक राशि, जो एक लाख रुपये से कम न होगी, अलग रखी जाए, जो साहित्य को अनुप्राणित करने तथा उसका उद्धार करने और भारतवासियों में विज्ञान का ज्ञान प्रदान करने में लगाई जाए।

कंपनी के निदेशक चाहते थे कि संस्कृत और फारसी का अध्ययन हो। उन्होंने अंग्रेजी भाषा का कहीं नाम तक नहीं लिया। 1813 ई. के आज्ञा-पत्र ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा की नींव डाली। इससे भारतीय जनता की शिक्षा का भार अब सरकार के ऊपर आ गया। युद्धों में उलझे रहने के कारण 1823 ई. तक शिक्षा के क्षेत्र में कंपनी का कोई विशेष प्रयास न रहा। 1823 ई. में कंपनी ने कलकत्ता (कोलकत्ता) में एक 'लोक शिक्षा समिति' नामक संस्था का संगठन किया। इसके दस सदस्य थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय शिक्षा का संपूर्ण प्रबंध इसी समिति को सौंप दिया। उसे आदेश दिया गया कि वह सुझाव दे कि लोगों की शिक्षा किस प्रकार अच्छी की जाए। संस्थाओं के लिए अनुदान का प्रबंध भी इसी समिति के हाथ में था।

भारतीयों में शिक्षा नीति को लेकर इस समिति में मतभेद हो गया और सदस्यों के दो दल हो गए। एक प्राच्यवादी और दूसरा पाश्चात्यवादी। प्राच्यवादी भाषाओं के प्रसार के लिए प्रयत्नशील थे। उनका विश्वास था कि हिंदुओं और मुसलमानों में अंग्रेजी शिक्षा के लिए अच्छी धारणा नहीं है। अत: कुछ दिनों तक संस्कृत आदि भाषाओं के माध्यम से ही शिक्षा दी जाए। उन लोगों ने कंपनी के निदेशकों को यह भी सुझाया कि अंग्रेजी और पाश्चात्य विज्ञान की शिक्षा प्रारंभ करने का अर्थ विरोध मोल लेना होगा। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी पढ़ाने के लिए न पुस्तकें हैं न शिक्षक हैं और न उनके प्रशिक्षण का कोई प्रबंध है। कंपनी के निदेशकों ने समिति की बात मान ली। लेकिन इस समिति के कार्यों का शीघ्र विरोध होने लगा। आश्चर्य का विषय तो यह है कि भारतीयों ने इस नीति का

विरोध किया। राजा राममोहन राय इनमें प्रमुख थे। इसका मुख्य कारण था कि भारतीय मिशनरी स्कूलों और कॉलेजों से जो छात्र अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके निकलते थे उन्हें शीघ्र ही कंपनी में अच्छी-अच्छी नौकरियाँ मिल जाती थीं। अत: जनता की प्रबल माँग थी की उन के लिए अंग्रेजी स्कूल और कॉलेज अधिक संख्या में खोले जाएँ। समिति के पाँच सदस्य जनता की इस माँग के पूरे समर्थक थे। समिति की जब बैठक होती थी तो दोनों दल अपने-अपने मत को लेकर उलझ पड़ते थे और किसी मत पर नहीं पहुँच पाते थे। यह झगड़ा बहुत दिनों तक चलता रहा। पाश्चात्यवादी दल का विचार था कि भारतीयों को अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा दी जाए। अरबी और संस्कृत स्कूलों को बंद करके उनके स्थान पर अंग्रेजी शिक्षा पर ही व्यय किया जाए। यह दल चाहता था कि ई. 1823 के आज्ञा-पत्र के अनुसार शिक्षा के लिए जो एक लाख रुपये का अनुदान मिला है, वह केवल अंग्रेजी शिक्षा पर ही व्यय किया जाए। लॉर्ड मेकाले, जो गवर्नर जनरल की कौंसिल के 'कानूनी सलाहकार' थे इस लोक शिक्षा समिति के भी सदस्य थे। वह भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के पक्षधर थे परंतु उन्होंने समिति के वाद-विवाद में कभी भाग नहीं लिया। कमेटी के दोनों दलों ने 1835 ई. के प्रारंभ में निश्चित किया कि उस झगड़े को गवर्नर जनरल और उनकी कौंसिल के समक्ष अंतिम निर्णय के लिए रखा जाए। उस समय लॉर्ड विलियम बैंटिक भारत के गवर्नर जनरल थे। उन्होंने मेकाले से 1823 ई. के आज्ञा-पत्र की 43वीं धारा की व्याख्या माँगी। मेकाले ने 2 फरवरी 1835 ई. को अपना प्रसिद्ध विवरण पत्र लिखा जिसका बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। उसने उपरोक्त आज्ञा-पत्र की 43वीं धारा की व्याख्या इस प्रकार से की :-

उस धारा के 'साहित्य' शब्द का अर्थ प्राच्य साहित्य नहीं बल्कि अंग्रेजी साहित्य होना चाहिए। 'विद्वान देशवासियों' का तात्पर्य ऐसे विद्वानों से है जो 'लोक' के दर्शन और 'मिल्टन' की कविता से परिचित हैं। तत्पश्चात् मेकाले ने शिक्षा के माध्यम का प्रश्न लिया। उसके मतानुसार तात्कालिक प्रचलित भाषाएँ ज्ञान वितरण करने में अक्षम थीं, क्योंकि उनमें साहित्य और वैज्ञानिक कोश का अभाव था। उसने संस्कृत और फारसी की तुलना अंग्रेजी से करते हुए लिखा कि "एक अच्छे योरोपीय पुस्तकालय की केवल एक आलमारी भारत तथा अरब के

संपूर्ण साहित्य के बराबर होगी"। मेकाले ने अंग्रेजी भाषा को प्राच्य भाषाओं की तुलना में अधिक उपयोगी बताया। भारतीय भाषाओं जैसे संस्कृत, अरबी की उपयोगिता को नकारते हुए 'निस्यंद सिद्धांत' अथवा छनाई के सिद्धांत का समर्थन किया। इस सिद्धांत के अनुसार कुछ चुने हुए भारतीय लोगों को ही शिक्षा दी जाए। शिक्षित हो जाने पर वह स्वयं अपने देशवासियों की शिक्षा का प्रबंध करेंगे। यदि उच्चवर्गीय भारतीयों में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया जाए तो वे इसका संदेश साधारण जनता तक पहुँचा देगें। फलस्वरूप जनता अपने नेताओं का अनुकरण कर अंग्रेजी राज्य की भक्त बन जाएगी। मेकाले का विचार था कि अंग्रेजी शिक्षा से जन-समूह का एक भाग ऐसा बनाया जाए जो रंग रूप में भारतीय हो परंतु स्वाद, विचार, आचरण तथा बुद्धि से अंग्रेज हो। मेकाले ने अपना विवरण पत्र तैयार कर पूरी दलीलों के साथ तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड बैंटिक के समक्ष प्रस्तुत किया। लॉर्ड बैंटिक ने 7 मार्च 1835 को मेकाले के विवरण पत्र को स्वीकृति प्रदान कर दी। इसकी चार धाराएँ थी-

• ब्रिटिश सरकार का महान उद्देश्य भारत में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रचार करना होगा। सारा सरकारी कोष केवल अंग्रेजी शिक्षा पर ही व्यय किया जाएगा।

• सरकार अभी तक की स्थापित भारतीय ज्ञान की किसी संस्था को बंद नहीं करना चाहती, ताकि जो उस शिक्षा को पसंद करते हैं उन्हें वह उपलब्ध हो सके। वहाँ के तमाम अध्यापकों और विद्यार्थियों को वेतन या छात्रवृत्ति पूर्ववत् मिलती जाएगी परंतु भविष्य में भर्ती होने वालों को नहीं मिलेगी।

• पूर्वी ग्रंथों के प्रकाशन पर अब कोई पैसा खर्च नहीं किया जाएगा।

• अंग्रेजी साहित्य तथा शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा होगी।

इस घोषणा से भारत में अंग्रेजी शिक्षा नीति स्पष्ट हो गई। 22 वर्षों से शिक्षा के संबंध में जो संघर्ष चला आ रहा था उसका भी अंत हो गया।

वर्तमान समय में मेकाले के विवरण पत्र के ऊपर पर्याप्त आलोचना हो चुकी है। कुछ लोग इसे बलात् शिक्षा में अंग्रेजी माध्यम लादने का दोषी ठहराते हैं, कुछ लोग पूर्वी भाषाओं की भर्त्सना करने के लिए इसकी निंदा करते हैं। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए इसे जान-बूझ कर की गई शरारत नहीं

कहा जा सकता। शिक्षा नीति को निर्धारित करने के लिए जो लोक शिक्षा समिति बनाई थी उसके आधे सदस्य अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में थे। बहुत से भारतीय अंग्रेजी शिक्षा की माँग कर रहे थे। उनमें राजा राममोहन राय अग्रगण्य थे। उन्होने प्राच्यवादियों का विरोध किया और 11 दिसंबर 1823 को गवर्नर जनरल के पास लिखा कि भारतवासियों को दर्शन, गणित तथा अन्य लाभदायक विज्ञानों की शिक्षा दी जाए। इसके लिए अंग्रेजी स्कूलों और कॉलेजों की माँग की गई। अंग्रेजी भाषा के व्यावहारिक महत्व की ओर भारतीय पहले से आकृष्ट हो चुके थे। मिशनरी संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त किए हुए नवयुवक कंपनी के बड़े-बड़े पदों पर आसीन हो गए। इससे भारतीयों में अंग्रेजी पढ़ने की लालसा तीव्र हो गई। अत: यह कहना कि केवल मेकाले ही के कारण अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम बनाई गई, उचित नहीं है। भारतीय तो पहले से ही इस भाषा के ज्ञान की माँग कर रहे थे। मेकाले ने जोरदार शब्दों में अंग्रेजी का पक्ष लिया और सरकार से निर्णय कराया कि भारतीयों को अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से दी जाए।

उपर्युक्त परिस्थितियों की समीक्षा करते हुए कहा जा सकता है कि मेकाले ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए पर्याप्त कार्य किया था। इससे भारतीयों में संघर्ष करने की नवचेतना जागृत हुई। उनके वैज्ञानिक और आर्थिक दृष्टिकोण में परिर्वन हुआ। अत: मेकाले और उसकी शिक्षा नीति का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

ईस्ट-इंडिया कंपनी ब्रिटिश सरकार के आज्ञा-पत्र के अुनसार भारत में व्यवसाय या शासन का कार्य करती थी। आज्ञा-पत्र की अवधि समाप्त होने पर 1853 ई. में फिर उसे नवीकरण के लिए ब्रिटिश संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो संसद सदस्यों ने भारतीय शिक्षा में एक स्थाई नीति ग्रहण करने की आवश्यकता को अनुभव किया। कंपनी के उच्च अधिकारी भी चाहते थे कि भारत की प्रजा का बौद्धिक और नैतिक स्तर इतना उच्च हो जाए कि उन्हें विश्वास के कामों के लिए सुयोग्य कर्मचारी पर्याप्त संख्या में मिल सकें। उनकी सच्चाई और सुयोग्यता पर ही विविध सरकारी विभागों का संचालन संभव था। अत: अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा बौद्धिक और व्यावसायिक शिक्षा देने की व्यवस्था

की गई। भारतीय शिक्षा की समीक्षा के लिए ब्रिटिश संसद ने एक संसदीय समिति का गठन किया। समिति ने भारतीय शिक्षा के विभिन्न पहलुओं का पूर्ण अध्ययन कर 1854 ई. में एक संदेश पत्र प्रकाशित किया। इसी संदेश पत्र को 'वुड का संदेश या घोषणा पत्र कहते हैं।' क्योंकि इसके लिखे जाने में कंपनी के निदेशक 'वुड' की प्रेरणा पूर्णतः विद्यमान थी। यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घोषणा-पत्र है। इसे भारतीय शिक्षा का चार्टर भी कहा गया है। इसकी सौ धाराओं में संपूर्ण भारत की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण चित्र खींचा गया है।

अंग्रेज सरकार ने जिस शिक्षा नीति को अपनाया उसका प्रथम उद्देश्य बौद्धिक विकास माना गया, दूसरा भारतीयों के नैतिक चरित्र को उठाना और तीसरा कंपनी के लिए विश्वसनीय और शुभचिंतक कर्मचारियों को प्राप्त करना रहा। इस संदेश-पत्र में प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षा समर्थकों के वाद-विवाद की चर्चा की है। उसमें प्राच्यवादियों के विचारों को एकदम से ठुकराया नहीं गया बल्कि उसमें कहा गया था कि "एशियाई ज्ञान ऐतिहासिक तथा पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ये ज्ञान हिंदू और मुस्लिम कानूनों के अध्ययन के भी साधन हैं। उन्हीं के द्वारा भारत की लोक भाषाओं का सुधार हो सकेगा। परंतु इनमें न नया साहित्य है, न नया आलोक। "अतः इस पत्र के आचार्य ने जोर देकर कहा कि जिस शिक्षा का प्रचार हम भारत में करना चाहते हैं उसका संबंध यूरोपीय कला, विज्ञान, दर्शन आदि से है।"

पत्र के अनुसार देशी भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी को स्थापित कर देना हमारी इच्छा नहीं है, क्योंकि अधिकांश जनसमुदाय तो इन्हीं देशी भाषाओं को समझता है, बोलता है और इन्हीं के द्वारा ज्ञान भी प्राप्त करता है। अतः इन देशी भाषाओं को भी सार्वजनिक शिक्षा का माध्यम बनाना उचित है। अंग्रेजी शिक्षा को उन लोगों के लिए शिक्षा का माध्यम बनाया जाए जो इस भाषा के द्वारा यूरोपीय ज्ञान की शिक्षा सुगमता से ग्रहण कर सकते हैं। ऐसे कुछ लोगों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के लिए देशी भाषाओं को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। इसी निर्णय के अनुसार शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी तथा देशी दोनों भाषाएँ हुई, परंतु विशेष जोर शुरू से ही अंग्रेजी पर दिया गया। शिक्षा के उद्देश्य और भाषा संबंधी

विवाद तो बहुत दिनों से चले आ रहे थे, परंतु इस घोषणा पत्र ने जो मौलिक कार्य किया वह शिक्षा विभाग के नवनिर्माण का था।

सन् 1900 ई. में कोलकाता में ईस्ट इंडिया कंपनी के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड मार्क्विस वेलेजली के द्वारा फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। लॉर्ड वेलेजली ने भारत आकर अनुभव किया कि कंपनी के कर्मचारी केवल एक व्यापारिक संस्था के कर्मचारी नहीं बल्कि अब एक सरकार के अधिकारी हैं। उन्हें शिक्षा, भाषा ज्ञान और सदाचार की आवश्यकता है। जिसके लिए वह एक संस्था का निर्माण करना चाहते थे जिसे वह भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं के साहित्य, कानून तथा ज्ञान-विज्ञान का केंद्र बनाना चाहते थे। वेलेजली ने गिलक्रिस्ट की अध्यक्षता में 'ओरिएंटल सैमिनरी' की स्थापना की। बाद में यही संस्था फोर्ट विलियम कॉलेज के रूप में परिवर्तित हुई। कंपनी के इंग्लैंड स्थित अधिकारियों ने इसे व्यापक रूप देना स्वीकार नहीं किया। अतः इसे छोटे रूप में केवल प्रमुख भारतीय भाषाओं के सामान्य अध्ययन केंद्र के रूप में ही चलाया गया। कॉलेज में अलग-अलग भाषाओं के अलग-अलग प्राध्यापक नियुक्त किए गए। हिंदुस्तानी के सबसे पहले प्रोफेसर डॉ.जॉन गिलक्रिस्ट नियुक्त किए गए। उन्होंने कॉलेज में हिंदुस्तानी के नाम पर उर्दू को प्रोत्साहन दिया न कि लोकप्रचलित खड़ी बोली को। उनके पश्चात् हिंदुस्तानी भाषा के प्रोफेसर के रूप में कैप्टन जेम्स मुअट, कैप्टन विलियम टेलर तथा मेजर विलियम प्राइस को नियुक्त किया गया। प्राइस के बाद हिंदुस्तानी के किसी प्रोफेसर की नियुक्ति नहीं हुई केवल मुंशी और पंडित जी अध्यापन कार्य करते रहे। उपर्युक्त प्रोफेसरों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य डॉ.जॉन गिलक्राइस्ट ने किया। वस्तुतः वे कॉलेज में नियुक्त होने के बहुत पहले से ही हिंदुस्तानी भाषा की सेवा में सच्ची भावना से लगे हुए थे तथा भारत में आकर अपना कार्य आरंभ कर चुके थे। उन्होंने हिंदुस्तानी से संबंधित 20 से भी अधिक रचनाएँ अपने जीवनकाल में की थी, जिनमें से कुछ इस प्रकार से हैं :-

ए डिक्शनरी, इंग्लिश एंड हिंदुस्तानी, द ग्रामर ऑफ द हिंदुस्तानी लैंग्वेज, द ओरिएंटल लिंगविस्ट, द हिंदी स्टोरी टेलर, डायलॉग्स-इंग्लिश एंड हिंदुस्तानी, द हिंदी मैंनुअल आदि।

वस्तुतः अंग्रेजी के माध्यम से हिंदी के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से गिलक्राइस्ट का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। टेलर, प्राइस आदि लेखकों ने कुछ हिंदी अंग्रेजी शब्द कोशों का निर्माण कार्य किया। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार कॉलेज के पत्रों में 'हिंदुस्तानी' के स्थान पर आधुनिक अर्थ में 'हिंदी' नाम को प्रचलित करने का श्रेय प्राइस को है। उनसे पूर्व कॉलेज के जिस विभाग को 'हिंदुस्तानी विभाग' कहा जाता था उनके प्रयास से वह 'हिंदी विभाग' कहलाने लगा। फोर्ट विलियम कॉलेज सन् 1800 ई. से सन् 1854 ई. तक चलता रहा तथा इस अवधि में इसके हिंदी प्रोफेसरों के अतिरिक्त उनके निर्देशन में विभिन्न मुंशियों, पंडितों एवं अध्ययनकर्ताओं ने हिंदी के विकास में विभिन्न रूपों में योगदान दिया। मुंशी सदासुखलाल 'नियाज', इंशाअल्ला खाँ, लल्लूजी लाल, पं. सदल मिश्र के अतिरिक्त इंद्रेश्वर, गंगाप्रसाद शुक्ल, मधुसूदन अर्थालंकार, दीनबंधु आदि विद्वान व्यक्ति भी समय-समय पर कार्य करते रहे। फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के पीछे लॉर्ड वेलेजली की दूरदृष्टि काम कर रही थी। उन्हें ऐसी संस्था के अभाव का अनुभव हुआ जहाँ नवागत सिविलियन कर्मचारियों की शिक्षा, योग्यता, आचरण और चरित्र की देखरेख का समुचित रीति से प्रबंध हो सके। वह चाहते थे कि भारतीय साम्राज्य जैसी अनमोल वस्तु पाकर उनके कर्मचारी भारतवासियों की भाषाओं और रीति-रस्मों का ज्ञान प्राप्त कर उनके संरक्षक बन कर शासन की बागडोर भलीभांति संभालें। नियमित रूप से हिंदुस्तानी और हिंदी की शिक्षा-व्यवस्था प्रारंभ करने का श्रेय फोर्ट विलियम कॉलेज को ही जाता है।

अठारहवीं शताब्दी में जब अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से भारत के अनेक प्रांतों पर अधिकार कर लिया तब ईसाई धर्म के प्रचार में मिशनरियों (पादरियों) का बड़ा सहयोग मिला। हिंदी भाषा को आधुनिक रूप देने में ईसाई मिशनरियों का महत्वपूर्ण हाथ है। मिशनरियों की घोषित नीति थी कि 'हमारा महान् उद्देश्य युवकों को प्रगतिशील साहित्य और विज्ञान की शिक्षा देना है। साथ ही, उससे भी महान उद्देश्य उन्हें ईसाई धर्म के सिद्धांतों का ज्ञान कराना भी है। चार्ल्स ग्रांट, विलियम केरे, डॉ. डफ आदि पादरियों ने आधुनिक शिक्षा के लिए कई योजनाओं को क्रियान्वित किया। चार्ल्स ग्रांट ने सन् 1712

ई. में अंग्रेजी की शिक्षा के लिए जोरदार प्रयत्न किए। इसके बाद सन् 1821 ई. में 'कलकत्ता यूनिटेरियन कमेटी' की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य शिक्षा और बौद्धिक तर्क तथा पुस्तकों के प्रकाशन से जनता के अज्ञान और अंधविश्वास को दूर करना था।

मिशनरियों ने सन् 1817 ई. में 'कलकत्ता स्कूल बुक' और इस प्रकार की अन्य संस्थाओं जैसे 'आगरा स्कूल बुक सोसायटी', 'नार्दर्न टैक्स्ट एंड बुक सोसायटी', इलाहाबाद आदि की स्थापना की। इन सोसायटियों और शिक्षा संस्थाओं में अंग्रेजी के साथ ही हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में पाठ्यपुस्तकें प्रयुक्त होती थीं। कोलकाता के निकट श्रीरामपुर में विलियम कैरे, माशमैन और वार्ड ने डैनिश मिशन की स्थापना की थी और उसी समय से ईसाई धर्म की पुस्तकों का अनुवाद भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं में होने लगा। बाईबल का प्रथम अनुवाद कैरे ने ही किया है। वार्ड तीक्ष्ण दृष्टिसंपन्न विद्वान थे। उन्होंने पूरे भारतवर्ष को घूम-घूम कर देखा था एवं तत्कालीन हिंदू समाज को अच्छी तरह से समझने का प्रयत्न किया था। उनकी 'हिंदूज' नामक पुस्तक उस समय के हिंदू समाज के सभी पहलुओं पर बहुत अच्छा प्रकाश डालती है। मार्शमैन ने केवल ईसाई मत के धर्मग्रंथों का ही हिंदी रूपांतर नहीं प्रकाशित कराया, बल्कि वे ज्ञान-विज्ञान की अन्य शाखाओं पर भी पुस्तक लिखते व लिखवाते रहे। पं. रतनलाल नामक एक लेखक ने इनकी इतिहास की एक पुस्तक का 'कथासागर' नाम से अनुवाद किया। धीरे-धीरे मिशनरियों ने देशभर में अपने स्कूल और कॉलेज खोल दिए।

सन् 1842 में हाऊस ऑफ लार्ड्स में दिए गए वक्तव्य से पता चलता है कि ब्रिटिश भारत में 56 अंग्रेजी स्कूल खोले गए और उन पर 714 हजार रुपए प्रति वर्ष खर्च किए जाते थे। चेन्नई में प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया गया और माध्यमिक शिक्षा की उपेक्षा की गई। सन् 1746 में सर चार्ल्सवुड ने कंपनी के डायरेक्टरों को जो मसौदा प्रस्तुत किया, उसमें पुनः सरकार का ध्यान शिक्षा की ओर खींचा गया। सर चार्ल्सवुड के प्रयत्न से सन् 1858 में इलाहाबाद में विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। शिक्षा की प्रगति का लेखा-जोखा लेने के

लिए सरकार ने सन् 1882 में शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। उसने सन् 1849 से 1882 तक की शिक्षा प्रगति के आँकड़े दिए।

सन् 1848 तक ईसाई मिशनरी ही शिक्षा संस्थाओं को चला रहे थे। इसी दौरान भूगोल, इतिहास, धर्मशास्त्र, राजनीति, चिकित्सा, अर्थशास्त्र, विज्ञान, साहित्य, ज्योतिष, व्याकरण आदि नाना विषयों की सरल पाठ्यपुस्तकों का हिंदी गद्य में निर्माण हुआ।

इस प्रकार ईसाई मिशनरियों, ईस्ट इंडिया कंपनी, फोर्ट विलियम कॉलेज ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव भारतीयों पर दो प्रकार से पड़ा। कुछ भारतीय समझने लगे कि हमारा देश बहुत पिछड़ा है उसकी कोई गौरवपूर्ण संस्कृति नहीं है। परिणामतः वे अपने को अधिक-से-अधिक यूरोपीय सभ्यता के रंग में रंगने लगे। दूसरी ओर उन्हीं शिक्षितों में से कुछ में भारतीयता और राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई। भारत में सामाजिक आंदोलन इन्हीं ईसाई पादरियों और पश्चिमी प्रभाव का प्रत्यक्ष परिणाम था। इस मानस जागृति के मूल पुरुष राजा राममोहनराय हुए जिन्हें श्रीरामपुर की मिशनरियों से प्रेरणा मिली और उन्होंने इसका हिंदू समाज में प्रचार किया।

19वीं शताब्दी में भारत के राजनैतिक वातावरण में अनिश्चितता तथा अस्थिरता के कारण जनता में राष्ट्रीय तथा राष्ट्रहित की भावना जागृत हुई। मुस्लिम शासकों की जड़ें उखड़ चुकी थी और विदेशी सत्ता भारत में अपने पैर जमाने की कोशिश में थी। 18वीं शताब्दी के अंत तक अंग्रेज देशी राजाओं और नवाबों को अपने अधीन करने में बहुत हद तक सफल हो गए थे, जिसके परिणामस्वरूप फारसी का प्रभुत्व समाप्त हो रहा था और भारतीय भाषाओं का युग प्रारंभ हो रहा था। अंग्रेजों के संपर्क से भारतीय समाज में दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ परिलक्षित हुई-एक भारतीयता से चिपके रहने की, दूसरी भारतीयता से विरत होने की। भारतीयों को राजनैतिक क्षेत्र में पराजय तो स्वीकार करनी पड़ी, पर उन्होंने सांस्कृतिक क्षेत्र में पराजय स्वीकार नहीं की। बहुसंख्यक आधुनिकता के समर्थक शिक्षिकों व भारतीय नेताओं ने यह अनुभव किया कि पराधीनता में भी हमें अपनी प्राचीन संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए तथा इन

लोगों ने समझ लिया था कि जनता में अपने विचारों की अभिव्यक्ति तथा जन-आंदोलन के लिए भारतीय भाषाओं का आश्रय लिया जाए। अधिकांश नेता इस बात से सहमत थे कि जिस भाषा को अधिकांश जनता समझ सके, जन आंदोलन की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके, वह भाषा हिंदी ही हो सकती है।

20वीं शताब्दी के आरंभ में धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों की राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस दिशा में राजा राममोहन राय इस आंदोलन के प्रथम उल्लेखनीय नेता थे। इस्लाम और ईसाई धर्म के सिद्धांतों ने यद्यपि राजा राममोहन राय के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला था तो भी उनका मौलिक दृष्टिकोण हिंदू धर्म पर आधारित था। वे पतनोन्मुख समाज व्यवस्था के आचार-विचारों और मान्यताओं के कट्टर विरोधी थे, वे हिंदुओं के बहु देववाद और कर्मकांड, पुनर्जन्म और अवतारों की उनकी अवधारणा, मूर्तिपूजा, पशुबलि और सती प्रथा जैसे अनेक रस्म रिवाजों को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, जो हिंदूमत के मूल आधारों के रूप में प्रचलित थीं। उनके मतानुसार हिंदू धर्म व्यापक मानवतावादी आदर्शों पर आधारित था यही कारण है कि उन्होंने हिंदू धर्म को शुद्ध करने का काम अपने हाथों में लिया और सदियों से एकत्र हुए अंधविश्वास रूपी कूड़ा-करकट को बाहर फेंकने का बीड़ा उठाया। वे चाहते थे कि हिंदू धर्म को एक ऐसे सच्चे राष्ट्रीय धर्म के रूप में पुनर्जीवित किया जाए जो सामाजिक जीवन की नई परिस्थितियों के अनुरूप हो। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का लक्ष्य देश को अंधेरे में रखना था। वे ऐसी प्रणाली चाहते थे जिसमें गणित, दर्शन, रसायनशास्त्र, शरीर विज्ञान के साथ उपयोगी विज्ञानों की शिक्षा शामिल हो। राजा राममोहन राय ने उपर्युक्त सुधार कार्य को पूरा करने के लिए सन् 1828 ई. में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। उन्होंने उपनिषदों को प्रमाण मान कर हिंदू धर्म की वैज्ञानिकता प्रतिपादित की। औपनिषिदिक सिद्धांत उनके समाज सुधार के प्रेरक आधार थे।

अपने सिद्धांतो के प्रचार हेतु राजा राममोहन राय ने 'तत्वबोधिनी पत्रिका' का प्रकाशन किया। महाराष्ट्र के बालशास्त्री जामेकर तथा गोपाल हरिदेशमुख ने समाज में जागरण लाने का प्रयास किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए चलाए गए

हिंदी आंदोलन के बहुत पहले ही हिंदी उत्तर भारत में हर कहीं एक सामान्य भाषा का महत्व पा चुकी थी। इसी कारण पहले राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना करते हुए यह आशा प्रकट की थी कि किसी-न-किसी भारतीय भाषा को हमारे देश में इस तरह विकसित करना चाहिए और सर्वमान्य बनाना चाहिए जिससे वह समस्त भारतीय लोगों की आकांक्षाओं और अभिलाषाओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखने वाला एक प्रमुख साधन बन जाए। समाज के विविध क्रिया-कलापों ने समाज सुधार आंदोलन और भारत की राष्ट्रीय नवजागृति दोनों को ही अत्यधिक बल प्रदान किया। रूढ़िवादी विचार पद्धति की दमघोंटू जकड़ से सामाजिक चेतना को मुक्त करने और इस प्रकार जनता को नए समय की पुकार की ओर उन्मुख करने की दिशा में ब्रह्म समाज एक सर्जनात्मक प्रयास था। इस प्रकार ब्रह्म समाज केवल एक धार्मिक सुधार आंदोलन मात्र नहीं था। इसका कारण था कि उन दिनों सामाजिक और राजनैतिक प्रगति धार्मिक सुधारों से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी थी। व्यक्तिगत स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता, भाषा और सामाजिक संस्थाओं तथा सामाजिक संबंधों को बंधनमुक्त करने तथा राष्ट्रीय नवजागृति की शक्तियों को सबल बनाने में ब्रह्म समाज ने निःसंदेह अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

ब्रह्म समाज की स्थापना के दो वर्ष पश्चात ही राज राममोहन राय विदेश चले गए और फिर वहाँ से नहीं लौटे। 17 सितबंर 1833 को विदेश में ही उनका देहांत हो गया। उनकी मृत्यु हो जाने पर भी ब्रह्म समाज जीवित रहा। उसे देवेंद्रनाथ ठाकुर का नेतृत्व मिला। वे हिंदू धर्म को रूढ़िवादिता से पृथक कर उसे यूरोप के नवीन ईसाई मत के साथ प्रतिष्ठित करना चाहते थे। राजा राममोहन राय के निधन के बाद केशव चंद्र सेन ने सन् 1840 ई. में ब्रह्म समाज को स्वीकार किया। केशवचंद्र हिंदी भाषा के बड़े पक्षधर थे। केशव चंद्र ने यह अनुभव किया कि सारे देश में एक भाषा की आवश्यकता है और वह हिंदी ही हो सकती है, इसी से राष्ट्रीय एकता पुष्ट हो सकती है। 1864 में वह मुंबई आ गए। उन्होंने 'सुलभ समाचार' नामक पत्रिका निकाली। केशवचंद्र जी ने जहाँ हिंदी को सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली भाषा स्वीकार किया वहीं उसे भारत की एकता के लिए परम आवश्यक भी माना। उनके प्रार्थना गीतों में सर्वधर्म समन्वय का

भाव हुआ करता था। विभिन्न प्रांतों में ब्रह्म समाज की 124 शाखाएँ थीं। इसके अंग्रेजी, बंगाली, हिंदी, उर्दू और मराठी में इक्कीस पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं। ब्रह्म समाज के सदस्यों में समाज सेवा के साथ-साथ राष्ट्रभक्ति भी थी। इसके सदस्यों में सर जगदीश चंद्र बोस, प्रफुल्लचंद्र राय, राजेंद्रनाथ सील और रवींद्रनाथ ठाकुर जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति उल्लेखनीय हैं।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती थे। 12 फरवरी, 1825 को सौराष्ट्र के टंकारा नामक गाँव में उनका जन्म हुआ। 13 वर्ष की आयु में सन्यास ग्रहण कर मूलशंकर नामक यह नवयुवक दयानंद सरस्वती बन गया और मथुरा जाकर विरजानंद से वेद आदि का अध्ययन किया। हिंदू समाज में फैली हुई बुराईयों को दूर करने के लिए तथा यहाँ के रीति रिवाजों को सुधारने के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती ने कई सुधारवादी नेताओं से संपर्क किया। ब्रह्म समाज के नेता केशवचंद्र सेन तथा अन्य बंगाली समाज-सुधारकों पर स्वामीजी का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने वैदिक धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति के प्रचार के लिए 10 अप्रैल, सन् 1875 ई. में काकड़बाडी, बंबई में आर्य समाज की स्थापना की। सच्चे आर्य धर्म के अंतर्गत मूर्तिपूजा, जातिवाद, बालविवाह और बहुदेववाद का कोई स्थान नहीं है। वे अपने मत का प्रचार एक ऐसी भाषा में करना चाहते थे जिसके द्वारा समस्त भारत में प्रचार किया जा सके। उनकी दृष्टि में वह भाषा हिंदी थी। उन्होंने यह ठान लिया कि वे देशभर में अपना समाज सुधार का आंदोलन हिंदी में ही चलाएँगे और हिंदी का भी प्रचार-प्रसार साथ-साथ करेंगे क्योंकि यह वह भाषा थी जो कि उस समय भी देश में सबसे अधिक समझी और बोली जाती थी। इसको सीखना आसान था और यह सभी देशवासियों को एक दूसरे के समीप लाने में पूरी तरह सक्षम थी। इसके द्वारा ही देश में एकता स्थापित हो सकती थी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वामी जी ने हिंदी सीखी और घोषणा की कि आर्यसमाजियों के लिए हिंदी जानना अनिवार्य है। हिंदी ही सारे भारत की भाषा है। उन्होंने स्वयं 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी गद्य में लिखा व हिंदी के माध्यम से अपने मत का प्रचार किया। इसके फलस्वरूप देश के प्रमुख नगरों में आर्य समाज की शाखाएँ खुलने लगी जिससे हिंदी प्रचार का कार्य आगे बढ़ता गया। आर्य समाज के द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर स्वभाषा,

स्वधर्म, स्वदेश एवं स्वराज्य का आंदोलन भी चलाया गया। इसकी समस्त गतिविधियों का माध्यम हिंदी ही था। जहाँ-जहाँ आर्य समाज की शाखाएँ खुली वहाँ-वहाँ हिंदी प्रचार को व्यापक अवसर मिला। आर्य समाज द्वारा पंजाब, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों में अनेक शिक्षण संस्थाएँ खोली गई।

इन संस्थाओं ने भी माध्यम के रूप में हिंदी को ही अपनाया। आर्य समाज ने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। आर्य समाज के सत्संगों तथा वार्षिक अधिवेशनों के अवसर पर भी सारी कार्यवाही हिंदी में ही चलती थी। इसके द्वारा अनेकों कन्या पाठशालाओं, गुरुकुलों तथा महिला विद्यालयों को स्थापित किया गया। इन संस्थाओं में हिंदी माध्यम को ही अपनाया गया। आर्य समाज द्वारा जो हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई उनमें 'भारत सुदशा', 'आर्य-समाचार', 'धर्मोपदेश', 'आर्य प्रकाश' आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित आर्य 'मार्तंड-अजमेर' आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा ही प्रकाशित 'आर्यपत्र' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इससे भी हिंदी भाषा का व्यापक प्रचार हुआ ।

आर्य समाज ने विदेशों में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। विदेशों में केन्या, डच गुयाना, फीजी, मॉरिशस, लंदन, स्याम, बर्मा, मालवा आदि देशों में भी हिंदी तथा संस्कृत के अनेक विद्यालय स्थापित किए। स्व. प्रकाशवीर शास्त्री ने 'हिंदी और आर्य समाज' लेख में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है "न केवल भारत में अपितु अफ्रीका, मॉरीशस, स्याम, बर्मा, मालवा तथा यूरोप के देशों में जहाँ भी आर्य समाज है वहाँ हिंदी में कार्य किए गए, हिंदी में विद्यालय खोले गए और प्रकाशन कार्य भी हिंदी में हुआ।" आर्य समाज धर्म संस्कृति का पर्यायवाची है। अतः देश की संस्कृति की रक्षा के लिए आर्य समाजी प्रत्यक्ष राजनीति में सम्मिलित होते रहे हैं। इनमें देश-प्रेम ऊँचे दर्जे का रहा है। आर्य समाज की सभाओं, परिषदों, पाठशालाओं में देश-प्रेम के गीतों का महत्व रहा है। 'भारत माता की जय' उनका सबसे प्रिय नारा रहा है। भारतीय स्वतंत्रता के आंदोलन में आर्य-समाज का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। अंग्रेजों की दृष्टि में आर्य समाज राजद्रोही था। लाला लाजपत राय, श्यामजी कृष्ण वर्मा, मदन लाल धींगरा आदि की देशसेवाएँ सर्वविदित हैं। ये सभी आर्यसमाजी थे।

राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से आर्य समाज ने स्वदेशी को स्वीकार किया था और देश-विकास के कार्यक्रम भी निश्चित किए थे। देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर स्वतंत्र प्रज्ञावान नागरिकों को तैयार करने के लिए एक नवीन शिक्षा पद्धति बनाई गई। उसे मूर्त रूप देने के लिए गुरुकुल कांगडी की स्थापना की गई।

डॉ. लक्ष्मी नारायण गुप्त ने 'हिंदी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन' नामक पुस्तक में लिखा है उन दिनों अधिकांश व्यक्ति स्वामीजी के धार्मिक दृष्टिकोण को समझने और ग्रहण करने के लिए आर्य समाज के हिंदी पत्रों को पढ़ते और दूसरों में भी प्रचार करते थे। अनेक धर्मप्रेमी अनपढ़ लोगों ने हिंदी पढ़ना इसलिए प्रारंभ किया, जिससे वे आर्य समाज के धार्मिक सिद्धांतो को समझ सकें। आर्य समाज ने राष्ट्रीय एकता एवं स्वदेशाभिमान के कारण हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया। उसे माध्यम के रूप में भी स्वीकृति प्रदान की। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी प्रचार का जो निर्णय लिया, उस पर समाज में पूरी तरह अमल हुआ और सभी ने उनका अनुकरण करते हुए हिंदी प्रसार में अपनी भूमिका निभाई। इस संदर्भ में स्वामी श्रद्धानंद का भी विशेष स्थान है। वह स्वामी दयानंद सरस्वती से पूरी तरह प्रभावित थे और उन्होंने समाज और हिंदी तथा हिंदी माध्यम से शिक्षा के कार्य को तीव्र गति से आगे बढ़ाया। आर्य समाज के नेता महात्मा मुंशीराम स्वामी ने देश में गुरुकुल प्रणाली का समर्थन किया। सन्यास लेने के बाद मुंशीराम 'श्रद्धानंद' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने सन् 1902 में हरिद्वार के पास कांगड़ी ग्राम में गरुकुल की स्थाना की जहाँ आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, इतिहास तथा गणित आदि विषयक हिंदी ग्रंथों की रचना की। इनमें स्वामी नित्यानंद, पं. भीमसेन शर्मा, पं. आर्यमुनी, पं. तुलसी आदि थे। नवीनचंद्र राय, लाला लाजपत राय के समर्थन से पंजाब में हिंदी को बल मिला। सार्वजनिक जीवन में वे हिंदी के हिमायती थे। 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' और राष्ट्रीय विद्यापीठ 'लोक सेवा मंडल' की स्थापना में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। उच्च शिक्षा के लिए हिंदी के प्रयोग पर बल दिया गया।

इस धार्मिक आंदोलन के कारण सारे उत्तर भारत में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार हुआ। इसका कारण था कि आर्य समाज के आदिगुरु स्वामीजी ने

गुजराती होने पर भी हिंदी को अपनाया। स्वामीजी के 'सत्यार्थ प्रकाश' में ऐसा कोई विषय नहीं है जिसका इसमें उल्लेख न किया गया हो। स्वामीजी ने धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी के विकास के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आर्य समाज के प्रयत्नों से ही हिंदी को राष्ट्रभाषा बनने का सार्थक सम्मान प्राप्त हुआ। महाराज हंसराज द्वारा स्थापित डी.ए.वी कॉलेजों से प्रशिक्षित अनेक युवक भी इस दिशा में आगे आए। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत में जो आर्थिक और राजनैतिक विकास हुए, वे पुरानी सड़ी-गली धार्मिक मान्यताओं, रूढ़िग्रस्त परंपराओं और भीतर से खोखले धार्मिक संबंधों से कतई मेल नहीं खाते थे। ऐसी अवस्था में परिवर्तन स्वाभाविक था। परिवर्तन के समर्थकों में भी अंतरविरोधी और प्रायः परस्पर टकराने वाली प्रवृतियाँ परस्पर दृष्टिगोचर हो रही थी। बुद्धिजीवियों का एक हिस्सा पश्चिम के आक्रमणों से राष्ट्रीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए पुरानी धार्मिक परंपराओं के पुनरुत्थान को एक महत्वपूर्ण तत्व मानता था। ये लोग पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति के मुकाबले भारत की आध्यात्मिक संस्कृति को खड़ा करते थे। उनका दावा था कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से श्रेष्ठतर है और वे हर किस्म के विदेशी सांस्कृतिक प्रभाव की निंदा करते थे। ये हिंदू धर्म के परंपरागत रीति-रिवाजों, रस्मों और कर्मकांडों के दृढ़ता से पालन पर जोर देते थे। हालाँकि वे कुछ पुराने सड़े-गले रिवाजों का विरोध भी करते थे। दूसरी प्रवृत्ति के नेता वे बुद्धिजीवी थे जो समय की आवश्यकता के अनुसार हिंदू धर्म और समाज में सुधार के दृढ़ समर्थक थे। दूसरी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप हमारे देश में ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। ब्रह्म समाज की स्थापना राजा राममोहन राय ने की थी और उनके आदर्श सन् 1870 मे महादेव गोविंद रानाडे ने बंबई (मुंबई) में प्रार्थना समाज की स्थापना की।

महाराष्ट्र में महादेव गोविंद रानाडे के नेतृत्व में अनेक सामाजिक संस्थाओं की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य समाज सुधार एवं भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना था। श्री रानाडे के नेतृत्व में वर्षों तक यह समाज कांग्रेस का एक अंग बनकर चलता रहा। इस समाजसुधार की मुख्य भाषा हिंदी होने कारण हिंदी के भाषा का प्रचार-प्रसार भी स्वयं ही होता रहा।

रामकृष्ण परमहंस कोई दार्शनिक विद्वान नहीं थे, पर उनकी आत्मा ने परम सत्य का दर्शन जरूर किया था जो सभी धर्मों का मूल है। वे सभी धर्मों में एक ही सत्य का दर्शन किया करते थे। उन्होंने न तो पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी और न वह भारतीय शास्त्रों के अध्येता थे। शंकराचार्य के अद्वैतवाद दर्शन को उन्होंने अपनी भक्तिसाधना से सिद्ध किया। उसके प्रबल प्रचारक परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानंद हैं। उन्होंने सन 1898 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना करते हुए समाज सेवा को प्रधानता दी। ईसाई मिशन से स्वामी विवेकानंद को रामकृष्ण मिशन प्रारंभ करने की प्रेरणा मिली। वस्तुतः यह एक समाज सुधारवादी तथा आस्तिकवादी आंदोलन है। रामकृष्णमिशन ने न्यायालयों, डाक-विभाग, शिक्षा विभाग आदि विविध स्थानों पर हिंदी के प्रयोग के लिए प्रयत्न किए। नागरी प्रचारणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग आदि संस्थाओं की स्थापना में इसका योगदान है।

मिशन ने हिंदी लेखकों और कवियों को भी प्रभावित किया। कहानी, उपन्यास, निबंध, आत्म-चरित्र, यात्रा एवं काव्य विधाओं पर भी आर्य समाज का गहरा प्रभाव पड़ा।

कहा जा सकता है कि भारतीय नेताओं ने यह समझ लिया था कि जनता में अपने विचारों की अभिव्यक्ति तथा जन आंदोलन के लिए ऐसी भाषा की जरूरत है जिसे अधिकांश जनता समझ सके और वह जन आंदोलन की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और वह भाषा हिंदी ही हो सकती थी। ईस्ट इंडिया कंपनी का उद्देश्य कंपनी के कर्मचारियों को देशी भाषा का ज्ञान कराना था। सन् 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कर उर्दू व हिंदी की पुस्तकें तैयार कराई गई। ब्रह्म समाज और आर्य समाज का क्षेत्र बढ़ता गया। समाज सुधार के कार्यक्रमों से हिंदी भाषा के विकास और प्रचार में बहुत सहायता मिली। प्रार्थना समाज का उद्देश्य सामाजिक सुधार एवं भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना था। इन्हीं के उद्देश्यों को लेकर केशवचंद्र सेन ने चेन्नई में 'वैदिक समाज' की स्थापना की। वे हिंदी के बड़े हिमायती थे। स्वामी विवेकानंद ने सभी सुधारों का मार्ग हिंदू धर्मशास्त्रों में ही खोज निकाला,

साथ-ही-साथ हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में सभी प्रभावशाली सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अपने-अपने पत्र प्रकाशित किए और उनके द्वारा अपनी आवाज़ जनता तक पहुँचाई। मुद्रणालयों के प्रचार से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन सरल हो गया था। परिणामस्वरूप हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार बढ़ा और हिंदीतर प्रांतों के नेताओं ने इसे राष्ट्रीय स्तर पर अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। 1938 में सुभाष चंद्र बोस ने वर्धा के हिंदी ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट के दूसरे अधिवेशन में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि "हिंदी का प्रचार इस लिए किया जा रहा कि यह बहुत ही व्यापक रूप में बोली और समझी जाती है और भाषा विचार से सरल तथा नम्य है इस की शैली सरल तथा स्वाभाविक अवश्य होनी चाहिए। हमें एक मिश्रित भाषा का निर्माण नहीं करना चाहिए जो कि न तो हिंदी न उर्दू और न हिंदुस्तानी हो। जो भाषा उत्तर में सामान्यतया बोली जाती है वही हमारी भाषा का प्रमाण हो।"

**संदर्भ ग्रंथ**


1. भारतीय शिक्षा का इतिहास, अर्जुन पब्लिकेशन हाऊस पृष्ठ सं 120

2. सम्मेलन पत्रिका, लेख, 'राजा भोज और अंग्रेज बहादुर में शिक्षा के प्रचार में कौन श्रेष्ठ हैं डॉ. रामकुमार वर्मा, प्रयाग' संस्करण: ज्येष्ठ, आषाढ़2002 पृष्ठ 4

3. नागरी प्रचारणी सभा, काशी संस्करण सं. 2022 वि.

4. रजत जयंती ग्रंथ, प्रकाशक मोहनलाल भट्ट दूसरा खंड, हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

5. हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (अष्टम भाग), संपादक: डॉ. विनयमोहन शर्मा, नागरी प्रचारणी सभा, काशी। संस्करण सं 1900-1940

6. हिंदी साहित्य का इतिहास (पहला भाग), आचार्य रामचंद्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, शंभुनाथ वाजपेयी, नागरी मुद्रण, काशी। संस्करण संवत् 2041 वि.

7. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृतियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : सन् 1990

8. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, भारतेंदु भवन, चंडीगढ़, संस्करण 1965

9. हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (अष्टम भाग), संपादक डॉ. विनयमोहन शर्मा, नागरी प्राचारणी सभा, काशी। संस्करण सं. 2029 वि.

10. रजत जयंती ग्रंथ 1962, प्रथम खंड, डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, प्रकाशक: मोहनलाल भट्ट राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा। संस्करण सन् 1962

11. भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण सन् 1948

12. राष्ट्रभाषा प्रचार का इतिहास (अखिल भारतीय हिंदी संस्था संघ) सितंबर 1982

13. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र, मयूर पेपरबैक्स, सरस्वती प्रिंटिग प्रेस, नोएडा, संस्करण 1992

14. राष्ट्रभाषा प्रचार का इतिहास, अखिल भारतीय हिंदी संस्था संघ, प्रकाशन वर्ष 1988

हिंदी अधिकारी, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू

❑❑❑

# हिंदी की दशा और दिशा परिवर्तित करने में भारतेंदु का योगदान

**डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल**

सामान्यत: किसी प्राणी द्वारा अपने विचारों और भावनाओं को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त संकेत, ध्वनियाँ और शब्द भाषा कहलाते हैं। भाषा के माध्यम से प्राणी एक-दूसरे से जुड़ते और एक-दूसरे को समझते हैं।

यूँ तो भाषा किसी भी प्राणी के लिए महत्वपूर्ण है, किंतु मनुष्य जैसे उच्च बौद्धिक स्तर के प्राणी के लिए यह और भी महत्वपूर्ण है। भाषा प्राणी के मनोभावों को व्यक्त करने का माध्यम है। इससे वह अपनी इच्छाएँ और आवश्यकताएँ व्यक्त करता है।

इस सृष्टि में जब से मानव अस्तित्व में आया, उसने अपनी भावनाओं को रूप देने और इच्छाओं को प्रकट करने के लिए ध्वनियाँ और फिर शब्द गढ़े, जो कालांतर में एक निश्चित भाषा के रूप में अस्तित्व में आई। बाद में एक भाषा से विभिन्न भाषाओं का जन्म होता गया होगा और इन भाषाओं के व्याकरणों की संरचना हुई होगी तथा उनका मानकीकरण हुआ होगा। भाषा का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना मानव जाति का।

भाषा से तात्पर्य किसी विशेष देश या जनसमाज में प्रचलित शब्दावली और उसे बरतने के ढंग से है।[1]

'भाषा' शब्द का संबंध 'भाष' (बोलना) धातु से है अर्थात् 'भाषा' का शब्दार्थ है जिसे बोला जाए।..... अपने विस्तृतम् अर्थ में भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम अपने विचारों को दूसरों पर व्यक्त करते हैं या सोचते हैं।[2]

डॉ. सतीश शर्मा ने पूरे विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या छह हजार बताई है। उनके अनुसार विश्व में 620 करोड़ की आबादी में कभी 7 से 8 हजार भाषाएँ प्रयोग में लाई जाती थीं, लेकिन वर्तमान में लगभग 6 हजार भाषाएँ ही जीवित हैं। अत्याधुनिकता के बदलते परिवेश में सन् 2050 ई. तक विश्वभर में कुल 2500 भाषाएँ ही अपने अस्तित्व को बचा पाएंगी। इन भाषाओं में आज भी 497 भाषाएँ अपनी अंतिम अवस्था में हैं। अकेले भारत में जिसकी वर्तमान आबादी 115 करोड़ (वर्तमान में लगभग सवा करोड़) के आंकड़े को पार कर गई है, के छत्तीसगढ़ प्रांत की 77 बोलियों का अस्तित्व संकट में है।..... अभी भी दुनियाभर में 119 भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें जुबान और कानों के बजाय आँखों और हाथों की जरूरत होती है।[3]

वैसे देखा जाए तो सूचना-तकनीक के इस युग में जिन भाषाओं ने तकनीक के साथ सामंजस्य-संतुलन बना लिया, वे परिवर्तनशील हैं, उन्हें बोलने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है और जो भाषाएँ परिवर्तनशील नहीं हैं, उनका अस्तित्व समाप्त होने की ओर है। किसी भाषा को जीवित रहने के लिए परिवर्तनशीलता और तकनीक के साथ सामंजस्य बिठाने का गुण होना चाहिए। अंग्रेजी इसका सुंदरतम उदाहरण हो सकती है। यही स्थिति हिंदी की भी है। इसने भी पर्याप्त सीमा तक स्वयं को परिवर्तनशीलता की राह पर अग्रसर किया है। इसने फारसी, अरबी, पंजाबी के अनेक शब्दों को ग्रहण कर अपना प्राचीन स्वरूप बदला है। सूचना तकनीक के साथ इसने सामंजस्य बिठाया है। यह सूचना माध्यमों की भाषा बनकर जनसंचार माध्यमों द्वारा चहुंमुखी विकास की तरफ उन्मुख है। हिंदी में अनेक भाषाओं के शब्दों की संख्या बढ़ने के कारण इसका सरलीकरण हुआ है। अंग्रेजी के अनेक शब्दों को ग्रहण किए जाने के कारण कुछ विद्वान इसे हिंग्लिश नाम दे रहे हैं तो अरबी, फारसी, पंजाबी, अंग्रेजी शब्दों की संख्या बढ़ने के कारण कुछ विद्वान इसे 'खिचड़ी' भाषा कह रहे हैं। विद्वान इसे नई हिंदी, मिश्रित भाषा और खिचड़ी भाषा की संज्ञा दे रहे हैं।[4]

जिस हिंदी भाषा का प्रयोग हम आज करते हैं, उसका मूल आर्यों से जुड़ा है। भारतीय आर्य ईरानियों एवं दरद लोगों से अलग होकर 1500 ई. पू. के आसपास पश्चिमी एवं पश्चिमोत्तर सीमा से भारत आए। भारत में आर्य भाषा का

प्रारंभ 1500 ई. पू. के आसपास होता है। तब से आज तक भारतीय आर्य भाषा की आयु साढ़े तीन हजार वर्षों की हो चुकी है। भाषिक विशेषताओं के आधार पर भारतीय आर्य भाषा की इस लंबी आयु को तीन कालों में बांटा गया है[5]-

1. प्राचीन आर्य भाषा: 1500 ई. पू. - 500 ई. पू.

2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा: 500 ई. पू. - 1000 ई.

3. आधुनिक आर्य भाषा: 1000 ई. से अब तक

1500 ई. पू. से 800 ई. पू. तक वैदिक संस्कृत प्रचलन में थी। संस्कृत का यह स्वरूप वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि में मिलता है। 800 ई. पू. से 500 ई. पू. तक लौकिक संस्कृत थी। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल में जनभाषा पर आधारित 'वैदिक' एवं 'लौकिक संस्कृत' भाषा के ये दो रूप साहित्य में प्रयुक्त हुए। दूसरे रूप-लौकिक संस्कृत को पाणिनी ने अपने व्याकरण में जकड़कर उसे सदा सर्वदा के लिए एक स्थायी रूप दे दिया, किंतु जनभाषा भला इस बंधन को कहाँ मानती? वह अबाध गति से परिवतित होती रही, बढ़ती रही। इस भाषा, जनभाषा के मध्यकालीन रूप को ही 'मध्यकालीन आर्यभाषा' की संज्ञा दी गई है। लगभग 1000 ई. के आसपास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ हैं- सिंधी, लहंदा, पंजाबी, हिंदी, गुजराती, मराठी, बंगला, असमी, उड़िया, सिंहली तथा जिप्सी।

भारत की प्रमुख भाषा हिंदी की बात करें तो इसका आविर्भाव 10वीं शताब्दी के लगभग से होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार हिंदी का विकास काल इस प्रकार है[6]-

1. आदिकाल संवत् 1050-1375 (सन् 993-1318)

2. पूर्व मध्यकाल संवत् 1375-1700 (सन् 1318-1643)

3. उत्तर मध्यकाल संवत् 1700-1900 (सन् 1643-1843)

4. आधुनिककाल संवत् 1900-1984 (सन् 1843-1927)

पाँच उपभाषाओं और 18 उपबोलियों में विभाजित हिंदी का स्वरूप इस प्रकार है-

1. पश्चिमी हिंदी : कौरवी (खड़ी बोली), कन्नौजी, बुंदेली, बांगरू (हरियाणवी) और ब्रज

2. पूर्व हिंदी : अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी

3. राजस्थानी : मारवाड़ी, मेवाती, मालवी, जयपुरी

4. पहाड़ी : गढ़वाली, कुमाउंनी, नेपाली

5. बिहारी: भोजपुरी, मगही, मैथिली

हिंदी का साहित्यिक स्वरूप गद्य एवं पद्य दोनों में समान रूप से व्यक्त हुआ है। ब्रज, अवधि के बाद इसकी काव्य रचना खड़ी बोली में होने लगी। महान साहित्यकार एवं पत्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी को नई दिशा दी है। उन्होंने हिंदी की दशा परिवर्तित करने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने पद्य एवं गद्य दोनों को अपना लेखन क्षेत्र बनाया है। हिंदी की अपार सेवा के कारण हिंदी साहित्य-यात्रा का एक काल भारतेंदु के नाम समर्पित हो गया। डॉ. नगेंद्र और डॉ. हरदयाल ने यह काल सन् 1968 और 1900 ई. के बीच माना और इसे पुनर्जागरण काल की संज्ञा दी है।[7]

वहीं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु काल को हिंदी साहित्य के प्रथम उत्थान का नाम देकर इसकी अवधि संवत् 1925 से 1950 (सन् 1868-1893 ई.) तक मानी है।[8]

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी के आकाश के दैदीप्यमान नक्षत्र रहे हैं। उन्होंने न केवल हिंदी को निखारा, बल्कि उसका ऐसा स्वरूप और दिशा दी कि यह भाषा बहुत लोकप्रिय हो गई और जन-जन की भाषा बन गई।

वे न केवल हिंदी, अपितु संस्कृत, मराठी, गुजराती, उर्दू और पंजाबी आदि भाषाओं के भी ज्ञाता थे। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी की लगभग सभी विधाओं पर लेखनी चलाई। आश्चर्यजनक यह कि मात्र 35 वर्ष जीवित रहे भारतेंदु ने अनेक नाटक, कविताएँ लिखीं, जो कालजयी रचनाएँ बन गईं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 1850 ई. में एवं मृत्यु 1885 ई. में हुई। पैंतीस वर्ष की अल्पायु में उन्होंने हिंदी साहित्य की जितनी सेवा की, वह आश्चर्यजनक है।..... हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

उन्होंने 1968, 1973 और 1974 में क्रमशः कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन का प्रकाशन आरंभ किया। उस समय में उन्होंने स्त्रियों के उत्थान हेतु 'बाल-बोधिनी' (1974 ई.) नामक पत्रिका भी प्रकाशित की।[9]

नाटकों पर हरिश्चंद्र ने खूब लेखनी चलाई। उनके नाटक कई वास्तविकताओं को उघाड़ते हैं।। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिश्चंद्र', 'श्री चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'विषस्य विषमौषधम्', 'अंधेरनगरी' तथा 'नीलदेवी' इन नाटकों में शुमार हैं। उनके अनूदित नाटकों में हैं- 'विद्यासुंदर', 'रत्नावली', 'पाखंड-विडंबन', 'धनंजय विजय', 'कर्पूरमंजरी', 'दुर्लभ बंधु' आदि। उनके अनूदित और मौलिक सभी नाटकों की संख्या लगभग डेढ़ दर्जन है।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' को नाटक की प्रहसन विधा में रखा जाता रहा है। आकार-प्रकार छोटा होने के कारण इसे एकांकी कोटि में भी रखा जा सकता है। यह एकांकी हिंदू धर्म में विन्यस्त मांस भक्षण, शराब सेवन तथा अन्य तरह के भ्रष्ट आचरण पर करारा व्यंग्य है। मंदिरों और मठों में फैले अनाचार की यह एकांकी आत्मालोचन के तरीके से जांच करता है। हास्य और व्यंग्य का अद्भुत संयोग इस एकांकी की अन्यतम विशेषता है।[10]

अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर, द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचंद्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्तमाला गूंथते हुए दिखाई देते थे, दूसरी ओर मंदिर के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और मंदिरों, स्त्रीशिक्षा, समाजसुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे। प्राचीन और नवीन का ही सुंदर सामंजस्य भारतेंदु की कला का विशेष माधुर्य है।[11]

भारतेंदु काल न केवल नाटक, अपितु निबंध के लिए भी उर्वरा रहा। इस दौर में भारतेंदु के अतिरिक्त अन्य कई प्रसिद्ध निबंधकार हुए हैं। उनके निबंधों में धर्म, राजनीति, समाजसुधार एवं आर्थिक समस्याओं आदि मुद्दों पर गहन चिंतन समाहित है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए ये निबंध आम

पाठकों तक सरलता से पहुँचे। यह काल निबंधों का समृद्धि काल भी कहा जाता है। भारतेंदु के साथ ही प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट तथा राधाचरण गोस्वामी जैसे ख्यातिलब्ध निबंधकार उस दौर में हुए हैं।

भारतेंदु ने पुरातत्व, इतिहास, धर्म, कला, समाजसुधार, जीवनी, यात्रावृत्तांत, भाषा, साहित्य आदि अनेक विषयों पर निबंध लिखे हैं, जिनमें से अनेक में व्यंग्य-शैली का अद्भुत आकर्षण विद्यमान है। उनके यात्रावृत्तांत और ऋतुवर्णन संबंधी निबंध अधिक सजीव हैं।[12]

हिंदी गद्य साहित्य की एक विधा जीवनी भी है। इसमें किसी ख्यात व्यक्ति, महापुरुष अथवा प्रतिभा के जीवन का विवरण रोचक शैली में लिखा जाता है। भारतेंदु काल में इस विधा पर बहुत प्रशंसनीय कार्य हुआ।

भारतेंदु ने विक्रम, कालिदास, रामानुज, जयदेव, सूरदास, शंकराचार्य, बल्लभाचार्य, मुगल बादशाहों, मुसलमान महापुरुषों तथा लॉर्ड मेयो, रिपन प्रभृति अंग्रेज-शासकों से संबद्ध अनेक महत्वपूर्ण जीवनियाँ लिखीं, जो 'चरितावली', 'बादशाहदर्पण', 'उदयपुरोदय' और 'बूंदी का राजवंश' नामक गंथों में संकलित हैं।[13]

भारतेंदु ने उपन्यास के क्षेत्र में भी कार्य किया है। मराठी उपन्यास को आधार बनाकर भारतेंदु ने 'पूर्ण प्रकाश' और 'चंद्रप्रभा' नामक उपन्यासों की रचना की। 'हिंदी भाषा' नामक पुस्तक उनकी भाषा संबंधी चिंतन की प्रमुख पुस्तक है।[14]

भारतेंदु हरिश्चंद्र एक श्रेष्ठ कवि भी थे। उनमें देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी थी। इसका प्रस्फुटन उनके काव्य में बखूबी हुआ है। उनकी कविताओं में शृंगार रस भी मिलता है। भारत के नागरिकों पर अत्याचार करते अंग्रेजों के विरुद्ध उन्होंने तीखा आक्रोश व्यक्त किया है। उनसे भारत की दुर्दशा देखी नहीं गई और कह उठे कि आओ इसके लिए सब मिलकर रोएँ।

नवीन धारा के बीच भारतेंदु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था। नीलदेवी, भारतदुर्दशा आदि नाटकों के भीतर आई हुई कविताओं में देश दशा

की जो मार्मिक व्यंजना है, वह तो है ही, बहुत-सी स्वतंत्र कविताएँ भी उन्होंने लिखीं जिनमें ही देश के अतीत गौरव गाथा का गर्व, कहीं वर्तमान अधोगति की क्षोभभरी वेदना, कहीं भविष्य की भावना से जगी हुई चिंता इत्यादि अनेक पुनीत भावों का संचार पाया जाता है।[15]

उनकी काव्य रचनाएँ परंपरानुरूप और नवीन दोनों प्रकार की हैं। परंपरानुरूप काव्य रचनाओं में शृंगार, भक्ति, दिव्य-प्रेम आदि से संबंधित रचनाएँ मिलती हैं। नवीन रचनाओं में राजभक्ति, देशभक्ति, भाषोन्नति तथा अन्य अनेक सुधार संबंधी विचार प्रकट किए गए हैं। उनकी नवीन भाषा बोध की कविताओं में 'निज भाषा', विजय वल्लरी, भारत शिक्षा, भारत वीरत्व, नए जमाने की मुकरी आदि कविताएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।[16]

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने न केवल विशुद्ध रूप से काव्य रचनाओं में अपनी काव्य प्रतिभा उद्घाटित की, अपितु उन्होंने नाटकों में भी श्रेष्ठ काव्य की अभिसृष्टि की है। उन्होंने नाटकों के माध्यम से न केवल अपनी देश भक्ति की भावना व्यक्त की और कुव्यवस्था पर करारा प्रहार किया, अपितु इनके माध्यम से हिंदी को नई दिशा और दशा देने के साथ ही कविताओं के माध्यम से बहुत कुछ कहा है। 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक में वे तत्कालीन सामयिक यथार्थ को नाटकीयता के साथ बेहतर तरीके से व्यक्त करते हैं तो 'अंधेर नगरी' में वे मनोरंजनात्मक शैली में कुव्यस्था का उद्घाटन करते हैं। छह अंकों वाले 'भारत दुर्दशा' में प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने भारत की दुर्दशा को बखूबी उकेरा है। साथ ही अंग्रेजों के अत्याचार और शोशण को बेहतरीन ढंग से वर्णित किया है।

भारतेंदु ने अपने युग में हिंदी को स्थिरता प्रदान की है। उन्होंने एक प्रकार से हिंदी का एक ढांचा निर्मित किया, एक व्यवस्था बनाई, जिसका अनुसरण उनके अनुयायियों ने भी किया। हिंदी ने उस समय अपना एक विशेष स्वरूप अपनाया। हिंदी में तद्भव और प्रचलित शब्दों, लोक में व्यवहृत उर्दू और फारसी के शब्दों के साथ ही आवश्यकतानुरूप संस्कृत शब्दावली का इस्तेमाल तत्कालीन हिंदी की विशेषता बन गई। इससे न केवल हिंदी का रूप निखरा, बल्कि वह लोकप्रिय और सरल, सरस और सहज भी बन गई।

सारांशतः कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य को एक नया स्वरूप दिया है। उन्होंने हिंदी का एक ऐसा मार्ग निर्मित किया, जो हिंदी के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। हिंदी गद्य साहित्य के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। यह युग इसलिए भी महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसी दौर में हिंदी (गद्य) साहित्य की अनेकों विधाओं का जन्म हुआ है। इस युग में हिंदी रचनाकारों में भारतेंदु की प्रेरणा से एक विशेष चेतना जाग्रत हुई। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम उत्थान के नाम से प्रसिद्ध इस युग के रचनाकारों ने भारतेंदु के पद चिह्नों पर चलते हुए हिंदी के लिए स्थापित उनके मानदंड अपनाए। वास्तव में हिंदी का यह पहला संस्कार था, जिसने उसके संरक्षण, प्रचार-प्रसार, स्वीकार्यता और लोकप्रियता में बहुत बड़ी भूमिका निभायी।

**संदर्भ :**


1. वृहत् हिंदी कोश, कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुंदी लाल श्रीवास्तव, पृ. 842
2. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, पृ. 15
3. डॉ. सतीश शर्मा जाफरावादी, शोध दिशा (जनसंचार-माध्यमों के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा), अंक-12 पृ. 201
4. डॉ. हरिमोहन, आधुनिक संचार और हिंदी, पृ. 141
5. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा, पृ. 7
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 15
7. डॉ. नगेंद्र, डॉ. हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 437
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 304
9. राष्ट्री भाग-2, पृ. 158 (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान)
10. राष्ट्री भाग-2, पृ. 159 (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान)
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 312
12. डॉ. नगेंद्र, डॉ. हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 464

13. डॉ. नगेंद्र, डॉ. हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 467
14. राष्ट्री भाग-2, पृ. 158 (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान)
15. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 390
16. राष्ट्री भाग-2, पृ. 158 (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान)

– मकान नंबर-एच. 301, नेहरू कॉलोनी, धर्मपुर, देहरादून, उत्तराखंड-248001

❑❑❑

# उत्कल के कृषिपरक पर्व-त्योहार

**डॉ. ममता दास**

उत्कल सदियों से प्राकृतिक शोभा-संपदा, सांस्कृतिक संपन्नता एवं आध्यात्मिक सिद्धि-उपलब्धियों का प्रदेश रहा है। यहाँ पर ईश्वर ने धरती को प्यार से संवारा, शस्य-श्यामला प्रकृति में किसान को अपने वात्सल्य का वरदान दिया। किसान भी कभी पूजा उपासना कर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता रहा तो कभी ऋतु के अनुसार प्रकृति के विविध रूप को निहारता नाच-गानों के बीच अपना सहज आनंद मनाता रहा। ओड़िशा के पूर्व समुद्री तट की विस्तीर्ण समतल भूमि 'सुजला सुफला शस्यश्यामला' मातृमूर्ति है और वह तीनों ओर से पूर्व घाट पर्वत-श्रृंखला से घिरी हुई है। ओड़िशा के पार्वत्य प्रदेश भी खनिज संपदाओं से परिपूर्ण हैं। असंख्य गिरि-नदी तथा झरनों से अभिसिंचित होने के कारण यह प्रदेश हरा-भरा तथा वन्य-संपदाओं से सुसमृद्ध है। तटीय समतल भूमि हो या फिर पार्वत्य वन-भूमि दोनों जगह तो कृषि ही यहाँ की प्रमुख वृत्ति रही है। ओड़िशा की अर्थनीति तो कृषि पर आधारित है ही, यहाँ का सांस्कृतिक जीवन भी कृषि द्वारा प्रभावित है।

उत्कल में साल भर में मनाए जाने वाले अधिकांश पर्व-त्योहार कृषि-भित्तिक हैं। वैशाख के महीने में प्रचंड रौद्र के कारण भूमि की नमी सूख जाती है। इससे बड़े पेड़ तो बच जाते हैं, लेकिन छोटे पौधे एवं औषधीय झाड़ियाँ या तो मुरझा जाती हैं या फिर जल जाती हैं। विषुव संक्रांति के दिन घर के आँगन में पूजे जाने वाले तुलसी के चौरे के ऊपर नारियल के पत्तों से छप्पर बनाकर उस पर एक पानी का घड़ा लटका दिया जाता है और घड़े के नीचे एक छोटा-सा छेद कर

उसमें से बूँद-बूँद करके तुलसी के पौधे पर पानी टपकाया जाता है। महीना भर रोज स्नान करके उस घड़े में जल चढ़ाने की प्रथा है। 'वसुंधरा घट' के नाम से परिचित इस घड़े से जलदान करने की विधि इस बात का संकेत देती है कि हर गृहस्थ अपने घर-आँगन में चाहे पिछवाड़े के बगीचे में पौधों की सिंचाई करे ताकि वे रौद्रताप से झुलस कर सूख न जाएँ।

वैशाख के महीने की शुक्ल तृतीया को 'अक्षय तृतीया' के नाम से मनाया जाता है, जो एक कृषिभित्तिक पर्व है। ओड़िशा के किसान लोग इसी दिन अपने खेत में बीज वपन करते हुए यह कामना करते हैं कि उनका यह मुट्ठी भर बीज अक्षय हो। कृषक-वधू नई टोकरी पर हल्दी, चंदन, सिंदूर लगाकर उसमें बीज भर देती है। पूजन के बाद बीज भरी टोकरी को शंख तथा उलुध्वनि के साथ वह अपने पति को सौंपती है। एक टोकरी में धान का बीज और दूसरी में पिठा और पूजा की सामग्री लेकर हल-लांगल के साथ किसान अपने खेत पर जाता है। खेत के ऐशान्य कोण में भूमि और लक्ष्मी माता (भूदेवी-श्रीदेवी) की पूजा की जाती है और नैवेद्य को उसी खेत में गाड़ दिया जाता है। उसके बाद शुभ मुहूर्त्त में बीज बोया जाता है। किसान भूमि से प्रार्थना करता है- "माँ मेरे बीज की मुट्ठी अक्षय हो, इस साल पैदावार अच्छी हो।" किसान लोग उस दिन नए कपड़े पहनते हैं। घर में हविषान्न पकाया जाता है। खेत के साझेदारों को इसी दिन नए कपड़े देकर उन्हें खेत का दायित्व सौंपा जाता है।

मिट्टी के साथ ओड़िशा का रिश्ता न केवल पेशे से जुड़ा हुआ है, बल्कि धरती को यहाँ के लोग अपनी माँ समझते हैं। मिट्टी के इस मानवीकरण का परिप्रकाश होता है जेठ के महीने में मनाए जाने वाले रज पर्व में। गर्मी का प्रखर ताप झेलती हुई धरती आषाढ़ के बारिश में रजस्वला बनकर संतान-संभवा वसुंधरा होती है। वृष का अंतिम दिन, मिथुन संक्रांति और आषाढ़ का पहला दिन- ये तीन दिन ओड़िशा के तटवर्ती इलाकों में रज पर्व के रूप में मनाए जाते हैं। कहते हैं, रज पर्व के तीन दिनों तक धरती रजस्वला रहती है। इसलिए इन दिनों किसी भी प्रकार का भूकर्षण निषिद्ध होने के कारण किसान बरसात के पूर्व तीन दिन विश्राम लेते हैं और मौज-मस्ती में समय बिताते हैं। रज के पहले दिन 'पोड़ पिठा' (भूनकर बनाई गई) बनाने के लिए उड़द, चावल आदि कूट

लिया जाता है, नारियल के रेशे निकाले जाते हैं; हल्दी, मसाले आदि पीस लिया जाता है घर में चावल, गुड़, नारियल और मसाने से 'पोड़पीठा' बनती है। अमराई में झूले जाते हैं। कुमारियाँ गाने गाकर झुले में झुलती हैं तो नौजवान गाँव के चौराहे पर कबड्डी खेलने में मस्त हो जाते हैं। ढोल और मृदंग के ताल के साथ-साथ सारा गाँव झूमता है।

रज के पहले दिन तड़के गृहस्वामिनी नहा-धोकर धरती के प्रतीक स्वरूप शिलबट्टे को हल्दी, सिंदूर लगाकर एक पीढ़े पर रख देती है, किसानों के घर हल-लांगल को भी हल्दी, सिंदूर लगाकर कोने में रखा जाता है और इसी के साथ रज पर्व आरंभ हो जाता है। रज में कोई शास्त्रीय अथवा लौकिक पूजा नहीं होती। फिर भी आनंद, उल्लास और मौज-मस्ती का यह त्योहार किसान को आने वाले कठिन परिश्रम के दिनों के लिए शारीरिक तथा मानसिक रूप से तैयार करता है। चौथे दिन तड़के गृहिणियाँ धरती के प्रतीक शिलबट्टे को हल्दी-पानी से नहलाती हैं उसे सुहागिन की भाँति सजाकर उसकी पूजा करती हैं। इस 'वसुमती-स्नान' के साथ रज पर्व की समाप्ति होती है। फिर, किसान धरती को प्रणाम कर खेत में हल चलाना शुरू कर देता है।

श्रावण के महीने में खेत में धान की रोपाई आदि काम जोरों पर होता है। खेत में अधिक पैदावार हो, इस कामना से किसान लोग श्रावण के महीने की अमावस के दिन 'चितउ पिठा' (चावल और उड़द से एक तरफ सेंका हुआ पिठा), फूल, चंदन, सिंदूर आदि लेकर धान के खेत की पूजा के बाद चितउ पिठा को वहीं खेत में गाड़ देते हैं। धान के खेत को ऐसे पूजने से पैदावार अधिक होगी- ऐसा लोक-विश्वास है। कहीं-कहीं इसी दिन घोंघे की पूजा होती है जिसे 'गेंडेइसुणि पूजा' कहते हैं। किसान घर की बेटियाँ चितउ पिठा लेकर खेत या पोखर पर जाती हैं और किनारे पर घोंघे की पूजा करने के बाद पिठा को पानी में डालकर कहती हैं- "गेंडेइसुणि, अरी गेंडेइसुणि, मेरे बाप-भाइयों के पैरों को मत काटना।" श्रावण के महीने में खेत का काम जोरों पर होने के कारण बैलों की आवश्यकता सबसे अधिक होती है। इसलिए किसान भाई चितउ अमावस के दिन बैलों को रंग-बिरंगे कपड़े, रेशमी धागे और घंटियों से सजाकर उनकी आरती उतारते हैं और उन्हें पिठा, फल और खीर आदि खिलाते हैं। ओड़िशा के

ग्रामीण समाज में यह विश्वास है कि श्रवण अमावस के दिन गौ-पूजा करने से गृहस्थ की सारी मनोकामना पूरी हो जाती हैं।

ओड़िशा के गाँवों में श्रावण पूर्णिमा या 'गम्हा पूर्व' बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। श्रावण पूर्णिमा के दिन किसान परिवार में बलदेव की पूजा होती है। इस दिन गाय-बैलों को तरह-तरह के रेशमी झालर और घंटियों से सजाकर उन्हें अच्छे भोजन दिए जाते हैं। बलराम के आयुध हल, लांगल के साथ अन्य कृषि उपकरणों की भी पूजा होती है।

भाद्रव शुक्ल पंचमी के दिन मनाया जाने वाला 'नवान्न भक्षण' या 'नुआखाइ' पश्चिम ओड़िशा का बहुत ही लोकप्रिय गण पर्व है। नुआखाइ पहले दिन लोग नया धान संग्रह कर लेते हैं। उसी नए धान से चिउड़ा बनाकर उसमें दही और चीनी मिलाकर नुआखाइ का नैवेद्य बनता है। किसान लोग सुबह अपने-अपने खेत में भूमि पूजन करने के बाद धरती के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए आगे अच्छी पैदावार के लिए प्रार्थना करते। घर की स्त्रियाँ भी सुबह से 'नवान्न भोज' की तैयारी में जुट जाती हैं। नवान्न भक्षण के उपलक्ष्य में गाँव के पुरोहित, रिश्तेदार तथा मित्रों के घर सौगात भेजा जाता है। थाल में चावल, मूँग, उड़द, घी, गुड़, शाक-सब्जी के साथ धोती-गमछा रखकर सौगान भेजने को 'अढ़िआ भेजना' कहते हैं। जिसके घर अढ़िआ भेजा जाता है वे भी बदले में अढ़िआ भेजते हैं। दोपहर तक खाना बन जाता है जिसमें नए चावल के खीर के साथ अन्न, दाल, कई प्रकार की शाक-सब्जियाँ, विविध व्यंजन, मिष्ठान्न आदि प्रस्तुत किए जाते हैं। परिवार में कभी अन्न की कमी न हो, इसलिए माँ अन्नपूर्णा की आरती उतारी जाती है। पहले ग्रामदेवती, फिर कुलदेवी के पास नवान्न का भोग लगाकर बाद में पितृ पुरुष के लिए उत्सर्ग किया जाता है। उसके बाद कृषि में प्रमुख सहायक बैलों की पूजा कर उन्हें अच्छे पकवान खिलाए जाते हैं। देवता, पितृकुल तथा गोकुल को संतुष्ट करने के बाद परिवार के सभी सदस्य भोजन के लिए पंक्ति में बैठ जाते हैं। पहले घर के वयोवृद्ध पुरुष या महिला नए धान से बना चिउड़ा-दही-चीनी का मिश्रण अथवा नए चावल से बने अन्न से दही-अन्न या खीर को परिवार के सभी सदस्यों को परोसते हैं। इस प्रसाद सेवन के बाद भोजन की शुरुआत होती है। खेत के मजदूर तथा नौकर-चाकरों को भी

नए कपड़े और भोजन देकर तृप्त किया जाता है। भोजन के बाद नए क्रम के अनुसार प्रणामी कार्यक्रम चलता है, जिसे 'नुआखाइ जुहार' कहते हैं। साथ ही साल भर के मनमुटाव, टकरार आदि को भुलाकर लोग गले मिलते, पाँव छूते या आशीष देते हुए पाए जाते हैं। नवान्न के दिन रात को आमिष-भोजन अवश्य तैयार किया जाता है, शाम को लोग इकट्ठे होकर नाच-गाना और नाटक का आनंद लेते हैं।

ओड़िशा में मनाए जाने वाले तमाम पर्व-त्योहारों में से 'माणबसा गुरुबार' का महत्व सर्वोपरि है। अगहन के महीने में आए चार या पाँच बृहस्पतिवारों के दिन लक्ष्मीपूजन की प्रथा ओड़िशा की निराली प्रथा है। अगहन के महीने तक धान के अमल का काम निबट जाता है। घर, खलिहान, अमार हर जगह शस्य-संपदा की भरमार मन को सहज ही प्रसन्न व पुलकित बना देती है। इस समय शस्य-समृद्धि की देवी भगवती लक्ष्मी की पूजा के लिए बुधवार से ही नए शुक्ल धान का संग्रह किया जाता है। नए धान की बालियों से गूंथे गए वेणी और चामर पूजा घर में लटकाए जाते हैं। कच्चे मकानों में घर-आँगन और मिट्टी के दीवारों को गोबर से लीपकर साफ किया जाता है। फिर घर की बहू-बेटियाँ महालक्ष्मी के आह्वान के लिए चावल की पिठी से चिता (चित्र) रचने लग जाती हैं। खलिहान से लेकर पिछवाड़े तक, बाहर के आँगन से लेकर पूजा की कोठरी तक हर जगह कमल के फूल के साथ देवी का पदचिह्न, दीवारों पर छींटेदार चिते से धान की बालियाँ, धान के पौधों के गुच्छे, धान का ढेर आदि बनाए जाते हैं। चावल के चिते से घर-आँगन चमक उठता है। गुरुवार के दिन ब्राह्म-मुहूर्त्त से ही गृहस्वामिनी शुद्ध-पूत होकर पूजा स्थान पर पहुँचती है। षोड़श दल कमल के चिते पर रखे कटहल की लकड़ी से बने पीढ़े पर माणों (शस्य मापक) की स्थापना की जाती है। माणों में शुक्ल धान और उड़द रखे जाते हैं। माणों को एक के ऊपर रखकर उसके ऊपर लक्ष्मी-गुवाक रखा जाता है। इसके बाद माणों को रेशमी वस्त्रों से सजाया जाता है और ऊपर से चंदन और सिंदूर से सुशोभित किया जाता है। इस धान्य लक्ष्मी को कमल, गेंदे के फूल, सरसों के फूल, दुर्वा, आँवले की टहनी, सोने के गहनों से विभूषित कर उसके पास ईख और मूली रखकर सजाया जाता है। सुबह की सुनहरी किरणों के साथ

ओड़िया किसानों के धान मापक माण में संसार की सुख-संपदा की अधिश्वरी जगजननी महालक्ष्मी प्रकट होती हैं। गृहिणियाँ शंखनाद और उलुध्वनि से उनका स्वागत करती हैं। पूजा पीठ चोवा, चंदन, कपूर, अगुरु और गुग्गुल के धूप, घी के दीए की सुगंधि से भर जाता है। पनीर, केला, नारियल के गुद्दे और गुड़ मिलाकर तथा नाना प्रकार के फल के साथ महालक्ष्मी को बाल-भोग नैवेद्य अर्पण किया जाता है। बाल धूप के बाद गृहिणियाँ मध्याह्न भोग की प्रस्तुति में जुट जाती हैं। भगवती लक्ष्मी के मध्याह्न भोग के लिए जो खाद्य प्रस्तुत किया जाता है, उसमें ओड़िशी रंधन शैली की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। जगन्नाथ जी के मंदिर में प्रस्तुत खाद्य-सारणी का अनुसरण कर भोग प्रस्तुत किया जाता है। महाप्रसाद में निषिद्ध चीजें और सब्जियाँ लक्ष्मी के भोग के लिए भी वर्णित मानी जाती हैं। सात्विक रूप से बनाई गई खिचड़ी और दध्यन्न के साथ छह प्रकार के व्यंजन और नौ प्रकार की सूखी सब्जियाँ एवं दस प्रकार के पिठा बनाकर त्रिभुवनजननी परमेश्वरी माता लक्ष्मी को राजकीय ढंग से कोठी चिता (चकौर अल्पना) पर नैवेद्य अर्पण किया जाता है। फिर महालक्ष्मी की आरती उतारी जाती है। महालक्ष्मी का प्रसाद परिवार के सदस्य के अलावा बाहर के किसी और को दिया नहीं जाता। यहाँ तक कि ब्याही गई बेटी को भी नहीं। प्रसाद सेवन करते समय परिवार के सदस्य भी पत्तल में अन्न कण तक न छोड़े, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। खाने के बाद पत्तल के जूठन को कुत्ते या कौवे नोच न लें, इसलिए सावधानी से उसे गाड़ दिया जाता है। भोग से भिन्न व्यंजनों को घर के नौकर-चाकर, अपने खेत के मजदूर आदि को प्रेमपूर्वक खिलाया जाता है। गाँव के धोबी, नाई, कहार आदि सेवकों को पिठा और मिष्ठान्न-खीर देकर जाता है मानों लक्ष्मी की पुजारिन गृहलक्ष्मी उस दिन स्वयं सबको खिलाने के बाद दोपहर को स्वयं खा-पीकर स्वस्थ होने पर घर की स्त्रियाँ लक्ष्मी जी के सामने संत बलराम दास रचित 'लक्ष्मीपुराण' का पाठ करती हैं। शाम को पुनः महालक्ष्मी की आरती उतारी जाती है और पनीर, केले और गुड़ मिलाकर फल सहित सांध्यकालीन लघु नैवेद्य अर्पण किया जाता है। घर-आँगन को साफ-सुथरा रखकर शुद्धपूत भाव से भोजन बनाकर परिवार के

लोग, सेवक, दीन-दुखियों को खिलाने से गृहिणी को जो आत्मिक आनंद और संतोष मिलता है, वह किसी आध्यात्मिक तपस्या से कम नहीं है। यही माणबसा गुरुबार के लक्ष्मीपूजन का संदेश है।

माघ के महीने की मकर संक्रांति ओड़िशा का अन्यतम कृषिपरक पर्व है। मकर संक्रांति पर ओड़िशा में धान, गन्ना आदि फसलों का अमल हो चुका होता है। इसलिए उस दिन हर घर और मंदिरों में नए अरुवा चावल को भीगोकर उसमें नया गुड़, पनीर, नारियल का गुद्दा, केला, घी, कालीमिर्च, दूध आदि मिलाकर भोग प्रस्तुत किया जाता है जिसे 'मकर चावल' के नाम से जाना जाता है। साल भर में सिर्फ मकर संक्रांति के दिन मकर-चावल का भोग लगाया जाता है। कहा जाता है कि चेचक, खसरे आदि वायुवाही रोगों के लिए भिगोया हुआ अरुवा-चावल प्रतिषेधक का काम करता है। उत्तर ओडिशा के आदिवासी संथाल संप्रदायों में मकर संक्रांति या 'मकर पर्व' इतना लोकप्रिय है कि लोग माघ के महीने को ही 'मकर मास' कहते हैं। धान काटते समय किसान लोग धान के एक पौधे को खेत में ही छोड़ आते हैं। संक्रांति के पहले दिन किसान लोग खेत की मिट्टी के साथ उस धान की बाली को घर लाकर तुलसी चौरे के पास रख देते हैं। उसी के साथ अनाज नापने के पात्र भी रखे जाते हैं। किसान-गृहिणी सुबह नहा-धोकर तुलसी के साथ धान की बाली की पूजा करती है और शस्यलक्ष्मी का आशीर्वाद कामना करती है। इसे 'बाहुंडि बंधा' कहा जाता है। मकर संक्राांति के दिन तड़के लोग नदी या तालाब में स्नान करके घाट पर घास-फूस और तिनके से बना 'अघिरा' में आग लगाते हैं। फिर देव-दर्शन के बाद तिल और गुड़ से बना लड्डू और मकर चावल खाते हैं। अगहन और पूस के दिनों ही फसल की कटाई के महीना होने के कारण मकर संक्रांति तक आते-आते किसान के घर-खलिहान अनाज से भरापूरा रहता है। शायद इसलिए मकर पर्व में हर घर में कई प्रकार के व्यंजन और मिठाइयाँ बनती पाई जाती हैं। आदिवासियों में मकर पर्व खाने-खिलाने और मौज-मस्ती का त्योहार है। मयूरभंज के आदिवासी लोग अपने शरीर को विभिन्न रंगों से चित्रित कर घर-घर घूमकर अभिनय दिखाकर धान, मिठाई और पैसे संग्रह करते हैं।

उसमें जो कुछ भी मिलता है, सभी लोग मिलकर सहभोज करते हैं। सालभर कठिन परिश्रम से फसल का अमल करने के बाद कृषि का यह अंतिम पर्व आदिवासी लोगों के लिए आनंद और उपभोग का पर्व है।

सालभर में मनाए जाने वाले सारे कृषिभित्तिक पर्व हमारे सामाजिक जीवन में संप्रीति और सद्भावनापूर्ण वातावरण का निर्माण करने के साथ-साथ हमें निरोग और स्वस्थ बने रहने के लिए मार्गदर्शन करते हैं।

– प्लाट संख्या-1032/2402, प्रगति नगर, यूनिट-8, भुवनेश्वर-751003 (ओड़िशा)

❑❑❑

# तमिल नई चाल में चलने लगी

**डॉ. एम. शेषन**

बीसवीं शताब्दी के भारत के तीन प्रख्यात कवियों में सुब्रह्मण्य भारती भी हैं। दक्षिण भारत में भारती, पूरब में रवींद्रनाथ टैगोर और पश्चिम में सर मुहम्मद इकबाल। इन तीनों कवियों ने अपनी प्रगतिशील कविताओं तथा अन्य रचनाओं के माध्यम से संसार को उद्‌धार और प्रशस्ति को मार्ग दिखाया था। टैगोर, इकबाल और भारती ये तीनों ही भारत के महाकवि माने जाते हैं तथापि, अन्य दो कवियों की अपेक्षा, कुछ विशिष्टताएँ हम भारती में देखते हैं। अपने काव्यों के माध्यम से इस संसार का उद्‌धार करने में दृढ़ विश्वास और अटूट आस्था रखने वाले भारती, मात्र राजनैतिक मुक्ति, राष्ट्र मुक्ति हेतु कविता करने वाले कवि नहीं थे। राजनैतिक मुक्ति के अतिरिक्त, सामाजिक उद्‌धार, आर्थिक उन्नति, धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि मानव की सर्वांगीण मुक्ति की कामना से प्रेरित होकर वे जीवन में क्रियाशील थे। सब प्रकार से निम्नस्तर पर रहने वाले तथा दरिद्रता और गरीबी से पीड़ित होकर स्वतंत्रता खोकर, पश्चाताप की दशा में जीने वाले भारतीय जनसमूह की दयनीय दशा पर विशेष ध्यान देने वाले भारती, उनकी गरीबी, दरिद्रता के कारणों और उनके निवारणों के मार्गों को भी अपनी कविताओं के माध्यम से स्पष्ट करते हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में भारती का चिंतन और उनकी उपलब्धियों को गहराई से देखने समझने की आज आवश्यकता महसूस हो रही है। भारती की चिंतन-रश्मियाँ, सिर्फ एक क्षेत्र में ही नहीं विकीर्ण हुईं वरन् अनेकानेक क्षेत्रों को पार कर प्रकाश डालती हैं, इसे हमें स्मरण रखना होगा। विगत युगीन भारत की गौरव गरिमा के

साथ-साथ अपने युग के भारत की दयनीय दशा, हमारी अपनी कमियों और बलहीनताओं पर भी उनका चिंतन रहा एवं भावी भारत के नवनिर्माण की दूरदर्शिता भी उनके चिंतन में प्रकट होती है। इस दृष्टि से वे हिंदी के प्रख्यात राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी के समतुल्य माने जाएंगे। दोनों इस दृष्टि से समान धर्मी रहे हैं। भारती की दृष्टि ऐतिहासिक रही और इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भारत को देखने समझने की विशेषता से युक्त है।

टैगोर को अपने जीवनकाल में उपलब्ध सुख-सुविधाएँ अनुकूल परिवेश, आर्थिक समृद्धि और स्थिरता आदि भारती को उपलब्ध नहीं हो सकी। वे जीवनभर अभावग्रस्त जीवन ही बिताते रहे। तथापि उनका सारा जीवन देश के उद्धार के प्रति ही रहा। वे तमिलनाडु के नवजागरण का शंखनाद करनेवाले प्रथम वैतालिक माने जाएंगे।

**भाषा के क्षेत्र में नवजागरण:**

ब्रिटिश शासन ने जब से भारतीय मिट्टी में स्थिरता प्राप्त कर ली और अंग्रेजी भाषा प्रशासन की भाषा बन चुकी थी तथा उसकी लोकप्रियता की लहरें वेग से उठने लगीं, तब से भारतीय भाषाओं का प्रयोग कम होने लगा। पहले से ही उत्साह और अपनी आंतरिक शक्ति और आत्मबल खोकर बैठे तमिल विद्वानों का सामाजिक महत्व और उनकी लोकप्रियता और क्षीण हो चली। इस प्रदेश में वल्ललार रामलिंग स्वामी जी ने पहली बार तमिलों के मन में भाषा-प्रेम को जगाने का स्तुत्य कार्य किया था। भक्तियुग में, आलवार और नायनमार संतों ने भक्ति और अध्यात्म के भाव के साथ-साथ तमिल भाषाओं को भी संयुक्त कर इस प्रदेश में सांस्कृतिक मूल्यों की पुन:स्थापना की। इन भक्त शिरोमणियों के समस्त स्तोत्र गीत, चाहें वे शैवस्तोत्र गीत हों, चाहे वैष्णव दिव्य प्रबंधम के पाशुरम हों, दोनों ही तमिल भाषा में रचित गीत ही हैं। प्रसिद्ध शैवाचार्य संत तिरुज्ञान संबधर ने अपने को 'तमिलज्ञान संबधन्' कहने में गौरव का अनुभव किया। संत रामलिंग वल्ललार के मतानुसार तमिल भाषा ही अत्यंत सरलता एवं सुगमता से 'शिवानुभूति' प्रदान करने की क्षमता से युक्त भाषा है।

भारती में जितना देश प्रेम है उतना ही भाषा प्रेम भी है। वह भाषा प्रेम जितना संस्कृत की ओर उन्मुख है, उससे अधिक तमिल की ओर उन्मुख है। भारती के युग में यहाँ अंग्रेजी को ऊँचा स्थान प्राप्त था। भारतीय भाषाएँ, आज

की तुलना में बहुत दब गई थीं। भारती उन थोड़े से राष्ट्रभक्तों में हैं जो अंग्रेज़ी भाषा से आतंकित नहीं है। जिस समय लोग अंग्रेज़ी भाषा में लिखना बोलना शान की बात समझते थे, अंग्रेज़ी भाषा और उसके साहित्य से अभिभूत होकर तमिल की उपेक्षा कर रहे थे, उसी समय भारती ने तमिलनाडु की सांस्कृतिक विरासत का झंडा ऊँचा किया था। उन्होंने तमिल भाषा के प्राचीन गरिमामय साहित्य के बारे में कहा कि वह जिस ऊँचाई तक पहुँच चुका है उस तक यूरोप की भाषाओं का साहित्य नहीं पहुँचा है। उनकी यह बात बिल्कुल सही है। भारती का यह दृष्टिकोण केवल तमिलनाडु के लिए ही नहीं, केवल उस युग के लिए ही नहीं, समूचे भारत के लिए प्रासंगिक है। उन्होंने अपने कवि कर्म से यह सिद्ध किया कि भारतीय साहित्य में इतनी ऊर्जा है कि वह देश को आधुनिक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विकसित कर सके। इस प्रकार उन्होंने भारतीय जनों में आत्मविश्वास और आत्मबल को विकसित किया था। जाति और भाषा का संबंध आज के वर्तमान युग में अटूट है। अतः तमिल भाषा के प्रति भारती का प्रेम स्वाभाविक है।

यहाँ, भारती के पूर्व की तमिल भाषा की स्थिति पर थोड़ा विचार करना संगत होगा। भारती के आगमन के पूर्व पढ़े-लिखे शिक्षितों, विद्वानों, पंडितों तथा जनसाधारण के मध्य बड़ी खाई बनी हुई थी। जनसाधारण और उनके बीच का संपर्क गहरा नहीं बन पाया था। भारती ने इस कमी को महसूस किया। अतः भाषा और साहित्य दोनों को जनसाधारण के निकट लाने एवं सामाजिक उत्थान के निमित्त उसका प्रयोग करने का बीड़ा उठाया। भारती का यह सबसे बड़ा अवदान माना जा सकता है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध खंड-काव्य "पाँचाली शपदम्" की भूमिका में लिखा था कि तमिल भाषा को नया प्राण और नया उद्वेग प्रदान करना मेरा उद्देश्य है।

पुराकाल में, तलवार हाथ में सँभाले, गंभीर चाल में चलने वाले राजा, महाराजाओं द्वारा प्रशंसित कविगण आपस में एक दूसरे की चापलूसी किया करते थे। वे चाटुकारिता में लगे रहते थे और राजा-महाराजाओं की झूठी प्रशंसा करने में अपनी काव्य प्रतिभा को व्यर्थ करते थे। ऐसे युग में, कागज पर कविता लिखकर, तमिल के आत्मसम्मान और गरिमा को सुरक्षा करने के निमित्त हमारे भारती का यहाँ जन्म हुआ।

तेरहवीं शताब्दी के अंत में, प्रसिद्ध चोल वंशीय राजाओं के साम्राज्य का पतन हुआ था। उसके बाद तमिल प्रदेश में कहने लायक कोई महाकाव्य हीं रचा गया, ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। कवि तो अनेकों हुए और उनका रचा लघुकाव्य, स्थल पुराण आदि अनगिनत हुए। लेकिन उनमें अधिकांश काल के प्रवाह में न ठहर सकने की वजह से बाढ़ में बह गए। आज उनका विशेष महत्व नहीं माना जाता।

उस युग में अनेक काव्यों के प्रणेता कवि तमिलनाडु में रहे। अनेक धर्म-संप्रदायों के मानने वाले भी थे। अपने दानी, गुणी पोषकों के मन को बहलाने के निमित्त कविता करना उनका एक अभ्यास मात्र था। महज शब्दाडंबर और अलंकरण की प्रवृत्ति को काव्य का मुख्य उद्देश्य मानकर चलते थे। कविता का प्राण, भावनाओं के स्पंदन को भी स्थान देना है, इस बात को वे एक तरह से भूल ही चुके थे। दूसरे शब्दों में कहें तो ये कवि काव्य की आत्मा, भावों और विचारों की परवाह नहीं करते थे। शब्दों के माध्यम से जड़ शरीर को अलंकृत कर प्रसन्न होते थे। ऐसे समय में, भारती का काव्य क्षेत्र में आगमन एक अभूतपूर्व घटना मानी जाएगी। स्वयं भारती के शब्दों में:

"कर्ण के साथ दान कर्म भी खत्म हुआ, उत्तम
कवि कंबन के साथ तमिल काव्य भी समाप्त हुआ।"

आगे वे लिखते हैं: "क्या इस दयनीय दशा का परिवर्तन नहीं होना चाहिए? परिवर्तन करना होगा। हाँ, इस दयनीय दशा से कविता का उद्धार करने के निमित्त ही मैं इस संसार में अवतरित हुआ हूँ।" (भारती)

**तमिल कविता रूढ़िवादिता के कारागार में**

भारती के पूर्वकालीन एवं समकालीन कुछ श्रेष्ठ कवि भी रूढ़िवादिता रूपी कारागार में कविता को बंदकर रखने तथा उसी को सुंदर मानने में अधिक उत्साह प्रकट करते थे। इस कारण कविता की आत्मा, उसकी स्वाभाविक प्रगति अवरुद्ध होने लगी। परंपरा का गुलाम बनकर केवल शब्दाडंबरों में लगे रहकर अपने आश्रयदाता या दानी की स्तुति करने में बड़प्पन का अनुभव करते थे। आधुनिक काल के पुदुमैपित्तन, नी. मू. सी. रघुनाथन जैसे कवियों ने अपनी व्यंग्यपरक कविताओं में इन परंपरावादी एवं रूढ़िवादी कवियों की खिल्ली उड़ाई है।

(पुदुमैपित्तन कवितैकल : पृ. 34, 64) पंडितों के हाथों कैद हुई बेचारी तमिल कविता निष्प्राण और निस्तेज हुई, उसकी बुरी हालत रही। इससे तमिल कविता का स्तर भी आगे विकसित न हो पाया। उसमें ठहराव आ चुका था। तमिल कविता में प्राप्त इस ठहराव की स्थिति में उसका उद्धार करने का श्रेय भारती को ही मिलना चाहिए।

तमिल काव्य के क्षेत्र में भारती के आगमन की प्रतीक्षा तमिल भाषा कर रही थी, ऐसा कहें तो इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारती की मान्यता थी कि "इधर कुछ विगत शताब्दियों में कविगण तथा स्वामीजी दोनों मिलकर (उनका इशारा मठाधीशों से है) बहुत साधारण विषयों को असाधारण, अलौकिक एवं अंधकारमय शैली में लिखना ही काव्य की बड़ी क्षमता है, यह निश्चय कर चुके थे। (भारती के निबंध "समूहम्" तथा "पुनर्जन्मम्" लेख)

भारती अपनी रचनाधर्मिता के बल पर तमिल समाज की सेवा करना चाहते थे। काव्य को आसानी से लोग समझ सके, इस हेतु अपनी कलात्मक क्षमता का प्रयोग करना अपना प्रमुख धर्म मानते थे। इसे उन्होंने अपने निबंधों में स्पष्ट किया है: "अब सारे विश्व में राजा, महाराजाओं, धनिकों, दानियों पर निर्भर रहकर कविता करने का जमाना लद गया। जनता पर विश्वास करना आवश्यक है। आगे से सारी कलाओं का पोषण जनता के समर्थन और प्रोत्साहन द्वारा ही मिलने वाला है। कवियों का कर्तव्य है कि वे काव्य के प्रति, साहित्य के प्रति सच्ची अभिरुचि उत्पन्न करने का काम करें। इससे तमिल साहित्य पनप सकेगा।" (भारती के निबंध: पृ. 126) किसके लिए लिखते हैं, क्यों लिखते हैं- इन बातों के बारे में हमारे राष्ट्रकवि के मन में एक निश्चित दृष्टिकोण, एक निश्चित धारणा और दृढ़ विश्वास भी था। उनके गीत इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने 'उपाधि', 'पुरस्कार' या 'सम्मान' आदि की प्राप्ति हेतु नहीं लिखा। उनका यह विश्वास था कि जनता के ज्ञानचक्षुओं को खोलना होगा, राष्ट्रप्रेम, भाषा-प्रेम से युक्त राष्ट्रीय चेतना को उनमें जगाना होगा और इन सबके माध्यम से भारत को आजादी प्राप्त करनी होगी।

"कविता की क्षमता से इस संसार का
पोषण करना होगा" (भारती की कविताएँ, पृ. 73)

इस जगह पर हिंदी के आधुनिक कवि एवं साहित्यकार बाबू भारतेंदु

हरिश्चंद्र जी का स्मरण हो आता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र जी आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माताओं में माने जाते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं और गद्य रचनाओं के माध्यम से हिंदी प्रदेश में वही काम किया जिसे भारती ने करना चाहा अर्थात् जनजागरण, भाषाप्रेम और संस्कृति प्रेम उनका मुख्य उद्देश्य था। अतः युगानुकूल हिंदी गद्य साहित्य में नई प्रवृत्ति लाने का स्तुत्य कार्य किया। लेकिन गद्य साहित्य में युगानुकूल परिवर्तन लाने का श्रेय भारतेंदु मंडली के लेखकों को है।

कविता के क्षेत्र में वे पुरानी ब्रज भाषा का ही प्रयोग करते थे। ब्रज भाषा उनके युग तक काव्य का माध्यम थी। भारतेंदु उसके प्रभाव से अपने को मुक्त न कर पाए। अतः उनकी कविताएँ ब्रजभाषा में ही रची जाती थीं। यह तो सन् 1900 तथा उसके आसपास आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के अथक प्रयासों से ही संपन्न हुआ। खड़ी बोली हिंदी के परिनिष्ठित रूप को आधुनिक कविता में प्रतिष्ठित करने का श्रेय द्विवेदी जी को मिलना चाहिए। उनके प्रोत्साहन और प्रेरणा के फलस्वरूप श्रीधर पाठक, मुकुटधर पांडे, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, जयशंकर प्रसाद आदि कवि हिंदी में खड़ी बोली की कविताओं की रचना कर भाषा के क्षेत्र में परिवर्तन लाने का कार्य सफलतापूर्वक कर सके। ये सारे कवि और साहित्यकार वही कार्य करने में अपना उत्साह प्रकट करते थे जिसे हमारे भारती तमिल साहित्य में कर रहे थे। यह कहना सही होगा कि भारतेंदु और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के काल से अर्थात् बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण-पूर्वार्द्ध से परिनिष्ठित हिंदी-खड़ी बोली का प्रचलन होने लगा। हिंदी अपनी पुरानी चाल छोड़कर नई चाल में चलने लगी। भारती ने भी अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से तमिल में परिवर्तन-बदलाव लाने का स्तुत्य कार्य किया जिसके फलस्वरूप "तमिल नई चाल में चलने लगी"।

– 'गुरुकृपा', प्लाट-790, डॉ. रामास्वामी सलाइ, के.के. नगर (पश्चिम) चेन्नई-600078

❑❑❑

# नंददास का आचार्यत्व

**डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी**

नंददास भक्त और कवि ही नहीं बल्कि काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य भी थे। उन्हें संस्कृत साहित्य-सिद्धांतों तथा उसकी विशद परंपरा का सम्यक् ज्ञान था जिसके आधार पर उन्होंने हिंदी-रीति ग्रंथों का प्रणयन किया है। यह बात अलग है कि उन्होंने काव्य के स्वांग-वर्णन की ओर अपना ध्यान केंद्रित नहीं किया लेकिन जिन विषयों को अपने विवेचन में शामिल किया उसमें अपनी पूरी निष्ठा एवं तन्मयता प्रदर्शित की। आचार्य केशवदास की तरह नंददास का भी इन ग्रंथों की रचना का उद्देश्य किसी न किसी को काव्य रीति की शिक्षा देना था। 'रसमंजरी' लिखने की प्रेरणा उनका वह मित्र था जिसने नायक-नायिका भेद नहीं सुना था- *"एक मीत हम सों अस गुन्यो/ मैं नायिका-भेद नहिं सुन्यो"* (नंददास ग्रंथावली, पृ. 126)। 'अनेकार्थ मेजरी' तथा 'मानमंजरी' की रचना उन्होंने उनके लिए की है जो संस्कृत शब्दों के उच्चारण और उनके अर्थ-ज्ञान में असमर्थ थे- *"उचरि सकत नहिं संस्कृत/ अर्थ ज्ञान असमर्थ। तिन हित 'नंद' सुमति जथा/ भाषा कियो सुअर्थ।।"* (वही, पृष्ठ 41)। 'रूपमंजरी' में 'पूर्वराग', 'विरह मंजरी', में 'प्रवास' तथा 'मान मंजरी' में 'मान' "गूँथनि नाना नाम को/ अमरकोष के भाय। मानवती के मान पर/ मिले अर्थ सब आए।।" (वही, पृष्ठ 66)। का वर्णन भी कवि ने किसी न किसी को शिक्षित करने के उद्देश्य से ही किया है। जाहिर है- आचार्य का अर्थ होता है- शिक्षक। नंददास ने काव्य-रीति की शिक्षा देने के लिए ही उपर्युक्त ग्रंथों की रचना की है। इसलिए वे कवि होने के साथ ही साथ एक आचार्य भी हैं। उनकी गणना केशवदास, मतिराम, देव आदि आचार्यों की परंपरा में होनी चाहिए। यहाँ यह

उल्लेख्य है कि नंददास के पहले लिखे गए हिंदी रीति ग्रंथों में कृपाराम की हिततरंगिणी, मोहन लाल मिश्र का शृंगार-सागर आदि ही है। करणेश बंदीजन, बलभद्र मिश्र, केशवदास आदि प्रायः इनके समकालीन थे। रहीम का 'बरवै नायिका भेद' इनके बाद ही लिखा गया था। नंददास के पूर्व की रचनाओं में रीति-निरूपण की अपेक्षा आचार्यों ने अपने कवि-कौशल का प्रदर्शन अधिक किया है जिससे वहाँ लक्षणों तथा उदाहरणों की अस्पष्टता भ्रम उत्पन्न करती है किंतु नंददास ने 'रसमंजरी' आदि ग्रंथों में ऐसा नहीं किया है। उन्होंने बहुत ही सुचिंतित और सुविचारित ढंग से अपने आचार्यत्व का प्रदर्शन किया है जिससे लक्षण और उदाहरण में अस्पष्टता जैसी समस्या का अभाव दिखाई देता है।

नंददास ने 'रसमंजरी' में नायक-नायिका भेद तथा हेला, हाव-भाव आदि का वर्णन किया है। इसका आधार संस्कृत के भानुदत्त की 'रसमंजरी' है जिसे कवि ने स्वयं स्वीकारा है-

*"रसमंजरी अनुसार कै, 'नंद' सुमति अनुसार।*
*बरनत बनिता-भेद जँह, प्रेम सार विस्तार।"*

(नंददास, ग्रंथावली, पृ. 127)

संस्कृत तथा हिंदी के ग्रंथों में नायिकाओं के जितने भेदोपभेद किए गए हैं तथा उनका जितना विशद वर्णन हुआ है उतना नायकों का नहीं। नंददास ने भी नायिका-भेद की तुलना में नायक-भेद का वर्णन कम ही किया है। उनकी दृष्टि नायिका-भेद पर अधिक रही है। ग्रंथ के अंत में हेला, हाव-भाव तथा रति का संक्षिप्त वर्णन है। फिर भी 'रसमंजरी' इस अर्थ में प्रशंसनीय है कि भानुदत्त का अनुसरण करते हुए भी नंददास ने स्वविवेक का परिचय दिया है। इसके साथ ही उन्होंने लक्षण और उदाहरण दोनों को एक ही में मिलाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उनकी स्पष्टता में कहीं बाधा उत्पन्न नहीं होती। किसी एक कवि ने अज्ञात यौवना नायिका की परिभाषा इस प्रकार दी है- *"निज तन जोबन आगमन, जो नहिं जानत नारि/ सो अज्ञात सुजोबना बरनत कवि निरधारि।"* इसकी तुलना में नंददास की 'रसमंजरी' की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जिनमें नायिका के आगत यौवन-चिह्न के अज्ञान का वर्णन करते हुए कवि अज्ञात यौवना नायिका की जो परिभाषा करता है उसमें उदाहरण की कोई जरूरत ही नहीं महसूस होती-लक्षण पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है-

*"सखि जब सर-स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माँही।*
*पोंछे डारति रोम की धारा। मानति बाल सिवाल की डारा।।*
*दीरघ नैन चलति जब क्रोने। सरद कमल दल हूँ तैं लौंने।।*
*तिनहि श्रवन बिच पकरयो चहै। अंबुज-दल से लागे कहै।।*
*इहि परकार तिया जो लहिए। सो अज्ञात जोबना कहिए।।"*

(नंददास, ग्रंथावली, पृ. 128)

नंददास ने 'रसमंजरी' में नायिका-भेद का निरूपण करते हुए तीन प्रकार की नायिकाओं-स्वकीया, परकीया और सामान्य का नामोल्लेख तो किया है लेकिन उनका लक्षण नहीं दिया है। इन तीनों के फिर तीन प्रकारों-मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा का उल्लेख है। तत्पश्चात् मुग्धा के दो भेद नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा के रूप में किए गए हैं-

*"जग मैं जुवती त्रय परकार। करि करता निज रस-बिस्तार।।*
*प्रथम स्वकीया पुनि परिकीया। इक सामानि बखानी तिया।।*
*ते पुनि तीन-तीन परकार। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ बिहार।।*
*मुग्धा हू पुनि द्वै विधि गनी। ज्यों-उत्तर-उत्तर रस सनी।।*
*प्रथमहि मुग्ध नउढ़ा होय। पुनि विश्रब नउढ़ा सोय।।"*

(वही, पृ. 127)

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि नंददास ने स्वकीया, परकीया और सामान्या का लक्षण नहीं दिया है। स्वभाव के अनुसार किए जाने वाले नायिकाओं के उत्तम, मध्यम तथा अधम भेदों की ओर भी उनका कोई ध्यान नहीं है। मुग्धा के दो भेदों का संकेत कर उन्होंने उनका लक्षण देना प्रारंभ कर दिया है। 'रसमंजरी' में मुग्धा नवोढ़ा को उन्होंने इस प्रकार परिभाषित किया है-

*"जिहि तन नव जोबन अंकुरै। लाज अधिक तन-मन संकुरै।।*
*अलि आधीन होय रति जाकौं। भूषन रुचि तैसी नहिं ताकौं।।*
*प्रीतम जब कर-पंकज धरै।। बल करि सेज निवेसित करै।।*
*क्रोड़ी करि सब अंगनि गहै। तदपि सुतिय वह गवन्यो चहै।।*
*तन करि भागै मन करि रमै। कहि न जाए जस बैसाँधि समै।।*
*जो पारिदि कहुँ कर थिर करै। सो नउढ़ बाला उर धरै।।*

(वही, पृ. 127)

नंददास ने मध्या तथा प्रौढ़ा नायिकाओं के धीरा, अधीरा तथा धीरा-धीरा भेद किया है। मुग्धा में धीरादिक लक्षण की बात स्वीकारते हुए उन्होंने यह कहा कि वे स्पष्ट नहीं होते- *मुग्धा मैं धीरादिक लच्छिन/ प्रगट नहीं पै लखैं विचच्छिन।* (वही, पृष्ठ 129)। किंतु मध्या धीरादिक लक्षणों का स्पष्ट पता चलता है- *मध्य मैं ते प्रगट जनावैं। पल्लव कली फूल होय आवै।* (वही) नंददास की *'रसमंजरी'* में संस्कृत के भानुदत्त की *'रसमंजरी'* की अनेक पंक्तियों के अनुवाद मिलते हैं। उदाहरण के लिए मध्या नायिका के बारे में भानुदत्त का कथन है- 'समान-लज्जा-मदना मध्या।' नंददास ने इसका अनुवाद किया है- 'लज्जा मदन समान सुहाई।' भानु कवि ने प्रौढ़ा नायिका का लक्षण निरूपित करते हुए लिखा- 'पति मात्र विषयक केलि कलाप कोविंदा प्रगल्भा' नंददास 'रसमंजरी' में इसे इस प्रकार वर्णित किया है-

*पूरन जोबन है गहगोरी। अधिक अनंग लाज तिहि थोरी।।*
*केलि कलाप कोविदा रहै। प्रेम भरी मद-गज जिमि चहै।।*
*दीरघ रैनि अधिक कै भावै। भोर कौं नाम सुनत दुख पावै।।*
*अति प्रगल्भ बैनी रस रैंनी। सो प्रौढ़ा प्रीतम सुख दैनी।।*

(वही, पृ. 128)

मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा नायिकाओं के अतिरिक्त नंददास ने सुरति गोपना, वाग्विदग्धा, लक्षिता का भेदोपभेद सहित वर्णन किया है। प्रोषित पतिका, खंडिता, कलहांतरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीन वल्लभा तथा प्रीतगमनी नायिकाओं का सरस एवं सांगोपांग वर्णन भी 'रसमंजरी' में हुआ है। अभिसारिका के बारे में नंददास का कहना है कि उसमें रूप से अधिक बुद्धि की अपेक्षा रहती है-

*समय जोग पट भूषन धारै। पिय अभिसारि आप अभिसारै।।*
*रूप अधिक बुद्धि की अधिकाई। अधिक चोप तें अधिक सुहाई।।*
*उठि चलै कहति पिया पै जोई। अभिसारिका कहावै सोई।।*

(वही, पृष्ठ 137)

नंददास ने चार प्रकार की अभिसारिकाओं का वर्णन 'रसमंजरी' में किया है- मुग्धा अभिसारिका, मध्या अभिसारिका, प्रौढ़ा अभिसारिका और परकीया अभिसारिका। इसी तरह स्वाधीन पतिका के अंतर्गत कवि ने मुग्धा स्वाधीनपतिका,

मध्या प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका और परकीया स्वाधीनपतिका का वर्णन किया है। यहाँ मुग्धा स्वाधीनपतिका का लक्षण प्रस्तुत है जिससे नंददास की वर्णन-क्षमता का बोध होता है-

*मो कटि तैसी कृस नहिं भई। अंग कांति कछु अति नहिं लई।*
*उरजनि नहिन गरिमता तैसी। बचन चातुरी फुरी न वैसी।।*
*गति न मंद कछु भई सुहाई। नैनन नहिन बक्रिमा आई।।*
*ऐपरि पिय मनमोही काँही। कारन कवन सुजानति नाहीं।।*
*इहि बिधि सखि प्रति बरसै सुधा। है स्वाधीन वल्लभा मुग्धा।।*

(वही, पृष्ठ 138)

रीति ग्रंथों में नायिका-भेद का जितना विशद और व्यापक वर्णन हुआ है उतना नायक-भेद का नहीं जबकि प्रकृति, धर्म, वय, अवस्था आदि की दृष्टि से जितने भेद नायिकाओं के हो सकते हैं उतने ही भेद नायकों के भी होने चाहिए। कुछ आचार्यों ने नायक-भेद का विस्तृत वर्णन किया भी है लेकिन अधिकांश ने इस विषय में उतनी रुचि प्रदर्शित नहीं की है। नंददास ने भी 'रसमंजरी' में नायिका-भेद की अपेक्षा नायक-भेद के लिए कम ही स्थान दिया है। उन्होंने मात्र तेईस चौपाइयों में कुल चार प्रकार के नायकों का उल्लेख किया है- धृष्ट, शठ, दक्षिण और अनुकूल नायक-

*नाइक बरनें चारि प्रकार। प्रमदा प्रेम बढ़ावन हार।*
*एक धृष्ट, इक सठ, इक दच्छिन। इक अनुकूल सुनहिं अब लच्छिन।।*

(वही, पृष्ठ 140)

धृष्ट नायक ढीठ होता है। वह अपनी विवाहिता पत्नी के समक्ष बार-बार अपराध करता है। बार-बार रोके जाने पर भी नहीं मानता- *करि अपराध प्रिया ढिग आवै/ निधरक भए बात बहरावै/ चपरि सेज पर सोवै जोई/ नाइक धृष्ट कहावै सोई।।* (वही, पृष्ठ 140) शठ नायक अपराधी होकर भी कामिनी को ठगने में सदैव चतुराई दिखाता है-

*बाल-भाल में तिलक बनावै। गुहि-गुहि फूल माल पहिरावै।।*
*मकर पत्रिका रचै कपोल। बोलत जाए भावते बोल।।*
*किंकिनि बंधन मिस करि टोरै। छल करि नीबी बंधन छोरै।।*

*इहि बिधि रमनी-रमन जु होई। कहत है कवि सठ नाइक सोई।।*

(नंददास ग्रंथावली, पृष्ठ 140)

दक्षिण नायक वह माना गया है जो अपनी सभी पत्नियों के प्रति समान स्नेह, समान अनुराग रखता है- *जब ललना मंडल मैं आवै/अति अनुराग भर्‌यो छवि पावै।* (वही, पृष्ठ 140)। अनुकूल नायक वह है जो सदैव अपनी पत्नी में ही अनुरक्त रहे। अन्य सुंदरी की स्वप्न में भी कामना न करे। अनुकूल नायक के लिए नंददास ने श्रीराम का उदाहरण दिया है जो वनगमन के समय सीता के कष्टों को कम करने के लिए धरती, सूर्य, पवन, दंडकारण्य आदि से प्रार्थना करते रहते हैं-

*नित ही तिय के रस बस रहै। अवर सुंदरी सपन न चहै।।*
*करकस ठौर प्रिया जब चलै। तिहि दुख ताकौ हिय कलमलै।।*
*जयों श्रीराम चले बन मैं। सिय कै चलत कहत यौं मन मैं।।*
*हे अवनी तुम मृदु तन धरौ। हे दिनकर तुम तपति न करौ।।*
*अहो पवन तुम तृन न बहाऊ। रे नग मग तें बाहिर जाऊ।।*
*रे दंडक वन नियरो आए। चलि न सकति सिय कोमल पाए।।*
*इहि परकार रहै रससान्यो। सोइ नाइक अनुकूल बखान्यो।।*

(वही, पृष्ठ 141)

नंददास ने 'रसमंजरी' की बारह चौपाइयों में भाव, हाव, हेला तथा रति का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'रूपमंजरी' ग्रंथ में भी इनका प्रसंगतः उल्लेख है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि भानुदत्त ने अपनी 'रसमंजरी' में केवल सात्विक भावों तथा शृंगार रस का विवेचन किया है। उन्होंने हाव, भाव आदि पर कोई विचार नहीं किया है। नंददास को अपनी 'रसमंजरी' में हेला, हाव, भाव आदि के वर्णन के लिए आचार्य विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' को आधार बनाना पड़ा है। विश्वनाथ ने 'हाव' का लक्षण देते हुए लिखा है- भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु संभोगेच्छा प्रकाशकः/ हाव एवाल्पसंलक्ष्य विकारो हाव उच्यते। नंददास ने इसका आधार ग्रहण करते हुए इससे भी कहीं अधिक सुगम लक्षण प्रस्तुत कर दिया है- नैन बैन जब प्रगटै भाव/ ते भल सुकवि कहत हैं हाव। (वही, पृष्ठ 141)। नंददास ने प्रेम की प्रथम अवस्था को 'भाव' कहा है-

*प्रेम की प्रथम अवस्था आई। कवि जन भाव कहत हैं ताई।*

(वही, पृष्ठ 141)

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने 'हेला' को परिभाषित करते हुए लिखा है– 'हेलात्यन्तसमालक्ष्यो विकार: स्यात्स एव तु'– अर्थात मनोविकार के अतिस्फुटता से लक्षित होने के भाव को 'हेला' कहते हैं। इसी को आधार बनाते हुए नंददास ने 'रसमंजरी' में 'हेला' का अत्यंत सुगम लक्षण प्रस्तुत किया है–

*खन-खन बाँन बनायौ करै। बार-बार कर दर्पन धरै।।*
*अति शृंगार मगन मन रहै। ताकहु कवि हेला छबि कहै।।*

(वही, पृष्ठ 141)

नंददास ने 'रसमंजरी' में 'रति' के साथ सात्विक भावों का उल्लेख भी किया है–

*जाके हिय मैं रति संचरै। निरस वस्तु सब रसमय करै।*
*जैसे निंबादिक रस जिते। मधुर हौहिं मधु मैं मिलि जितै।।*
*जदपि बिघन आवहिं बहु भारे। जारति रस के मेटन हारे।।*
*तदपि न भृकुटी रंचक मटकै। एक रूप चित रस कहुँ प्रगटै।।*
*स्तंभ स्वेद पुनि पुलकित अंग। नैननि जलकन अरू स्वरभंग।।*
*तब बिबरन हिय कंप जनावै। बीच-बीच मुरझाई आवै।।*
*इहि प्रकार जाकौ तन लहिए। सो वह रंग भरी रति कहिए।।*

(वही, पृष्ठ 141)

नंददास ने यद्यपि पृथक रूप से *शृंगार* रस का विवेचन नहीं किया है किंतु उन्होंने अपने काव्यों की रचना इस ढंग से की है कि उनमें *शृंगार* रस का स्वरूप स्वत: प्रकट हो गया है। इस दृष्टि से 'रूपमंजरी', 'विरहमंजरी', 'रास पंचाध्यायी' आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है जिनमें संयोग *शृंगार* के स्पर्शन, आलिंगन, चुंबन आदि तथा वियोग के पूर्वराग, मान और प्रवास आदि का भेदोपभेद सहित वर्णन है। 'रूपमंजरी' के मिलन के प्रसंग में उनका संयोग *शृंगार*-वर्णन अत्यंत मनोहारी हो उठा है–

*प्रथम समागम लज्यति तिया। अंचल पवन सिरावति दिया।।*
*दीप न बुझहि बिहँसि बर बाला। लपटि गई पिय उरसि रसाला।।*

*भोजन भूख मिलत मैं लहै। ऐ परि इन सरि परत न कहै।।*
*प्रेम पुलक अंतर तिहि काला। सो अंतर सहि सकति न बाला।।*
*चित बिबधान सहति नहिं सोई। रूपमंजरी अस रस भोई।।*

(नंददास ग्रंथावली, पृष्ठ 124)

संयोग *शृंगार* की अपेक्षा वियोग *शृंगार* के वर्णन में नंददास का आचार्यत्व अधिक मुखरित है। उन्होंने अपने अलग-अलग ग्रंथों में विप्रलंभ के चार भेदों में से पूर्वराग, मान और प्रवास का विस्तृत वर्णन किया है। 'रूक्मिणी मंगल' तथा 'रूपमंजरी' में 'पूर्वराग' का वर्णन है तो 'मानमंजरी' में 'मान' का। 'विरहमंजरी' में 'प्रवास' का वर्णन हुआ है। चौथे भेद 'करुण' का वर्णन नंददास ने संभवत: इसलिए नहीं किया होगा कि वियोगजन्य तड़प का आनंद मरणोपरांत असंभव है।

नंददास ने 'रूक्मिणी मंगल' तथा 'रूपमंजरी' में मिलन से पहले का अनुराग अर्थात 'पूर्वराग' का वर्णन किया है। पूर्वराग उत्पन्न होने का कारण चित्र दर्शन, 'स्वप्नदर्शन', 'साक्षात्दर्शन' अथवा गुण-श्रवण है। 'रूक्मिणी मंगल' में रूक्मिणी के पूर्वानुराग का आधार श्रीकृष्ण का गुण-श्रवण है-

*जब तैं तुम्हारे गुनगन मुनि जन नारद गाए।*
*तब तैं औरू न भाए अमृतैं अधिक सुहाए।।*
*मैं तुम मन करि बरे कुँवर गिरिधरन पियारे।।*
*हौं भई तुम परिचरि, नाथ! तुम भये हमारे।।*

(नंददास ग्रंथावली, पृष्ठ 179)

'रूपमंजरी' में नंददास ने गुण-श्रवण तथा स्वप्न-दर्शन दोनों रूपों में 'पूर्वराग' का उत्पन्न होना वर्णित किया है। इस कथा काव्य की नायिका रूपमंजरी अपनी सखी इंदुमती द्वारा कृष्ण के रूप-सौंदर्य तथा गुणों का जब वर्णन सुनती है- *इक सुनियत सब लायक नायक/गिरिधर कुँवर सदा सुखदायक।* तब उसके हृदय में प्रेम का बीज अंकुरित हो उठता है और वह प्रियतम को पाने की व्याकुलता में अपने मन के हाथों से ही उनका पैर पकड़ने लगती है- *निसिदिन तिय बिनती करति, और न कछु सहाय। मन के हाथनि नाथ के पुनि-पुनि पकरति पाए।* (नंददास ग्रंथावली, पृष्ठ 110)। मिलन की उत्कंठा में ही उसे सपने में श्रीकृष्ण के दर्शन भी होते है- *सपुन माझ इक सुंदर नाइक/पायो*

*कुँवरि आपुनी लाइक।* (वही)। इस तरह नंददास ने अपने ग्रंथों में 'पूर्वराग' का सुंदर वर्णन किया है।

विप्रलंभ के 'मान' भेद का वर्णन नंददास ने 'मान मंजूरी' में किया है। यह ग्रंथ पर्याय कोष भी है और इसमें आदि से अंत तक मानिनी नायिका की कथा भी चलती है। कोष-ग्रंथ होते हुए भी इसके कथा-प्रवाह में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई है। इसकी कथा बस इतनी है कि राधा अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से रूष्ट हैं। वे मान किए बैठी हैं। दूती मध्यस्थता कर उन्हें मानने का प्रयत्न करती है तथा अंत में राधा-कृष्ण का मिलन करवाने में वह सफल भी होती है- "यों राधा माधव मिले परम प्रेम हरषाइ" (वही, पृष्ठ 93)। 'मानमंजरी' ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक दोहे की प्रथम पंक्ति में शब्द के पर्यायवाची रूप हैं तो दूसरी पंक्ति में उसका प्रयोग दूती द्वारा राधा के मान-मनावन तथा *शृंगार*-वर्णन के लिए हुआ है। नंददास ने इसका स्पष्टीकरण भी दिया है- *गूँथनि नाना नाम को, अमरकोष के भाय/मानवती के मान पर, मिले अर्थ सब आए।* (वही, पृष्ठ 66)। नंददास ने जिस विलक्षण दूती की कल्पना की है वह अपने दूतत्व-कार्य में इतनी निपुण है कि पहले वह राधा के रूप-सौंदर्य की अतिशय प्रशंसा करती है- *तरूनी, रमनी, सुंदरी, तनु उरज पुनि सोइ/ तिय तोसी तिहुँ लोक में, रची बिरंचि न कोइ।* (वही, पृष्ठ 75)। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की वह प्रशंसा ही नहीं करती बल्कि विधाता द्वारा रचित अनुपम जोड़ी का उल्लेख कर राधा-कृष्ण को मिला देने में सफल भी होती है-

*सुभग, सुसम, बंधुर, रूचिर, कांत, काम कमनीय।*
*रम्य, सुवेसरू भव्य पुनि, दर्शनीय रसनीय।*
*तैसाइ सुंदर बर कुँवर, नागर नगधर पीय।*
*जोरि रची बिधना निपुन, एक प्रान तनु बीय।।*

(नंददास ग्रंथावली, पृष्ठ 75)

नंददास ने 'विरहमंजरी' में विप्रलंभ के 'प्रवास' नामक भेद का वर्णन किया है। शास्त्रों में कार्य, शाप अथवा संभ्रम के कारण नायक के अन्य देश में चले जाने को 'प्रवास' कहा गया है। 'विरह मंजरी' में ब्रजबाला को संयोगावस्था में ही वियोग की काल्पनिक अनुभूति होती है। उसे लगता है कि कृष्ण द्वारिका चले गए हैं। वह इस भ्रम में ही अकुलाती और व्याकुल होती है तथा

अपनी विरह-दशा चंद्रमा से निवेदित करती है- *अहो, चंद रस-कंद हो, जात आहि उहि देस/द्वारावति नँद-नँद सौं कहियो बलि संदेश*। (नंददास ग्रंथावली, पृष्ठ 142)। यहाँ नंददास के आचार्य रूप की मौलिक उद्‌भावना देखने को मिलती है जब वे ब्रजबाला का विरह चार प्रकार का बतलाते हैं- "ब्रज मैं विरह चारि परकारा। जानत हैं जो जाननहारा।" इन चारों के नाम हैं- प्रत्यक्ष, पलकांतर, वानांतर और देशांतर। इनका अलग-अलग लक्षण भी बताया गया है। नंददास के अनुसार प्रिय के पास रहते हुए भी प्रिय के प्रगाढ़ प्रेम की उत्कट लालसा में प्रिय के वियोग का क्षणिक भ्रम प्रत्यक्ष विरह है। पलक मारने में जितनी देर लगती है उतनी देर के लिए भी प्रिय-दर्शन से वंचित होना पलकांतर विरह है। कृष्ण जब गोचारण के लिए वन में जाते हैं उस समय का वियोग वनांतर विरह के रूप में कल्पित है। प्रिय के परदेश चले जाने पर देशांतर विरह होता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि रीति ग्रंथों में वियोग के चार भेद पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण बताए गए हैं। नंददास ने 'विरहमंजरी' में जिन चार भेदों का उल्लेख किया है उनमें दो वनांतर तथा देशांतर रीतिग्रंथों में वर्णित एक भेद प्रवास-वियोग के अंतर्गत आ जाते हैं किंतु प्रत्यक्ष और पलकांतर किसी के अंतर्गत नहीं आते। इस तरह यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष और पलकांतर वियोग की कल्पना नंददास के आचार्यत्व की एक नई उद्‌भावना है।

प्रकृति के क्रिया-व्यापारों तथा वस्तुओं को विरह-विकलता का उद्‌दीपन बनाने की कवि-परंपरा का निर्वाह नंददास ने भी किया है। संयोगावस्था की सुखप्रद वस्तुओं का वियोग में दुखदायी हो जाना, संयोगकाल की स्मृतियों से हृदय को कष्ट पहुँचना तथा सृष्टि के सभी उपादानों से दुख का अनुभव करना वियोग वर्णन की स्वाभाविक कवि रूढ़ियाँ हैं। नंददास ने भी प्रकृति का उद्‌दीपक रूप 'षड्‌ऋतु' तथा 'बारहमासा' में चित्रित किया है। 'रूपमंजरी' का विरह वर्णन षड्‌ऋतुओं के अंतर्गत हुआ है। प्रिय से मिलन नहीं होने की स्थिति में रूपमंजरी की प्रसन्नता दुख में, हर्ष विषाद में तथा प्रफुल्लता करुणा में परिणत हो गई है। उसकी भूख-प्यास मर गई है। आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। बार-बार स्वर-भंग हो रहा है। बीच-बीच में उसे मूर्च्छा का शिकार भी होना पड़ता है। अश्रु, प्रलाप, जड़ता, उन्माद आदि के प्राकट्य से उसकी दशा अत्यंत दयनीय हो गई है। उसका विरह-ताप इतना बढ़ गया है कि वह किसी के पास

बैठकर इस भय से श्वाँस तक नहीं ले पाती कि उसकी उष्णता का पता चलने पर यदि कोई पूछ बैठे तो वह क्या उत्तर देगी? किसी के कमल-पुष्प देने पर वह इस आशंका से उसे नहीं छूती कि कहीं उसके विरह ताप से वह जल न जाए इसलिए उसे अपने पास रखवा लेती है-

*"बाल अर्क सम बिरह जनायो। तिय तन तनक तपति ह्वै आयो।।*
*आन की ढिग उसास नहिं लेई। मूँदे मुँह तिहि उतरू देई।।*
*तपत उसासनि जौ कोऊ लहै। बाला बिरहिनी का तब कहै।।*
*जो कोउ कमल फूल पकरावै। हाथ न छुवै निकट धरवावै।।*

(नंददास ग्रंथावली, पृष्ठ 115)

'विरहमंजरी' में नंददास ने 'बारहमासा' का जो वर्णन किया है वह रीति परंपरा के अनुकूल है। विरहिणी के हृदय पर प्रत्येक महीने में प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के पड़ने वाले प्रभावों को कवि ने जिस सहजता, स्वाभाविकता और सरसता के साथ वर्णित किया है उससे उसका शास्त्र और लोक ज्ञान सूचित होता है। नंददास ने कई स्थलों पर ऊहात्मक वर्णन भी किया है किंतु उसमें बिहारी की सी अस्वाभाविकता नहीं है। प्रोषित पतिका नायिका की कामदशाओं के चित्रण में अनुभूति की सहजता के साथ आलंकारिकता के समावेश ने जहाँ काव्य सौंदर्य में अभिवृद्धि की है वहीं कवि के आचार्यत्व को प्रतिष्ठित भी किया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नंददास भक्त और कवि ही नहीं बल्कि एक आचार्य भी थे। उन्होंने काव्यशास्त्र का विधिवत अध्ययन किया था। साहित्यानुरागियों को काव्य-रीति की शिक्षा देने के लिए उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। रस की प्रतिष्ठा, नायक-नायिका भेद, विप्रलंभ *शृंगार* संबंधी कुछ नवीन उद्भावनाएँ, पर्याय कोश आदि का निर्माण नंददास के आचार्यत्व की प्रतिष्ठा के निकष हैं।

– एन.जी 22, टाइप-V, नया गाँव, चक्करगाँव, पोर्ट ब्लेयर, अंडमान-744112

❑❑❑

# महर्षि वाल्मीकि और उनका गुरुकुल

**हर्ष कुमार 'हर्ष'**

महर्षि वाल्मीकि एक प्रसिद्ध मुनि हुए हैं जो आदिकवि और 'रामायण' के रचयिता माने जाते हैं। संस्कृत में रचित यह महाग्रंथ आदि महाकाव्य है। इस मनोहर काव्य-ग्रंथ में श्री रामचंद्र जी का इतिहास दिया गया है। लिखा मिलता है कि तपस्या में समाधिस्थ रहते हुए इनके शरीर पर दीमक इत्यादि ने वरमी बना रखी थी, इसलिए नाम वाल्मीकि हुआ। आप श्री रामचंद्र जी के समकालीन थे। इसलिए इनकी रचना रामायण में विश्वसनीय तथ्य मिलते हैं। रामायण में सात कांड हैं यथा; बाल कांड, अयोध्या कांड, वन कांड, किष्किंधा कांड, सुंदर कांड, लंका अथवा युद्ध कांड और उत्तर कांड। इन सात कांडों को 647 अध्यायों में विभाजित करके लिखे गए कुल श्लोकों की संख्या 24000 है। इस ग्रंथ का अनुवाद विश्व की विभिन्न भाषाओं में हो चुका है। भारत में लगभग 65-70 विद्वानों ने उत्तरोत्तर रामायण की रचना की है जिनका मूल आधार वाल्मीकि रामायण ही है।

इस प्रयास में सर्वप्रथम महर्षि व्यास ने अध्यात्म रामायण की रचना की जो ब्राह्मण पुराण का ही एक भाग है। साधु गुलाब दास ने बड़े मधुर और सुंदर शब्दों में वाल्मीकि रामायण का हिंदी में अनुवाद किया था। इसी प्रकार कवि हृदय राम ने हनुमान नाटक के नाम से तत्कालीन ब्रजभाषा में बड़े मनोहारी शब्दों में श्रीराम इतिहास का वर्णन किया। संत तुलसीदास विरचित 'श्रीरामचरितमानस' तो आज पूरे विश्व में घर-घर में शोभायमान है।

श्री रामचंद्र जी द्वारा अपनी गर्भवती पत्नी सीता जी को त्याग देने पर, वह महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ही रही थी। वहीं पर उसका प्रसव हुआ

जिसमें युगल बेटे कुश और लव उत्पन्न हुए। मुनि वाल्मीकि ने इन सब का लालन-पालन करते हुए दोनों बच्चों को संगीत विद्या और शस्त्र विद्या में पारंगत कर दिया था।

अब विषय आता है कि महर्षि वाल्मीकि का आश्रम कहाँ पर स्थित था। इस पर विद्वान एक मत नहीं हैं। अधिकतर विद्वानों ने आश्रम को उत्तर-प्रदेश में स्थित बाँदा जिले में एक रमणीक पर्वत चित्रकूट में बताया है, जहाँ पयस्विनी नदी बहती है। कुछ विद्वानों ने वाल्मीकि आश्रम का स्थान कानपुर से 20-22 किलोमीटर की दूरी पर बिठूर नामक स्थान पर बताया है जहाँ गंगा जी बहती है। यह बिठूर वही स्थल है जहाँ झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई उत्पन्न हुई थी। यह स्थान लेखक ने देखा है और सब देखने पर उसका मन संतुष्ट नहीं हुआ कि यहाँ पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम अर्थात गुरुकुल रहा होगा। इसी प्रकार कुछ अन्य स्थानों को भी चिह्नित किया गया है। बिहार प्रदेश में जिला बेतिया के चंपारण में भी एक तमसा नदी है जिसके किनारे एक जंगल है जिसे वाल्मीकि आरण्य के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ के रहने वाले लोग मानते हैं कि महर्षि वाल्मीकि का आश्रम यहीं पर था। सीता माता ने यहीं पर अपना प्रसव किया और लव-कुश का जन्म यहीं पर हुआ था। इसी स्थान को वाल्मीकि नगर भी कहते हैं।

जानकार लोगों का मत है कि वाराणसी से 80 किलोमीटर की दूरी पर गंगा जी के किनारे बसे स्थान सीतामढ़ी ही महर्षि वाल्मीकि का आश्रम रहा है। यहीं पर क्रूर बहेलिए द्वारा आहत क्रौंच को पाकर मुनि ने प्रथम श्लोक का उच्चारण किया था- "मा निषाद....''। सीता माता ने भी अपना निर्वासन का समय यहीं पर रहकर बिताया था। यहीं पर लव-कुश बेटों को जन्म दिया था। यहीं पास ही में धरती में समा गई थीं। संत तुलसीदास ने भी महर्षि का आश्रम यहीं पर स्वीकार किया।

पंजाब में प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर अमृतसर के लगभग 8-10 किलोमीटर की दूरी पर एक पौराणिक स्थल रामतीर्थ के नाम से जाना जाता है, जो बड़े भू-भाग पर फैला हुआ है। यहाँ पर एक विस्तृत सरोवर भी है। पंजाब के अधिकतर विद्वानों का मत है कि यहाँ पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम रहा था।

इस अवधारणा की पृष्ठभूमि में कुछ किंवदंतियाँ भी हैं, जैसे कि अमृतसर नगर के विश्व प्रसिद्ध स्वर्ण मंदिर में बना विशाल सरोवर (अमृत का सर), इस सरोवर के किनारे खड़ी दुख भंजनी बेरी। इन दोनों स्थलों से एक पौराणिक कथा जुड़ी हुई है कि एक अभिमानी राजा था तथा उसकी सात बेटियाँ थीं। राजा कहता था कि वही उनके लिए भगवान है वही सर्वोच्च सत्ता है। छह बेटियाँ पिता का समर्थन करती थीं और एक जो पिता को मात्र पिता मानती थी, राजा ने उसकी शादी एक पिंगले के साथ कर दी, ताकि उसे अहसास होता रहे कि उसका पिता जो चाहे कर सकता है।

वह लड़की अपने अपाहिज पति को उठाए यहाँ-वहाँ घूम कर भोजन माँग कर ले आती और दोनों बैठ कर प्रेम और संतुष्टि से अपना पेट भर लेते थे। एक दिन वह घूमती हुई कहीं से भोजन लेकर लौटी तो उसका पति स्वस्थ हो चुका था। पूछे-जाने पर भेद खुला कि उसका पति पास में स्थित जोहड़ में नहाया था। लोगों से भी पता चला कि यहाँ पर नहाने से सबके दुख दूर हो जाते हैं। लोग उसे अमृत का कुंड कहते थे। आज भी इस अमृत-कुंड का संबंध उस कथा से जोड़ा जाता है, जब श्री रामचंद्र जी ने दिग्विजयी सम्राट होने की आकांक्षा से घोड़े के सिर पर जय-पत्र बाँध कर छोड़ा था और उसे उनके बेटों ने पकड़ लिया। अनजाने में युद्ध भी हुआ जिसमें श्री रामचंद्र जी मूर्छित हुए थे। जब सीता माता को पता चला तो वह महर्षि से निवेदित हुई कि वह अपनी आँखों के सम्मुख अपने पति को इस अवस्था में नहीं झेल पाएगी। अतः महर्षि ने अमृत का घोल बनाकर श्री रामचंद्र जी को पिलाया तो वे स्वस्थ हो गए थे। शेष बचे अमृत हेतु महर्षि ने अपने शिष्यों को दो-चार कोस दूर जाकर धरती में दबा देने का निर्देश दिया। ऐसा ही हुआ और संभवतः दबे हुए घट वाला स्थान वर्षा के कारण दबता गया और जोहड़ बनता गया। कदाचित आज का अमृत-सरोवर वह स्थल माना जाता है। ऐसा प्रकरण कुछेक ऐतिहासिक ग्रंथों में भी मिलता है। इस उपरोक्त कथन से श्री रामतीर्थ स्थल पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम होने की उक्ति को बल मिलता है।

हमारे इस कथन को और भी पुष्ट करती हैं, मास सितंबर 2014 के समाचार पत्रों में बनी सुर्खियाँ कि अमृतसर के रामतीर्थ रोड पर स्थित गाँव

भिट्टेविंड के सरकारी स्कूल के प्राँगण में मिली एक प्राचीन 'बावड़ी'। नि:संदेह सन् 2013 में भी इस कुईं पर संदेह व्यक्त किया गया था कि यह सीता जी की बावड़ी है, क्योंकि बड़े-बूढ़े लोग बातें किया करते थे कि उनके पूर्वज उन्हें बताया करते थे कि उनके गाँव में सीता जी की बावड़ी हुआ करती थी जहाँ पर वह अपने बच्चों को नहलाने और कपड़े धोने आया करती थीं।

बूढ़े-बुजुर्गों ने तो यह भी कहा था कि इस बावड़ी से रामतीर्थ तक एक सुरंग भी जाती थी। इस स्थान से रामतीर्थ (ऋषि-आश्रम) मात्र एक कोस भर भी नहीं है। यह कुई मिल जाने से सारा गाँव प्रसन्न है कि उनके गाँव से सीता माता का संबंध रहा है। इस विस्तृत क्षेत्र (ऋषि-आश्रम) का कई बार जीर्णोद्धार भी किया जाता रहा है।

भारत सरकार से भी अपेक्षा है कि इस स्थल पर शोधकार्य करवा कर यथार्थ को सामने लाए। यह स्थान देश की सवा सौ करोड़ जनता की आस्था की वशिष्ठ धरोहर है।

हमारी इस अवधारणा को इस बात से भी बल मिलता है कि श्री रामचंद्र जी के दोनों बच्चों के नाम से जो दो नगर बसाए गए थे, वे भी अमृतसर अथवा रामतीर्थ के पास ही हैं। लव के नाम से लाहौर नगर बसा था। लाहौर के किले में लव का मंदिर भी बना हुआ था। (गुरुशब्द रत्नाकर महान कोश पृ. 1054)। कुश के नाम से कपूर नाम का शहर बसाया गया था। नि:संदेह ये दोनों नगर आज पाकिस्तान में हैं फिर भी ये दोनों ही स्थल अमृतसर से लगभग 25-30 मील की दूरी पर ही अवस्थित हैं।

ऐसा ही कुछ दशम गुरु गोविंद सिंह जी ने भी अपने ग्रंथ में लिखा है।

इन उपरोक्त संदर्भों से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि महर्षि वाल्मीकि जी का मुख्य गुरुकल रामतीर्थ (अमृतसर) में ही था। हाँ यह भी संभव है कि इस गुरुकुल के केंद्र अन्य स्थानों पर भी हों, जिस कारण विद्वानों ने विभिन्न स्थानों को महर्षि का गुरुकुल होना माना है।

– 781-एस.एस.टी. नगर, पटियाला (पंजाब)-147003

❑❑❑

# तीन कहानियाँ

**रवींद्रनाथ टैगोर**

## बिखरे फूल

प्रभात काल का तरुण रवि उषा की स्तुति-हेतु स्वर्ण-पत्र सजाकर लाया। उस समय असीम नीला जल हर्ष से सिहर रहा था; किरण-तुलिका गगन-भाल पर रंगावली अंकित कर रही थी।

मछियारे सागर-तट पर बैठकर जाल बुन रहे थे। थोड़ी देर में वह मत्स्य-जाल फैला दिया गया। न जाने कैसे समुद्र की अथाह गहराई से विविध विलक्षण रत्न-समुच्चय उस जाल में सिमटकर ऊपर आ गया। उस रत्नराशि के कुछ रत्न स्मित-हास्य समान उज्ज्वल थे और कुछ अश्रुकण-से बुझे हुए थे और कुछ थे सलज्ज नव-वधु के आरक्त कपोलों के समान गुलाबी। समय बीतता गया। सूर्य ने पूर्व दिशा से प्रस्थान प्रारंभ किया। मध्याह्न का मार्तंड चमकने लगा। संध्या आई। गोधूलि से आकाश धूसर हो गया। मछुआरे घरों को लौट चले।

मछुआ दिन-भर का बोझ लिए घर आया। आकाश पर चाँद उठ चला था। ग्राम-पथ निर्जन था। सब आँखें बंद करके सो रहे थे। विरही पक्षी कातर स्वर से प्रेमी की पुकार कर रहा था।

मत्स्य-जाल में सिमटे रत्नों को एकटक देखने के बाद उसने कहा- "यह धन कैसा? मेरे लिए इसका क्या प्रयोजन? इसे पाने को मैंने किसी से युद्ध नहीं किया औरे न मैंने मूल्य देकर हाट से लिया है; इनका आदर कौन करेगा?"

रात-भर उन रत्नों को वह रास्ते पर बिखरेता रहा।

प्रभात के मार्ग से जाने वाले पथिकों ने उन बिखरे फूलों को चुना और दूर देशों में पहुँचा दिया।

# अपरिचित यात्री

मैं चंचल हूँ, तृषित हूँ, दूर की लुभावनी वस्तुओं की लिप्सा मेरे मन में सदा जागृत रहती है। मेरी आत्मा अनंत दूरी के आंचल को छूना चाहती है।

दिन बीतता जाता है। मैं उन्मन-सा वातायन पर बैठा तेरी बाट जोहता रहता हूँ। मेरे मन-प्राण में तेरा स्पर्श पाने की तृषा भरी है।

हे विराटू, तुम दूर से अपनी वंशी बजाते हो। मैं भूल जाता हूँ, सदा भूल जाता हूँ कि व्योमाकाश के अनंत पथ पर उड़ने के लिए मेरे पास पंख नहीं हैं, मैं उड़ नहीं सकता।

मैं जिज्ञासु हूँ, प्रवासी हूँ। तुम दुर्लभ दुराशा के समान अप्राप्य हो। तुम मुझे कौन-सी कथा कहा करते हो, मैं नहीं जानता।

तुम्हारी भाषा तुमसे ही सुनता हूँ। हृदय कहता है वह भी तुम्हारी स्वभाषी है, तुम्हारे इंगितों को पहचानता है।

हे सुदूर! विपुल सुदूर! तुम वंशी के स्वर बजाते हो। मैं सदा भूल जाता हूँ कि उन सुंदर पथ-वीथिकाओं का मुझे कोई ज्ञान नहीं और मेरे पास वहाँ तक पहुँचने का कोई वाहन नहीं।

मैं अपने ही हृद्याकाश में निरुद्देश्य विहार करने वाला यात्री हूँ।

# कवि का वय

*महकवि, साझ की वेला आ गई, केश पककर धवल होने लगे तुम्हारे।*
*अपने गीतों में क्या उस पार की पुकार नहीं सुना करते तुम?*

कवि ने कहा- संध्या-समय सत्य ही आ गया, तथापि अभी मैं उस पार की पुकार नहीं सुन रहा। किसलिए? इसलिए कि कहीं ऐसा न हो कोई पास की वकुल वन छाया से मुझे पुकार उठे; अथवा कोई विरह-विकल प्रेमी मिलन को अधीर हो उठे और मेरे गीतों की गूँज न सुन पाए; अथवा दो प्यासे नेत्र मिलन से पूर्व मेरे गीतों से पुलक प्रेरणा पाने की प्रतीक्षा ही करते रह जाएँ।

कदाचित मैं भी लोकधारा से विलग हो लोकांतर के स्वर-संचय में व्यस्त हो जाऊँ तब प्रेम-पुलकित वीणा के इस लोक के स्वर-कंपन को गीतों में कौन पिरोएगा?

एक दिन....

जब संध्या-तारक उदय होकर अस्त हो गया हो;

नदी-तट पर श्मशान की जलती चिता के दहकते अंगारे बुझ गए हों;

शृगालदल ऊँचे स्वर से चीत्कार करने लगे हों; कृष्णपक्ष का चाँद पीला पड़ गया हो;

ऐसे समय यदि कोई सद्य:विरक्त पथिक आ जाए और सिर झुका सप्तर्षियों को देखने लगे और गहन अंधकार का शब्दहीन गीत सुनने को तन्मय हो जाए और मैं भी अपना द्वार बंद कर, संसार शृंखलाओं से मुक्त होने के स्वप्नों में डूब जाऊँ, तब उस विरक्त पार्थव को जीवन के रहस्य-गीत कौन सुनाएगा?

मेरे केशों में धवलिमा झलकने लगी है, किंतु मैं आज भी वैसा ही तरुण हूँ जैसा कभी था और अब भी उतना ही वृद्ध हूँ जितना इस गाँव का छोटे-से-छोटा बालक है।

कुछ लोगों के अधरों पर सदा मधुमय निर्मल हास्य खेलता है और कुछ ही भृकुटियाँ अल्पवय में ही छल-कपट की तिरछी रेखाओं से कुटिल हो जाती हैं।

कुछ के आँसू आँखों में छलक-छलक आते हैं और कुछ के आँसू मन-ही-मन सूख जाते हैं।

कुछ प्रमादी घर के कोने में ही बैठे-बैठे थक जाते हैं और कुछ पुरुषार्थी अपना कार्य-रथ जगत के ओर-छोर में अंतिम श्वासों तक दौड़ाते रहकर भी नहीं थकते।

कुछ अपने एकाकी निरापद क्षेत्र में भी अपने योग्य स्थान नहीं बना पाते और कुछ हैं जो लक्षकोटि जनारण्य में भी अपना यशस्वी मार्ग बना लेते हैं।

मुझे संसार के कोटि-कोटि जनों में रहकर गीत गाने हैं। उस पार के गीत गाने का समय ही नहीं है मेरे पास।

❑❑❑

# रुना मैडम

**राजकिशोर दास**
**अनुवाद : डॉ. शेख सईद**

अबोलकरा जिस शहर में रहता है, वहाँ एक अस्सी साल का पुराना कॉलेज है। राजा महाराजा के समय से स्थापित। उस समय मद्रास प्रेसिडेंसी के हाथ में था। ओड़िशा के प्रथम कितने कॉलेजों में उसका नाम प्रमुख है। लेकिन खेद की बात यह है कि बार-बार छात्र आंदोलन और जनसाधारण की मांग के बावजूद आजतक स्नातकोत्तर विभाग नहीं खुल पाया था। सारी योजनाएँ, सारे उन्नतिमूलक काम ओड़िशा के प्रमुख शहर में होते थे। इस इलाके को कौन पूछता है? फिर भी सरकार की कृपा से इसी साल कुछ विभाग स्नातकोत्तर श्रेणी में खुले हैं।

अबोलकरा ने भी ओड़िआ विभाग में नाम लिखवाया था। कॉलेज उसके लिए नया नहीं था। केवल कुछ नए अध्यापक और अध्यापिका आए हुए हैं। रेवेन्सा से आई हुई नई मैडम के विषय में बच्चों में काफी चर्चा हो रही थी। कुछ दिनों में वह सभी की दृष्टि का केंद्रबिंदु बन गई थी।

वह जिस दिन पहली बार क्लास में आई, उन्होंने पहले अपना परिचय दिया। उनका नाम है रुना पटनायक। उन्होंने उन्नीस सौ सत्तर के बाद की आधुनिक कविता पर गवेषणा करके डॉक्टर की डिग्री प्राप्त की थी। कभी-कभी वह कविताएँ लिखती और पढ़ती थीं। उसके पश्चात् एक के बाद एक छात्र-छात्राओं का परिचय उन्होंने पूछा। सभी ने अपना परिचय दिया। जब अबोलकरा ने अपना नाम 'अबोलकरा' कहा, तभी मैडम पहली बार हँस पड़ी। उसके बाद क्लास के सभी छात्र हँसने लगे। इसके लिए अबोलकरा के मन में कोई भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। मैडम ने उस दिन आधुनिक ओड़िआ कविता पर

एक सुंदर-सा भाषण दिया। सभी छात्र मंत्रमुग्ध हो गए। उनके मुख के सुंदर अंदाज में, अपूर्व प्रकाशभंगिमाओं में, सर्वोपरि झीनी पतली साड़ी के आवरण को भेदकर उनकी जवानी महक रही थी।

क्लास समाप्त करके लौटते समय अबोलकरा की दृष्टि उनके पीठ पर पड़ी। मैडम ने इतनी पतली साढ़ी पहनी हुई थी कि उसके भीतर से ब्रा स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी, शायद किसी कारण से ब्रा का हुक टूट गया था या फिर फट गया था। छात्रों की नजर उस पर पड़ी। उस पर काफी श्लील-अश्लील बहस हुई। किसी ने कहा- अरे मैडम नई आई हैं, इसलिए किसी ने उनका हुक खोल दिया होगा, किसी ने कहा कि जानबूझकर उन्होंने खुद खोल दिया होगा। यह सब सुनकर अबोलकरा से सहा नहीं गया। वह सीधा लेकचर्स कॉमनरूम की ओर चल पड़ा। उसने मैडम को बाहर बुलाकर कहा-

"मैडम, कृपया ऐसी साढ़ी पहनकर कॉलेज मत आइए।"

ऐसी एक परिस्थिति का सामना करने के लिए मैडम प्रस्तुत नहीं थी। सहसा नर्वस हो गई और क्रोध से कहा- "तुम कौन हो मेरी साड़ी के बारे में कमेंट करने वाले। जानते हो, मैं क्या नहीं कर सकती? प्रिंसिपल से कहकर तुम्हें कॉलेज से रेसटिकेट करवा सकती हूँ।

अबोलकरा और कुछ न कहकर चुपचाप लौट आया। प्रायः दो चार दिन तक कॉलेज नहीं गया। सोच रहा था शायद मैडम कुछ न कुछ एक्शन ले सकती हैं।

लेकिन दोस्तों से सुना। कॉलेज क्यों नहीं आ रहे हो? "क्लास नियमित हो रही है", 'रुना मैडम भी क्लास में आ रही हैं - यह सारी बातें सुनकर वह कॉलेज आने लगा।

उसे क्लास में देखकर रुना मैडम ने कहा- "अबोलकरा क्लास खत्म होने के बाद मुझसे कॉमनरूम में मिलना।"

अबोलकरा का मन शंकित हुआ, पता नहीं मैडम क्या कहेंगी। फिर भी हिम्मत करते हुए उनके पास गया। उन्हें बरामदे में देखकर, मैडम ने बाहर आकर कहा- "कॉलेज क्यों नहीं आ रहे थे? मुझे क्वॉर्टर मिला है, हनुमान मंदिर के पीछे का पहला क्वॉर्टर। शाम को आना, कुछ बातें करेंगे।"

अबोलकरा ने ध्यान से देखा कि अब मैडम का उस पर और गुस्सा नहीं है। मोटी साड़ी पहनी हुई है। शायद अपनी गलती का उन्हें अहसास हुआ है। जैसा भी हो; मैडम जो भी पहनती हैं, काफी सुंदर दिखती है।

शाम को वह मैडम के घर गया। मैडम घर में थी, उसे अंदर बुलाया। कम सामान में भी, मैडम ने घर को बड़े सुंदर ढंग से सजाया था।

ड्रॉइंग रूम में दो बैत की चौकी हैं। एक पर खुद बैठकर दूसरे में अबोलकरा को बैठने को कहकर बातें शुरू की।

– तुम्हारा अपना घर यहीं है?

– जी हाँ।

– मेरा घर कटक में....

– क्या आप यहाँ अकेली रहेंगी?

– हाँ, कुछ महीने रहना पड़ेगा।

– उसके बाद?

– मेरे पिता जी विरोधी दल के नेता हैं। इसलिए शासक दल के आक्रोश के कारण मुझे यहाँ भेजा है। सिर्फ मैं नहीं, मेरे जैसे और भी कितने इसका शिकार बने हैं। पहली बात तो यह है कि अगर मैंने एक सरकारी नौकरी पाई है, तो तबादले के लिए भय कैसा? दूसरी बात यह है कि मेरे पिता जी फिर से मुझे वहाँ लेने के लिए जी तोड़ कोशिश कर रहे होंगे। विरोधी नेता है, इसलिए काम होने में थोड़ी देर लगेगी। हाँ तुम बैठो, मैं चाय लेकर आती हूँ।

– नहीं मैडम, मैं चाय नहीं पीता, अब मैं जा रहा हूँ।

– नहीं, नहीं जा रहा हूँ, कहो आ रहा हूँ। मैं जब तक यहाँ हूँ, तुम हर दिन आना।

अबोलकरा हाँ कहकर वापस हुआ। वह समझ नहीं पा रहा था कि मैडम का वह क्रोध कहाँ चला गया और उसके प्रति इतना अच्छा व्यवहार क्यों? फिर भी उसने मैडम के साथ लगातार संपर्क बनाए रखा। अबोलकरा के मित्र उसके साथ मजाक करने लगे। बात-बात पर कहने लगे, अबोलकरा रुना मैडम का चेला है, उनके लिए बाजार का सौदा लाता है। बैग, बोझा आदि ढोता है। इन बातों पर वह तनिक भी ध्यान नहीं देता था। वह यह नहीं चाह रहा था कि रुना मैडम को किसी तरह की असुविधा हो।

पूजा की छुट्टी में कटक जाने से पहले मैडम ने अबोलकरा से कहा–

– छुट्टी में कटक आओ, पूजा देखोगे।

– नहीं मैडम, मेरे पिता जी यहाँ नहीं रहते। माँ को अकेला छोड़कर मैं कहीं नहीं जा सकता।

– क्यों? घर में कोई ओर नहीं है।

– नहीं, मैं माँ–बाप की एकमात्र संतान हूँ। आप नहीं जानती मैडम कि मैं एक दिन के लिए भी माँ को अकेला छोड़कर कहीं नहीं गया।

– आश्चर्य! इतने बड़े हो गए हो।.... छोड़ो, अब बताओ कि मैं तुम्हारे लिए कटक से क्या लाऊँ?

– कुछ नहीं।

– मतलब।

– मुझमें जब किसी को देने का सामर्थ्य नहीं है, उससे पाने की आशा क्यों करूँ?

– सुनो, जिस दिन कॉलेज खुलेगा, उस दिन मैं रात की बस से सुबह–सुबह पहुँच जाऊँगी। क्या तुम बस स्टॉप पर आओगे?

– जी हाँ।

उस दिन लौटते समय अबोलकरा अन्यमनस्क हो गया था। सारी छुट्टियों में उसमें एक उदासीपन दिखाई पड़ा।

छुट्टी समाप्त होने के दिन उसने बस स्टॉप पर जाकर इंतजार किया। मैडम को निर्दिष्ट बस में आते हुए देखकर वह बेहद खुश हुआ। मैडम के बस से उतरते ही उसने कहा–

– मैडम। रिक्शा बुलाऊँ।

– नहीं, नहीं। सारी रात बस में बैठकर पीठ में दर्द हो रहा है, चलो पैदल चलें।

मैडम का सुटकेस और फैंसी बैग साइकिल पर लादकर अबोलकरा मैडम के साथ चलने लगा। मैडम ने कहा–जानते हो अबोलकरा, मेरा ट्रांसफर होने की आशा साफ हो गई है।

– क्या सचमुच मैडम, तुम चली जाओगी?

– जाना ही पड़ेगा। हाँ देखो, तुम्हारे यहाँ जो दर्शनीय स्थान है, मुझे जरा दिखा दो।

– यहाँ जो आते हैं, वह एक न एक बार नीलाम्मा दुर्गा ठाकुरानी का दर्शन करके जाते हैं। क्या आप जाएंगी?

– वह मंदिर कहाँ है?

– इस शहर के अंत में महेंद्रतनया नदी है। उसकी दूसरी ओर आंध्र का एक गाँव है। उस गाँव के अंत में मंदिर है। यहाँ से सिर्फ पाँच/छह किलोमीटर की दूरी पर होगा।

– ठीक है, अगले रविवार के दिन चलेंगे।

बात करते हुए क्वॉर्टर के पास पहुँच गए। किवाड़ खिड़की खोलकर मैडम घर साफ करने लगीं। अबोलकरा थोड़ी ही मदद कर घर लौटने लगा।

मैडम ने कहा– "अबोलकरा। उस बैग में पूजा संख्या की कुछ पत्रिकाएँ हैं' उससे एक दो पत्रिका लेकर पढ़ाई करना। मेरी भी कुछ कविताएँ पूजा विशेषांक में प्रकाशित हुई हैं।"

अबोलकरा ने उस बैग से पत्रिका निकालते हुए देखा कि उसके भीतर ऊन का बंडल भरा हुआ है। उसने सोचा, मैडम इतने बड़े घर की लड़की हैं, इतना वेतन पाती हैं, फिर भी अपने हाथ से स्वेटर बुनेंगी? सबसे बड़ी बात यह है कि उनके नरम सुंदर, कोमल अंगुलियों को क्या इतना कष्ट दे पाएंगी। वह इसी तरह इधर–उधर की बातें सोचते हुए घर को लौटा।

रविवार के दिन मंदिर जाने के लिए अबोलकरा सुबह मैडम के घर पहुँचा। लेकिन मैडम ने धूप के डर से दोपहर को निकलने के लिए मना किया। फिर साढ़े चार बजे अबोलकरा मैडम के घर गया। उस समय मैडम तैयार थीं। उसे देखते ही पूछने लगीं–

– हम कैसे जाएंगे।

– मैडम, हर समय ताँगा मिलता है। फिर भी बस से चलना होगा। जरा इंतजार करना पड़ेगा।

– नहीं, हम ताँगे से जाएंगे।

– क्या आप ताँगें में बैठ सकती हैं?

– हाँ, कभी कटक में ताँगा गाड़ी थी, मैंने सुना है, अभी तक देखा नहीं। अगर यहाँ ताँगे में बैठने की सहुलियत है तो फिर असुविधा किसलिए?

– लेकिन मैं साइकिल से जाऊँगा। वैसे ही ताँगा और साइकिल में जाकर दोनों को नीलमणि दुर्गा ठाकुरानी मंदिर में पहुँचते–पहुँचते शाम हो गई। मैडम ने पूजाविधि समाप्त कर कहा–

– अबोलकरा, यह स्थान काफी अच्छा लगता है, कुछ समय यहाँ घूमेंगे।

– लेकिन मैडम, देर करने से ताँगा नहीं मिलेगा।

– बस!

– हाँ बस मिलेगी, लेकिन उसके लिए इंतजार करना पड़ेगा।

उसके बाद दोनों घूमने गए। मंदिर के सामने नैरोगेज ट्रेन लाईन, थोड़ी दूरी पर स्टेशन। वह स्थान घूमकर कुछ समय के बाद रास्ते में चलने लगे। गहरा अंधेरा होने से अबोलकरा ने कहा–

– मैडम, चलो, अब चलें।

दोनों को चलकर बस स्टॉप तक पहुँचने में शाम के सात बज गए। उनको पता चला कि लास्ट बस नौ बजे है, इसके पहले और बस नहीं है।

अबोलकरा ने कहा–

– मैडम, पैदल जाने के अलावा और कोई उपाय नहीं है

– हाँ, चलो, क्यों नौ बजे तक इंतजार करेंगे?

दोनों के गाँव के बाहर आ जाने के बाद मैडम ने कहा– अबोलकरा, तुम साइकिल लाए हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हें चलना पड़ रहा है।

– लेकिन मैडम, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन क्या आप इतना दूर पैदल जा पाएंगी।

– क्या तुम मुझे साइकिल में बिठा नहीं पाओगे?

– हाँ, मैडम, डबल बिठाकर लेने में मुझे कोई असुविधा नहीं है। क्या आप साइकिल में बैठेंगी?

– हाँ, अगर तुम्हें कोई असुविधा न हो। हम दोनों इतना घूम चुके हैं कि मुझे थकावट हो रही है। और पाँच किलोमीटर चलकर जाने में काफी कष्ट होगा।

– आप पीछे बैठ सकती हैं?

– क्या आगे बिठा नहीं सकते?

– ठीक है, बैठो।

तारों से भरा हुआ आकाश। अबोलकरा की साइकिल में रुना मैडम। शाम की ठंडी हवा। मन उसका आनंद से नाच रहा था। मैडम ने पूछा–

– अबोलकरा, तुमने मंदिर में क्या मांगा?

– मांगने के लिए भूल गया, कुछ भी मांग नहीं पाया। और आप?

– मैंने भी कुछ नहीं मांगा?

– क्यों?

– ऐसी ही कुछ बातें हैं, जो भगवान से मांगी नहीं जा सकती, जिसे वह दे नहीं सकता, तब न मांगना ही अच्छा है? इस बात के मर्म को अबोलकरा समझ नहीं पा रहा था, उसने पूछा–

– मैडम, एक बात पूछना चाहता हूँ, आप बुरा तो नहीं मानेंगी?

– देखो, तुम जो भी पूछना चाहो, मैं बुरा नहीं मानूंगी।

– मैडम, इस बीच मैंने आपकी जितनी भी कविताएँ पढ़ी, मुझे काफी अच्छा लगा। लेकिन मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि आप खूब अकेलेपन का अनुभव कर रही हैं। कुछ एक अनकहा दुख आपके भीतर है, जो कविता में शब्द बनकर कभी–कभी प्रकट होता है।

– हाँ, तुमने मेरी कविता को ठीक से अनुभव किया है। कविता को अगर कोई ठीक से अनुभव कर पाता है, वही कवि की सार्थकता है। अब हम जिस समय के बीच गुजर रहे हैं, यहाँ पर इतनी भीड़ में स्वयं को अकेला पाते हैं। सब कुछ प्राप्ति के उद्‌र्ध में, अप्राप्तिबोध हमको स्वयं ग्रास करता है। इसे युग की यंत्रणा कह सकते हो।

अबोलकरा और कुछ न कहकर साइकिल चलाकर शहर के आरंभ में उतर पड़ा। दोनों अब पैदल चलने लगें। कैसे एक अखंड नीरवता ने दोनों को ग्रास कर लिया था कि शहर का कोलाहल उन्हें छू नहीं पाया। उसके बाद पता नहीं क्यों, रुना मैडम के घर अबोलकरा का आना जाना कुछ कम हो गया। वह एक अभावबोध के भीतर डूबा रहता। एक महीने के बाद रुना मैडम का तबादले का आर्डर आ गया। क्वार्टर छोड़ने के दिन अबोलकरा गया था। सारा दिन सामान बांधने के कार्य में मदद की। मैडम के छोटे भाई उसे साथ लेने आए थे। सामान

को दो रिक्शा में लादकर एक में मैडम के भाई बस स्टैंड गए। मैडम अबोलकरा को घर के अंदर बुलाकर, अपने फैंसी बैग से, हाथ से बुना हुआ स्वेटर निकालते हुए कहा–

– अबोलकरा, तुमने कभी कुछ पाने की आशा नहीं की थी, आज मैं तुम्हें तोफे के रूप में यह स्वेटर देती हूँ, इसे लो। पहनो, मैं देखूंगी।

अबोलकरा और कुछ कह नहीं पाया। चुपचाप स्वेटर पहन लिया। रुना मैडम ने दोनों हाथों से उसके मुँह को सहलाते हुए कहा–

– तुम्हारे जैसा एक नेक इंसान मैंने अपने जीवन में नहीं देखा।

मैडम की आँखें छलकने लगीं। वह रिक्शे पर बैठ गईं। अबोलकरा बस स्टैंड गया और खुद को न संभाल पाया। आँसू की बूंदें टपक पड़ी उस नए स्वेटर के ऊपर।

– प्लाट नं.–1046/2905, शीराम नगर लेन–13, भुवनेश्वर–751002, ओड़िशा

❑❑❑

# तीर्थयात्री

**वीणापाणि महांति**
**अनुवाद : डॉ. विजय कुमार महांति**

हाथ में छड़ी लेकर अमरनाथ के लिए इतना समय एकनिष्ठ होकर भाषण सुनना संभव नहीं था।

आँखों में न सामने वाला जनसमूह। सिद्धपुरुष परमज्ञानी बाबा के भाषण के समय मानों स्वर्ग से देवता नीचे आ गए थे- बाबा का भाषण समाप्त होते ही अंतर्ध्यान हो गए। इतने लोगों का धर्मसभा में एकजुट होना अमरनाथ ने बहुत दिनों बाद देखा था।

अब काम खत्म हो गया है। संसार में जो-जो कर्तव्य करने थे, अमरनाथ ने सब किए, मगर एक धर्म कार्य को वे ठीक से नहीं कर पा रहे थे। इसलिए उनके मन में कोई अशांति न होने पर भी प्रिय, परिजन, दोस्तों के बीच इसके लिए दुख व्यक्त करना पड़ता है।

नौकरी से सेवानिवृत्त, पैतृक संपत्ति का चारों भाइयों में सम विभाजन और किसी के साथ उनका संबंध विशेष रूप से न होने पर वे धर्म पुस्तक और सभा समिति की ओर आकृष्ट होना उचित मानते थे। यहाँ तक कि उन्हें अपनी पत्नी सरोजिनी के साथ तर्क-वितर्क न करने की डॉक्टर ने कड़ी सलाह दे रखी थी। सरोजिनी अभी ब्लडप्रेशर की मरीज हैं। प्रायः बिस्तर पर ही पड़ी रहती हैं।

अमरनाथ ने पोते-पोतियों के साथ हंसी-मजाक कर जीवन बिताने की चेष्टा की थी। नहीं-ऐसा न हो सका। उनके अध्ययन की सीमा बढ़ चुकी है। पढ़ने बैठते ही ट्यूशन सर हाजिर। उसके बाद स्कूल, कॉलेज, पिकनिक, सिनेमा और यार-दोस्त। फिर समय कहाँ है?

दोस्त या प्रियजनों की संख्या उनके जीवन काल में सीमित थी। अपने जैसा दूसरा व्यक्ति उन्हें मिलना बड़ी कष्टकर कोशिश थी। इस शहर में अपनी मर्यादा और आभिजात्य की दृष्टि से वे किसी पार्टी, क्लब से संपृक्त नहीं रहे। कभी-कभार किसी विशेष उत्सव में योगदान करते और वह भी तभी संभव होता जब वे प्रधान अतिथि या सभापति बनते।

और एक दिशा उनकी संपूर्ण मुक्त है। प्रेम और दिल देने/लेने में वे हमेशा उदासीन थे। सिर्फ याद है कोरापुट में रहते समय अपने निचले कर्मचारी सुभाष की पत्नी चंदना की बात। अपूर्व सुंदरी चंदना। सुभाष के स्कूटर एक्सीडेंट में शय्याशायी होने पर अमरनाथ बाध्य होकर उसके घर गए और वहीं देखा था चंदना को। उसके बाद एक आध बार नहीं, दिन में दो बार किसी न किसी बहाने सुभाष के घर होकर आते थे। सुभाष के पास न जाकर चंदना के मुँह से उसका हालचाल पूछकर चले आते थे।

अचानक एक दिन सरोजिनी नाराज होकर बोली- तुम रोज-रोज उस क्लर्क के घर क्यों दौड़ रहे हो? तुम्हें क्या हो गया है? लोग क्या कह रहे हैं, कान में नहीं पड़ता.... छिः छिः।

बस उतना ही। आत्मसम्मान के डर से उनका दिल कंपित हो उठा था। सरोजिनी क्या उसे नौकर बनाकर अपने वश में रखना चाहती है? क्या है उसके पास रूप, शिक्षा या साधारण सौजन्यबोध? केवल झगड़ा करने के अलावा उसने सीखा ही क्या है? लेकिन अमरनाथ झूठे गुस्से का जितना भी नाटक कर सरोजिनी की भत्सना करते हुए दफ्तर जाते लेकिन वहाँ पर अपने अंदर एक टूटन-सी अनुभव करते। उसके बाद वे सुभाष के घर कभी नहीं गए।

यहाँ तक कि सुभाष के स्वस्थ होने के बाद चंदना मिठाई का पैकेट लेकर उनके घर आई थी। उस वक्त वह काम का बहाना कर घर छोड़ चले गए थे। इस तरह से संयत, डरपोक, कायर लेकिन कार्यदक्ष मनुष्य थे अमरनाथ। अपने आपको जानने पर भी अधिकांश समय वे खुद को ही अपनी बात नहीं समझा पाते।

इतनी नपी-तुली और सीमित जिंदगी में उनको क्या कमी थी जो फिर शाम को समय नष्ट कर वे भाषण सुनने आए थे। धर्म और उसकी चर्चा क्या सिर्फ बेकार, सेवानिवृत्त व्यस्क लोगों के लिए जरूरी है?

उनका कितना पाप है यदि वे नहीं जान पा रहे, तो कितना पुण्य है जानने के लिए इतना परिश्रम क्यों? शराब पीना, पैसा चोरी करना, किसी से खराब बातें कहना, परायी स्त्री की ओर नजर डालना या अपनी पत्नी की अवहेलना करना आदि काम उन्होंने कभी भी जानबूझकर नहीं किया.... छिं....छिः तब फिर क्यों वे इतने चिंतित होंगे।

तेजी से चलकर घर लौटे अमरनाथ। किसी प्रकार समय बीत गया। रात के आठ बजने जा रहे हैं.... घर पहुँचकर थोड़ा विश्राम, उसके बाद रात्रि भोजन और फिर उसके बाद वे सो जाएंगे गहरी नींद में। फिर सुबह, दोपहर, मध्यान्ह, अपरान्ह और शाम लौटकर आएगी....। उसके बाद....। क्या ऐसा ही चलता रहेगा? नहीं ऐसे में लेकिन बहुत कष्ट हो रहा है।

बड़े बेटे की बात सही है- समर्थ लोग अचानक बेकार हो जाने पर अकर्मण्य हो जाते हैं। सच, कुछ करना ही होगा। कुछ.... मतलब वे कुछ व्यवसाय कर सकते हैं या ट्यूशन कर सकते हैं या फिर कुछ और.... मान लो कि तीर्थ में भी जाकर घूम आ सकते हैं।

सरोजिनी की बात मानकर वे हर रोज बाग में बागवानी नहीं कर सकते.... हाँ, सच है रोज बाग में वे घूमघामकर फूलों का सौंदर्य उपभोग कर सकते हैं, लेकिन माली का काम नहीं कर सकते। सरोजिनी की दीक्षा से वे धर्म सभा में आए, लेकिन परिणाम क्या हुआ? यहाँ उन्हें कौन-सी नई बात सुनने को मिली या जानने को? बस किसी प्रकार वक्त काटना था। वक्त भी अपने मन मरजी कट रहा है। तो क्या है वह जिंदगी? जीने का और इस तरह रोज जीने का रहस्य।

अचानक रास्ते के बीच में खड़े होकर अमरनाथ ने लौटने के रास्ते को देखा। कितनी दूर वे आ चुके हैं.... मौत के लिए सिर्फ और कितना वक्त, कितने क्षण बाकी हैं। फिर भी....।

"कौन-कौन, जा रहा है उस रास्ते से? कोई जवाब क्यों नहीं देता?"

अमरनाथ समझ गए, उन्हें ही लक्ष्य करके यह प्रश्न किया गया है। मगर जो प्रश्न कर रहा है वह नशे में चूर है। लाचार पीछे की ओर मुड़कर देखा। अचानक मुँह से निकल पड़ा- "आनंद तू.... मतलब।"

अहो! चुप कर। तूने जाना तो सही मैं आनंद हूँ। इसमें इतना आश्चर्य होने की क्या बात है?"

"अरे!, रास्ते में शराब पीकर घूमने की आदत कब से हुई? क्या रिटायर होने के बाद?"

"पहले नौकरी के वक्त यह आदत थी। दिन में फाइल का काम करते वक्त कम से कम एक पेग नहीं पीने से मैं कलम नहीं पकड़ पाता था। लेकिन फर्क इतना ही है तेरा तो रिटायर होने से पहले ऐसे सड़क पर घूमना, या धर्मसभा समिति करने का शौक बिल्कुल नहीं था, तू कैसे जानेगा? तुझे तो सभा में देखकर मैं चौंक गया। तभी से तेरा जो पीछा करता आ रहा हूँ अब जाकर भेंट हुई।" आनंद ने इतना कहकर रूमाल निकालकर मुँह से पसीना पोंछा। आँखें लाल-लाल और मुँह थका-थका दिख रहा था। शरीर से पसीने के साथ मिली हुई इंटिमेट सेंट की महक आ रही थी।

"और सब क्या हाल है? रत्नप्रभा और बच्चे ठीक हैं न?"

"रहना चाहिए। पर कहाँ रह रहे हैं? बच्चों की चाल-ढाल सब बदल गई है, कैसे बेढंगे से हो रहे हैं। मैंने प्रभा को कितना समझाया पर क्या वह समझती है? पैदा करने वाली माताएँ तो थक गई हैं.... और यह.... इतनी सारी परंपरागत चिंताओं की पोटली।" आनंद ने मुँह में एक पान डालकर सिगरेट जलाई।

पता नहीं क्यों अमरनाथ की इच्छा हुई एक सिगरेड पीने की। पर आनंद से मांगकर पीने का साहस उनमें नहीं था। उसके मुँह से निकलने वाला धुआँ जैसे अमरनाथ की नाक में सुगंधित महक दे रहा था। नहीं! वे नहीं मांग सकते.... आनंद इस बार उसने अपनी ओर से कहा- "बिचारी को दोष देने का कोई फायदा नहीं है। सभी माँ-बाप चाहते हैं कि बच्चे उनकी बात मानें, यश ख्याति अर्जित करें।"

विरक्त होकर आनंद बोले- "लेकिन क्यो? क्या यह स्वार्थपरता नहीं है? अरे, पैदा किया है तो उनके पीछे पैसा खर्च करोगे। इसका मतलब यह नहीं कि तुम चाहोगे कि वे तुम्हारा एक-एक प्रतिरूप या नकल बनें? तुम किसकी नकल बने हो? यही तो हमारी सबसे बड़ी भूल है.... छोड़ो तुम नहीं समझ सकते। बच्चों को थोड़ी स्वतंत्रता देनी ही होगी। ऐसा न होने से समाज में तो कुछ नया काम

नहीं होगा.... जो जहाँ पर थे वहीं रहेंगे। तमाम जीवन मैंने इसके लिए संग्राम किया है ओर करता रहूँगा।

अमरनाथ समझ रहे थे कि आनंद के साथ बहस करने का कोई फायदा नहीं है। पापी, घोर पापी है वह। नहीं तो इस बुढ़ापे में पाँच-पाँच बड़े बच्चों के होते हुए भी और तुलसी के मरने के एक महीना पूरा होने से पहले ही वह रत्नप्रभा से शादी नहीं करता। और बच्चें को ऐसे बेकार की आजादी देने का तर्क नहीं करता और न ही शराब पीकर सड़क पर ऐसे घूमता। तिस पर फिर धर्मसभा गया था भाषण सुनने और इधर कितनी शराब पी है क्या पता। सब जो कह रहे थे, सच है। नौकरी करता था एक्साइज में। बहुत रखा है.... गुप्त धन, पराया धन, वह ऐसे ही तो खर्च होगा।

आनंद ने एक और सिगरेट लगाकर कहा- "अरे बाबा। चुप क्यों हो? मेरे मुँह से बदबू आ रही है क्या? तुमने तो जीवन पूरा कर लिया मगर जिंदगी का अच्छा बुरा कुछ नहीं जाना। शराब, नशा, पान, सिगरेट के पास नहीं गए। रुपए पैसे की कमी क्या नहीं जानते, सुंदरी, गुलाबी स्त्रियों के साथ बात भी नहीं करते। तुम्हारे बच्चे तुम्हारी तरह योग्य हैं, तुम्हारी संपत्ति और सम्मान समाज में अटूट है। तुम चाहोगे तो मंदिर निर्माण या पंक्ति भोजन कराकर कुछ धर्म अर्जित कर सकते हो। वास्तव में तुम्हारी चिंता ही क्या है? केवल सांध्य भ्रमण कर शारीरिक शक्ति संचय कर स्वस्थ रहना, शायद अगर रहना वास्तव में एक मात्र लक्ष्य हो सकता है।.... इसमें और कष्ट ही क्या है?"

अमरनाथ ने चकित होने की मुद्रा में पूछा- "सच बोलो आनंद। मनुष्य क्या चाहकर अमर हो सकता है? अब मौत के अलावा मेरी और कोई चिंता नहीं है। सच में जीवन कैसे आकर कैसे चला गया मुझे तो पता ही नहीं चला.... अब और कोई दुख नहीं है फिर भी....।

अधजली सिगरेट को फेंकरकर आनंद ने कहा- "फिर और क्या? मौत और समाज से डर-डरकर तेरी जिंदगी बीत गई, तू और क्या समझेगा? जीवन का अर्थ तेरे पास क्या है? कुछ निर्धारित कंठस्थ बातों के अलावा तेरे लिए दुनिया में कुछ और है क्या?"

आनंद इतने जोर से चल रहे थे कि उनके साथ-साथ चलना अमरनाथ के लिए संभव नहीं था। फिर इतने रूखे स्वर में देववाणी की तरह अनर्गल युक्ति कर रहे थे कि अमरनाथ जवाब नहीं ढूँढ़ पा रहे थे। उन्हें याद नहीं था कि वे कब अपने घर का रास्ता छोड़कर दूसरे एक रास्ते पर, बहुत ही सुनसान परिवेश में आ गए थे। असहाय होकर अमरनाथ बोले- "तू विश्वास कर या न कर आनंद, मैंने कोई पाप नहीं किया है।"

"ओ! इसलिए तो बोल रहा हूँ तू भला आदमी है। शाम को घर पर न बैठकर, इधर-उधर क्यों घूम रहा है?"

"बड़ा अकेलापन महसूस हो रहा है। सब होते हुए भी कुछ न होने की भावना मुझे चारों ओर से घेर लेती है। बस इसलिए आता हूँ। पर अफसोस! कुछ नहीं है।"

यह सुनकर आनंद ठहाका मारकर हँसने लगा। "आश्चर्य। एक के जीवन में कोई अफसोस नहीं, वेदनाबोध नहीं, यंत्रणा नहीं है। सिर्फ कुछ याद किए गए पुण्य हैं। यह कैसा जीवन है? आदमी का या जानवर का? सिर्फ सड़क के बाईं तरफ चलकर जिंदगी बिताने में कौन-सी बहादुरी है? मुझे ठीक मालूम है। इसलिए आज तुझे एकाकीपन लग रहा है। और इतनी बड़ी पृथ्वी हाथ पैर फैलाकर तेरे पास घूम रही है- रस के पात्र से चारों ओर रसमय है, मधुमय है फिर भी तू सच में क्या अमरनाथ है?"

अमरनाथ समझ नहीं पा रहे थे कि आनंद शराब पीकर ऐसा बोल रहा है या जीवन के बारे में अपनी दार्शनिकता का बखान कर रहा हैं किंतु उनकी इच्छा हो रही थी कह देने के लिए "आनंद! तुझसे मैं बहुत ज्ञानी हूँ, अनेक देश-विदेश घूम कर ज्ञान अर्जित किया है। आज रास्ते पर अचानक भेंट हो गई तो क्या तू मुझे पाठ पढ़ाएगा। मैंने जिंदगी भर किसी को दुख नहीं दिया, इसलिए तुझे आज क्यों दुख दूँगा। वरना तू और मैं तो समान नहीं हैं....।"

अब आया त्रिकोण चौराहा। अचानक अमरनाथ चौंककर बोले- "हम कितनी दूर आ गए हैं? लौटेंगे कैसे! मैं अब और थोड़ा भी नहीं चल सकता। एक रिक्शा बुलाओ।"

"तू सच में अमरनाथ, जिसे कहते हैं एक कामचोर! अच्छा ठीक है रुक, तू यहीं बैठ सामने देख रहे हो उस घर को। खिड़की से होकर रोशनी पड़ रही है देवदार के पेड़ पर.... ओ वहीं एक तरफ छोटा-सा घर। मैं वहीं से एक साइकिल लेकर आता हूँ, तुझे घर पर छोड़ आऊँगा। यहाँ पर रिक्शा-विक्शा कुछ नहीं मिलेगा....।"

अमरनाथ के जवाब का इंतजार किए बिना आनंद तेजी से चला गया जैसे कि वह उनका मालिक हो। जो हुक्म देगा वही करना पड़ेगा। युवक सुलभ चंचलता को लेकर मुँह से सीटी बजाते हुए बेशर्मों की तरह कपड़े उठाकर दौड़ रहे हैं आनंद। उसके शरीर में इतनी शक्ति कहाँ से आई?

वह हमेशा से ऐसा ही है। अगर कुछ कहेगा, तो कहता ही चला जाएगा, अगर हंसेगा, तो हंसता ही चला जाएगा, उसकी सीमा नहीं है। नौकरी कर रहा था तो किसी भी दिन उसका काम समाप्त नहीं हो रहा था, फाइलों पर फाइलें पड़ी रहती थीं। ब्रीज खेलेगा तो खेलता रहेगा, छुट्टी लेकर सिनेमा चला जाएगा चाहे तन्ख्वाह ही क्यों न कट जाए।

घर में पाँच-पाँच बच्चों को लेकर तुलसी जो कष्ट भोग रही थी उसको कभी भी उसने अनुभव करने की चेष्टा नहीं की। जहाँ जाएगा स्थान, काल, पात्र के बिना। बिना सोचे समझे हो हल्ला करना उसकी आदत है। न जाने, किस दुर्योग से आज उससे भेंट हुई। कब घर लौटेंगे सोचकर अमरनाथ चिंतित हो गए।

सरोजिनी नाराज हो गई होगी। बिस्तर पर पड़ी-पड़ी आजकल वह हर ओर से उदासीन हो गई। बहू-बेटे खाकर सो गए होंगे। केवल नौकर-चाकर इंतजार कर रहे होंगे। ज्यादा से ज्यादा सरोजिनी के आगे बैठकर एम.ए. की परीक्षा देने वाला बेटा कह रहा होगा- "माँ! पिता जी समर्थ होकर भी क्यों बेकार बैठकर बोर होते हैं। कुछ नहीं तो एक व्यवसाय ही करें। पैसा कमाना बड़ी बात नहीं है। वक्त न कटने पर उनके जैसे अनसोशिएबल लोग शायद पागल हो जाएंगे।"

सरोजिनी रोज की तरह विरक्त हुए बिना गंभीर होकर कुछ सोचती रही होगी। सच में क्या वे अनसोशिएबल हैं.... उनका कोई नहीं है?

ओ! यह पत्थर कितना ऊबड़-खाबड़ है कि इस पर बैठना मुश्किल है। रास्कल साइकिल लाने गया जो गया....। शायद उसे कुछ याद ही नहीं होगा यदि

किसी अड्डे पर बैठ गया होगा तो। अभिमान और क्रोध में चिढ़कर अमरनाथ उठ खड़े हुए। नहीं, जाना ही पड़ेगा। जाकर बाबू को याद दिलाना होगा।

जंगली पौधों से भरपूर जंगली रास्ते में पैंट जैसे पैरों में चिपक कर अटक रही है। मच्छर या न जाने क्या चुभ रहे हैं। उसी धीमी लाइट को देख देखकर ढूँढ़ते हुए जैसे-तैसे खिड़की के पास जाकर पहुँचे अमरनाथ।

पसीने से ऐनक भीग गया है। ऐनक साफ कर जब उन्होंने घर के अंदर झाँका, तब उनका सिर चकरा गया। वे चौंक पड़े। यह क्या? यह क्या देख रहे हैं वे? बिखरे हुए बालों की एक क्षीणकाय महिला का सिर धीरे-धीरे सहला कर आनंद कुछ कह रहा है। महिला की आँखों से आँसू बह रहे हैं.... कौन है वह.... जैसे कहीं देखा है? कहाँ?

दीवार पर नजर पड़ी। एक अपूर्व सुंदर स्त्री की एक तस्वीर टंगी है। कौन....कौन....ओ! यह तो वहीं चंदना है। हाँ चंदना। उनके निचले कर्मचारी सुभाष की पत्नी चंदना। होठों पर वहीं हँसी, आँखों में वही मन मोहिनी मुस्कान। मगर बिस्तर पर सोने वाली बीमार स्त्री के साथ इस तस्वीर का क्या संबंध। यह तो कभी चंदना नहीं हो सकती.... नहीं हो सकती। अमरनाथ का सिर जैसे चकरा गया। इतना रूप क्या ऐसे ही नष्ट हो सकता है....।

अचानक दरवाजा खोलने की आवाज हुई और वह पीछे बाहर आया आनंद चकित होकर अमरनाथ को देखकर पूछा- "अरे तू! भाई, थोड़ी देर हो गई। तुझे बहुत कष्ट हुआ होगा आज के लिए मुझे माफ करना।"

क्रोध और हिंसा में जलकर अमरनाथ बोले- "तू एक बहुत ही नीच आदमी है, मैं देख रहा हूँ। तुझमें साधारण ज्ञान तक नहीं है। तू मुझे वहाँ बिठाकर यहाँ इस उम्र में प्रेमलीला कर रहा है।"

आनंद हथेली के ऊपर शर्ट की बाजू खींचते हुए बोला- "प्रलाप बंद कर। यह बात फिर कही तो ठीक नहीं होगा।"

"एक बार क्या, हजार बार कहूँगा। पत्नी मर गई। पचास की उम्र में रत्नप्रभा से शादी कर ली। क्या वह तेरी राह निहारे बैठी थी? पाँच-पाँच बच्चों की जिंदगी को नहीं देखा। फिर यहाँ यह कौन-सी लीला चल रही है....छि: छि:।"

आनंद अमरनाथ का हाथ खींचकर एकदम सड़क पर ले आया फिर कहा- "अरे चुप कर! वह सुनेगी तो आत्महत्या कर लेगी।"

"कर लेना ही उचित है उसका। और उसके साथ तेरा भी।" अमरनाथ क्रोध में आग बबूला हो उठे थे। "वह तेरा नाम जानती है। सुभाष की तूने बहुत मदद की थी, यह उसे मालूम है। यहाँ तक कि तू चंदना को बार-बार देखने जाता था यह भी उसने मुझे बताया है। सिर्फ इतना ही नहीं तेरे जाने-आने और सहानुभूति दिखाने में एक ऐसा आकर्षण था कि चंदना तुझे प्यार कर बैठी थी। इस डर से शायद तूने उससे मिलना बंद कर दिया....।"

अमरनाथ की आँखों के सामने अतीत की घटनाएँ चित्र की भांति उभरने लगीं। जीवन में पहली बार माना किसी ने पुराने घाव को कुरेद डाला हो।

अचानक बच्चों की तरह रोआँसे होकर अमरनाथ बोले- "पर! तू आज वहाँ क्या कर रहा था? बता तुझसे चंदना क्या बोल रही थी। क्यों रो रही थी?"

आनंद ने धीरे से हँसकर कहा- "गलत! इसलिए तो तुझे बोल रहा था कि तूने जिंदगी की एक नपी-तुली तस्वीर देखी है। तेरी धारणा है सिर्फ....।"

अमरनाथ नाराज होकर बोले- "इतना बहाना बनाने की कोई जरूरत नहीं है। मेरी असमर्थता को पूंजी बनाना तेरे लिए काफी है, मैं सबका मंगल चाहता हूँ, किसी को हानि पहुँचाना नहीं चाहता....।"

यहाँ तक कि खुद को भी! तो सुन! हानि-लाभ का हिसाब जब हो रहा है, तब तेरे जैसे व्यापारी को यह खबर रखनी चाहिए। बिस्तर पर सोई हुई औरत चंदना नहीं है। चंदना की इकलौती बेटी अर्चना है। सुभाष और चंदना करीब दस साल पहले मर चुके हैं। लड़की की शादी करा दी थी पर.... उसका पति पागल हो गया है। अर्चना आज से चार महीने हो गए यहाँ पर है। मेरे अलावा संसार में उसका और कोई नहीं है। दुर्भाग्य उसका जितना है मेरा भी उतना ही। मेरी तन्ख्वाह के अनुसार परिवारवालों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है- जैसा पैदा करना है, वैसा ही वादा करना भी है- वादा जब किया है....।

आनंद चुप हो गए और उसके साथ अमरनाथ भी। जैसे चारों ओर कोई बड़ा हंगामा हो गया हो। रोकड़ मिलाते हैं तो सिर्फ घाटा ही घाटा है। चंदना नहीं है, सुभाष नहीं है, पति पागल। कोई देखने वाला नहीं। घर में अकेली एक बीमार

औरत मृत्यु की प्रतीक्षा में.... यह क्या.... न जाना हुआ, न समझा हुआ, उनके लिए जिंदगी के हिसाब का कागज।

आनंद ने अमरनाथ के कंधों पर हाथ रखकर कहा.... "चल मैं तुझे छोड़ आऊँगा। घर में वहाँ सब परेशान हो रहे होंगे। साइकिल नहीं हैं उसका नौकर शाम से दवा जो लाने गया है....।

"अच्छा अर्चना को क्या बीमारी है? इतना कमजोर दिख रही है वह मानो सिर्फ चंद हड्डियों का ढाँचा। क्या बीमारी है उसे?"

"वह अनेक, अनेक रोगों का संगम है। ऐसी जटिल अवस्था में पहुँच चुकी है कि सिर्फ दिन गिनने ही रह गए.... ठीक होगी कहाँ से। सब तो पैसे की व्यवस्था पर निर्भर है। और मेरा संसार और मेरी आय तुझे मालूम है।"

"कहाँ, क्या, फिर सब गड़बड़ हो रही हैं पाँव ठीक से नहीं पड़ रहे हैं। तो जीवन भर सब गलत काम करते आए हैं क्या? पूछेंगे क्या आनंद से? ईडियट से पूछकर कोई फायदा नहीं है। पर वह न होता तो अर्चना इतने दिनों तक जिंदा नहीं रहती। चंदना की गोद में उसी गोरी-गोरी नन्हीं-सी लड़की की दोनों आँखें जैसे उनके दिल के अंदर चित्रित होकर बसी हैं।

सुभाष के एक्सीडेंट के दिन चंदना ने इस लड़की को उनके पैरों पर रख दिया था। चुपचाप कुछ न बोलकर अमरनाथ ने उठा लिया था बच्ची को। याद है.... सब याद है.... अवरुद्ध झरना एक न एक दिन पर्वत की छाती चीरकर मुक्त होकर बहने ही लग जाता है। यह क्या वही क्षण है?

अमरनाथ ने कहा- "देख आनंद जितना रुपया लगेगा मैं दे दूँगा। अर्चना को लेकर दिल्ली या मुंबई या भेलोर चला जा.... रुपयों की चिंता मत करना। मैं जानता हूँ तू ही लेकर जा सकेगा। मुझसे कोई काम न हो सकेगा।"

उनकी आँखों में आँसू आ गए थे। आनंद लाइट पोल के पास एक रिक्शे को रोक कर खड़े हुए। क्योंकि क्या बोलेंगे, वे समझ नहीं पा रहे थे।

रिक्शे पर चढ़ते हुए अमरनाथ ने कहा- "मैं अकेले चला जाऊँगा। तू जा अर्चना के पास वह अकेली है। पर मुझे बता उसको लेकर तू कल जाएगा न? मेरी इतनी-सी बात रखेगा तो....?"

आनंद अमरनाथ को देख रहे थे। अभी थोड़े समय पहले का आदमी अचानक जैसे शीर्ण लग रहा है। बीमार जैसा लग रहा है। वे अच्छी तरह से जानते हैं कि उनका अपना कोई नहीं है.... यहाँ तक कि संयत, शृंखल जीवन में अमरनाथ खुद को भी अस्वीकार करते हैं। लेकिन आज.... आज तो उसने सब कुछ स्वीकार किया है। कितना असहाय, नि:संग आदमी है यह अमरनाथ!

आँखों में आँसू भरे आनंद ने कहा– "यही एक बात! आनंद के होते हुए तुझे कुछ सोचने की जरूरत नहीं है। मैं हूँ, अभी तू निश्चित होकर घर चला जा।"

– चांदमारि पड़िआ, सहदेव खुंटा, बालेश्वर–756001 (ओड़िशा)

❑❑❑

# पुस्तकें, चूहे और विष

**मुहम्मद कुलायी**
**अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ**

अब्बुब्यारी की दुकान में खेती की सभी चीजें और औज़ार जैसे सब्बल, कुदाली, हल की लकड़ी, रस्सी, कीटनाशक आदि मिलते हैं। उसकी दुकान पर ज्यादातर गाँव के किसान ही आते हैं। इतना ही नहीं, उसे गाँव के चारों ओर कीटनाशक बेचने के लिए जिस परवानगी का होना जरूरी है, इस दुकान को मिली है।

इस गाँव के बीचों-बीच जो पुरानी खपरेल की इमारत है, अब्बुब्यारी की दुकान उसी में है। अपने पिता जी की मृत्यु के बाद उस दुकान को वे ही संभालकर चला रहे हैं। खेती के काम-काज कम हो गए हैं, इसलिए पहले जो तीन नौकर वहाँ काम पर थे, अब्बुब्यारी को छोड़कर उनमें से अब एक ही लड़का बचा है। उनकी दुकान में खेती की चीजों के अलावा सुपारी, भिलावाँ, सुखाया हुआ एक पुनर्पली, जारिगे, शांति कायि, धान आदि चीजें भी मिलती थी जिन्हें खरीदकर गाँव और शहर के बीच किसान के सेतु बनकर अब्बुब्यारी सबके प्यारे बन गए थे। मगर उनकी दुकान की तमाखू सर्वाधिक लोकप्रिय थी। उनकी दुकान पर दूर-दूर के प्रदेशों से लोग आते थे और पान-सुपारी के साथ तमाखू खरीदते थे। वे लोग कई घंटों तक अब्बुब्यारी के साथ सुख-दुख की बातें किया करते थे, यह रिवाज-सी हो गई थी। इससे अब्बुब्यारी आसपास के गाँवों में परिचित थे। अब्बुब्यारी लगभग 60-65 साल के थे और धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने एक बार का भी नमाज़ नहीं छोड़ा था। उनकी दुकान जो सुबह सात बजे

खुलती थी, दोपहर के बाद वहाँ कम सौदा होता था। इसलिए वे दोपहर को दुकान बंद कर घर चले जाते थे और फिर असर नमाज अता करने के बाद आते थे। यानि 4.30 बाद ही आते थे। बाद में अपनी हम उम्र वालों के साथ बातचीत करते-करते रात हो जाती है।

उस दिन शाम को जब दुकान खुली तो कुछ देर के बाद दोस्त किणी आए और दुकान के पास जो बेंच था, उसके पास की कुर्सी पर बैठ गए। दोनों चाय पीते हुए इधर-उधर की बातें करने लगे। तभी किणी की नजर सड़क के पार जो इमली का पेड़ था, उसके नीचे पड़ी। वहाँ एक युवक पेड़ के नीचे खड़ा था और अब्बुब्यारी को ही देख रहा था। किणी ने ऐनक निकाली, उसे साफ किया और आँखों पर लगाकर बार-बार उसे ही देखा। काला रंग, चेहरे पर छोटी-छोटी दाड़ी, फीका पैंट और कुर्ता.... ऐसा लगा कि उस युवक ने उन्हें देख लिया है और वह पेड़ के पीछे सरक गया।

"अब्बु, वहाँ देखो। इमली के पेड़ के नीचे एक युवक खड़ा है। वह तुम्हें ही देख रहा है। तुम उसकी ओर एकदम मत देखो। ऐसा देखो कि उसे पता ही न चले" किणी ने कहा।

अब्बुब्यारी ने अपने गर्दन को बाएँ-दाएँ घुमाया और इमली के पेड़ के नीचे देखा। सचमुच, एक युवक दुकान को ही देख रहा है।

"नया-नया लगता है। मैंने तो इसे आज तक नहीं देखा था। वह वहाँ पर क्यों खड़ा है?" अब्बुब्यारी ने अंदेशा व्यक्त किया।

"तुम उसे ऐसे मत देखो कि वह जान सके। देखेंगे, वह क्या करता है। मुझे तो उसमें एक चोर दिखता है।"

और दोनों उसी को देखने लगे।

कुछ देर तक युवक वैसे ही खड़ा रहा। जब अंधेरा छाने लगा तो दुकान को ही देखता हुआ आगे चल पड़ा।

"पागल है क्या? देखने में तो ऐसा ही लगता है।" किणी ने अंदाजा लगाया। उस दिन जब तक दुकान बंद नहीं हुई, तब तक उनकी बातचीत के बीच उस युवक के बारे में भी बातें हुई।

दूसरे दिन अब्बुब्यारी दुकान आए और दरवाजा खोलकर अभी अपनी कुर्सी पर बैठे भी नहीं थे कि वह युवक कहीं से सीढ़ी चढ़ते आया और उनके सामने सिर झुका कर खड़ा हो गया। एक पल के लिए अब्बुब्यारी सकपका गए।

"क्या बात है?"

"चूहा मारने की दवा है?" उसने पूछा। उसकी आवाज गले से साफ-साफ नहीं आ रही थी।

"चूहा मारने की दवा! क्यों?"

"मेरे कमरे में बहुत चूहे हैं, इसलिए।"

"तुम कौन हो?" अब्बुब्यारी ने उसे देखा।

युवक के चेहरे पर हलचल थी, बात करने में डर था।

"मैं यहीं एक पत्रिका में रिपोर्टर के रूप में काम कर रहा हूँ।"

"इस गाँव के लिए नए हो?"

"जी हाँ।"

अब्बुब्यारी ने रुमाल से चेहरा पोंछा और कुर्सी पर बैठ गए। तभी न जाने कहाँ से उनकी बिल्ली झट से कूद कर आई और उनके सामने जो बेंच था, बैठ गई। युवक ने बिल्ली को ही देखा और एक कदम पीछे हट गया।

"बैठ जाओ।" अब्बुब्यारी ने सामने की कुर्सी की ओर संकेत किया।

"नहीं।"

"क्यों? बैठ जाओ।"

"बिल्ली...." उसने बिल्ली की ओर उंगली किया।

"ओह! तुम्हें बिल्ली से डर लगता है?" अब्बुब्यारी हंसे।

"जी हाँ, मुझे बिल्ली और कुत्तों से बहुत डर लगता है।"

अब्बुब्यारी ने बिल्ली को उठाया, उसके सिर पर हाथ संवारा और अपने पैरों के बीच उसे जाने दिया।

"अब बैठ जाओ।"

"नहीं, मुझे जाना है। चूहा मारने की दवा है?"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"अमजद।"

"ओह! तुम हमारी ही बिरादरी के हो, तुम्हारे शहर का नाम क्या है?"

"शिवमोग्गा।"

"कल, तुम ही इमली के पेड़ के नीचे खड़े थे?"

"जी हाँ।"

"क्यों खड़े थे?"

"आप यहाँ किसी से बातें कर रहे थे, मुझे बीच में आकर चूहा मारने की दवा के बारे में पूछने में संकोच हुआ।"

अब्बुब्यारी के मन में संदेह का एक बीज गिर पड़ा। अगर सचमुच चूहे को मारना ही है तो संकोच किस बात का होगा? यह आत्महत्या करने के लिए चूहा मारने की दवा तो नहीं पूछ रहा है? युवक की बात, उसका चाल-चलन, उसके कपड़े, उसका चेहरा इन सबको देखते हुए अब्बु को लगा कि बीज की कोंपले निकल रही हैं।

"चूहा मारने की दवा है?"

अब्बुब्यारी सोच रहे थे, फिर उसने पूछा।

"नहीं, खाली हो गई है। दो-तीन दिनों में आ जाएगी।" उनके मुँह से अपने आप झूठ निकला था।

"तो मैं दो दिन के बाद आऊँगा।" युवक सीढ़ी से उतर गया और जोर-जोर से कदम बढ़ाया। जब युवक उतर रहा था, तभी किणी आए और उसे ही देखते अब्बु ब्यारी के सामने बैठ गए।

"अब्बु, यह वही है न जो कल इमली के पेड़ के नीचे खड़ा था?"

"हाँ, यह वही है।"

"क्या तुम दोनों के बीच झगड़ा हुआ?"

"झगड़ा क्यों?"

"वह नाराज है, इस प्रकार चल पड़ा।"

"चूहा मारने की दवा पूछा। मैंने कहा कि नहीं मिलता, इसलिए...."

"चूहा मारने की दवा? उसे क्यों?"

"कहा कि उसके कमरे में बहुत चूहे हैं।" अब्बुब्यारी ने सारा मामला कह डाला।

"देखो अब्बु, एक बार तुमने एक अनजान आदमी को चूहा मारने की दवा बेच दी थी और पुलिस, कोर्ट के चक्कर में पड़ गए थे, बस यही काफी है। फिर ऐसी गलती मत करना।" पिछले दिनों एक किसान ने चूहा मारने की दवा खरीदी थी और उसे खाकर उसने आत्महत्या कर ली, यह बात किणी ने अब्बुब्यारी को याद दिलाई।

"नहीं-नहीं, क्या मैं पागल हूँ, ऐसे देने के लिए?"

"पागल नहीं तो क्यों कहा, दो दिन के बाद आने के लिए?"

"ऐसी बात नहीं है; वह दुबारा आएगा तो उसे कुछ अकल की बात कहूँ, इसलिए तो कहा।"

"अकल की बात। पहले अकल तुम्हें है क्या, उसे बताने चला।।" किणी जी को सचमुच क्रोध आया था।

"यह क्या बात हुई। उसके बारे में तुम मुझसे क्यों झगड़ा करते हो?"

अब्बुब्यारी उसे ही देखने लगे, तभी लड़का आया और चाय मेज पर रख दी। तीसरे दिन शाम के वक्त वह युवक फिर अब्बुब्यारी की दुकान के सामने खड़ा था।

"ओह अमजद। आओ, बैठो।"

"चूहा मारने की दवा आई है?" युवक ने खड़े-खड़े ही पूछा।

"उसके लिए इतनी जल्दी क्या है, बैठ जाओ।" अब्बुब्यारी ने दो चाय के लिए आदेश किया।

"नहीं, मैं चाय नहीं पीता।"

"अखबार वाले चाय नहीं पीते, यह बात मैं नहीं मानता। कॉफी चलेगी?"

उसने कोई बात नहीं की।

"एक चाय और एक कॉफी लाना। स्पेशल कॉफी लाना।" उन्होंने 'स्पेशल' पर ज़ोर दिया।

"खड़े क्यों हो, आज बिल्ली नहीं है। अकेला मैं हूँ, क्या मुझे देखकर डर लगता है?" उसने कुर्सी खींच ली और उसमें सिकुड़कर बैठ गया।

"चूहा मारने की दवा आई है?" वह जमीन देखने लगा।

"कल आना था, मगर नहीं आया। आ सकता है। दूँगा-दूँगा। कल तुमने अपने शहर का क्या नाम बताया था?"

"शिवमोग्गा।"

"घर में और कौन-कौन हैं?"

"माँ, दो बहनें।"

"पिता जी?"

"नहीं है।"

"तुम्हें ही कमाकर सबको पालना है?"

"जी हाँ। दोनों बहनें पढ़ रही हैं।"

"घर कहाँ किया है?"

"यहीं कुछ दूर आगे, दो किलोमीटर जाना पड़ता है। ग्राम पंचायत के पास।"

"किराया कितना?"

"500 रुपए। रात में एक दिया जलाकर सो जाऊँ तो चूहों की झंझट नहीं रहती।"

"क्या तुम्हें चूहों से डर लगता है?"

"डर नहीं। मेरे पास बहुत सारी किताबें हैं, चूहे उन्हें बर्बाद कर रहे हैं।"

"कौन-सी किताब?" अब्बुब्यारी ने सोचा, यह चूहा मारने की दवा के लिए झूठी कहानी गढ़ रहा है।

"पढ़ने की किताब।"

"मेरे पास जो बिल्ली है, उसे दो दिन के लिए ले जाकर अपने कमरे में छोड़ देना। वह एक चूहे को भी नहीं छोड़ेगी, ऐसी सफाई कर देगी।"

इतने में लड़का चाय और कॉफी लाया और उन्हें मेज पर रख दी।

"आज चूहा मारने की दवा आएगी?"

"नहीं आई है.... आएगी, आएगी। तुम तो इसी रास्ते से आते-जाते हो न? एक बार यहाँ आकर पूछताछ करके जाओ। आते ही दे दूँगा। पियो, कॉफी पियो।"

युवक जब कॉफी पी रहा था, तभी किणी सीढ़ी चढ़कर आए और उसके पास जो कुर्सी थी, बैठ गए। उसने जल्दी-जल्दी कॉफी पी डाली और यह कहते चला गया कि कल आऊँगा। उसने किणी की ओर देखा तक नहीं।

"एक कहावत है कि सड़क पर जाती दुर्गा को घर के अंदर लाया गया। तुम्हारी भी यही हालत हुई।"

"बात ऐसी नहीं है किणी। एक जीव की रक्षा हमसे हो जाए तो इससे बड़ा पुण्य-कार्य और क्या हो सकता है, कहो? उसकी दो बहनें और माँ है, उसी ने यह बात कही। बेचारा! अकेला ही कमाकर उनका पालन कर रहा है। ये अखबार वाले भी पैसे देंगे तो कितने देंगे? लगता है, वह बड़ी मुश्किल में है।"

"कुछ डरपोक-सा लगता है, है न? मुझे तो ऐसा ही लगता है।"

"ऐसी बातें मत करो। बेचारा, उसका चेहरा देखने पर पेट में जलन होती है।" अब्बुब्यारी ने कहा।

उस दिन के बाद वह युवक रोज शाम को जब उस रास्ते से गुजरता, रास्ते में ही रुक कर या दुकान में आकर पूछने लगा कि चूहा मारने की दवा आई है? अब्बुब्यारी उसे अंदर बुलाकर बिठाते, कॉफी पिलाते, सुख-दुख की बातें करते और कहते "बेटा, मुश्किल तो इंसान को ही आती है, पेड़ को नहीं आती, हमें तो सबका सामना धैर्य के साथ करना है। अगर तुम्हें कोई तकलीफ हो तो कह दो, उसे दूर करने की व्यवस्था करेंगे।" जब अब्बुब्यारी यह कहते, युवक सिर झुकाकर चुप रह जाता था, होंठ नहीं खोलता था। उसका तो एक ही सवाल था, "चूहा मारने की दवा आई है?"

"आएगी.... आएगी, आते ही दे दूँगा।" रोज अब्बुब्यारी का यही रेडीमेड झूठा उत्तर था।

इसी प्रकार लगभग पंद्रह दिन बीत गए। तब तक वह अब्बुब्यारी के साथ थोड़ा-सा हिलमिल गया था, उनके साथ कुछ आत्मीयता से बातें करने लगा था। अब्बुब्यारी भी उसे प्यार से देखने लगे थे। उसके बारे में बार-बार पूछते थे। विवेक की बातें कहते थे। भगवान और धर्म के बारे में उपदेश देते थे। उसे किसी भी तरह आत्महत्या से बचाना चाहिए, इसके लिए बहुत कोशिश करते थे।

अमजद रोज आता था, मगर वह उस दिन नहीं आया तो अब्बुब्यारी उसकी राह देखने लगे।

अमजद क्यों नहीं आया.... वे सोच ही रहे थे, तभी किणी सीढ़ी चढ़कर आए और उनके सामने बैठ गए।

"क्या? कल वह, नाम क्या है उसका.... हाँ, चूहा मारने की दवा.... वह आया नहीं?" किणी ने पूछा।

"नहीं। नहीं आया। मैं उसी की राह देख रहे हूँ।" अब्बुब्यारी ने सड़क की ओर देखते हुए कहा।

"कल शाम को काँख में रस्सी पकड़ कर जा रहा था। गले में फांसी लगा ली क्या?" किणी ने झट हंस दी।

"कैसी रस्सी?"

"सूत की रस्सी। थोड़ी मोटी थी। उसके लिए काफी है। कल तुम्हारी छुट्टी थी न? वह काँख में रस्सी दबाए भूत के समान जल्दी-जल्दी जा रहा था।"

"ऐसी अपशकुन की बातें मत किया करो, किणी। वह बेचारा है।"

"कहाँ का बेचारा। अगर तुम्हारी दुकान में चूहा मारने की दवा नहीं है तो उसे मरने के लिए दूसरा मार्ग नहीं है क्या? मरने वालों को पेटी में बंद कर ताला लगाया जाए तो भी उन्हें जिला नहीं सकते, यह तुम्हें मालूम है? तुम तो पागल के...."

"अब्बुब्यारी चुप रह गए। बाएँ हाथ से सिर की टोपी निकाली और दाएँ हाथ से गंजे सिर को संवारते हुए सोचने लगे।

अब्बुब्यारी ने दुकान बंद करने तक उसकी राह देखी। उस रात उन्हें नींद ही नहीं आई। सुबह जब दुकान खोली, तो सबसे पहले अखबार खोलकर देखने लगे कि कहीं आत्महत्या की खबर छपी है। मगर दिखाई नहीं दिया। उसके घर तक जाकर देखने की बात सोची, मगर उसके घर का पता मालूम नहीं था। ग्राम पंचायत की ओर से दो-चार लोग आए, उनके साथ कुछ बातें करने के बहाने अब्बुब्यारी ने परोक्ष रूप से पूछा कि आपके गाँव में कोई विशेष घटना घटी है? मगर किसी ने 'हाँ' नहीं कहा और उसका पता नहीं चला।

इसी प्रकार 2-3 दिन बीत गए। अमजद का अता-पता नहीं चला। अब्बुब्यारी पागल-से हो गए। उस दिन शाम को जब किणी आकर उनके सामने बैठ गए तो अब्बुब्यारी ने कहा, "देखो, उसका पता ही नहीं है। न जाने कहाँ चला गया...." और अपना दर्द उन्हें कह डाला।

"अब्बु, वह शायद नहीं मरा है। यहाँ से ग्राम पंचायत सिर्फ 2-3 किलोमीटर दूर पर है। अगर वह मर जाता तो खबर तो फैलती और वह भी फांसी लगाकर मरता तो हमें पता चल जाता...." किणी ने व्यंग्य से कहा।

"आँखों में खून नहीं, इस तरह की बातें मत करो किणी!" अब्बुब्यारी नाराज हुए।

"और कैसी बातें करूँ? कोई पागल आया और चूहा मारने की दवा के बारे में पूछा तो तुम इसके लिए क्यों परेशान हो रहे हो? परसों से देख रहा हूँ। आजकल तुम्हारा कुछ ज्यादा ही हो रहा है। ऐसा हुआ तो तुम्हारा क्या होगा? उसी चिंता में तुम्हें भी चूहा मारने की दवा खानी पड़ेगी, देखो।"

इतने में न जाने अमजद कहाँ था, खाँसता हुआ सीढ़ी चढ़कर आया। उसके गले में मोटा बेल्ट लपेटा हुआ था। उसे देखते ही दोनों दंग रह गए।

"चूहा मारने की दवा आई है?" उसने पूछा

"चूहा मारने की दवा देता हूँ, यह क्या हो गया तुम्हारे गले को?"

"कल इसके बारे में मैंने ही कहा था न, वही रस्सी। रस्सी पतली हो गई होगी और वह काटी होगी।" किणी ने धीरे से कहा।

अब्बुब्यारी ने किणी की ओर ऐसे देखा मानो कह रहे हो कि चुप भी हो जाओ।

"बैठ जाओ, क्या हुआ गले को?"

"यह मुझे पहले से ही था। ज्यादा देर तक बैठकर पढ़ने से या लिखने से दर्द बढ़ जाता है। एक सप्ताह से सर्दी है न, इसलिए दर्द बढ़ गया है।"

"बैठ जाओ। कहाँ गया था? 2-3 दिन हो गए, दिखा ही नहीं।"

"चूहा मारने की दवा आई है?" वह बैठते हुए पूछा।

"तीन-चार दिनों में आएगी, बिल आया है। आते ही तुरंत तुम्हें दूँगा, ठीक है न?"

अब्बुब्यारी का इतना कहना था कि वह तुरंत उठकर सर-सर करता हुआ वहाँ से चला गया।

"अब्बु, देना है तो दे दो। नहीं तो कह दो कि नहीं दूँगा। उसे झूठ कहकर क्यों सता रहे हो।" लगता था, किणी उनसे झगड़ा करने के लिए उतारू हैं।

फिर चार दिनों तक उसका अता-पता नहीं था। अब्बुब्यारी ने उसे वहाँ से गुजरते हुए भी नहीं देखा था। किणी जी को भी वह दिखाई नहीं दिया था। अब्बुब्यारी को हर समय उसका दुख भरा चेहरा दिखाई देता था। किसी भी तरह उसे सुधारना है, घर ले जाकर विवेक की चार बातें कहनी चाहिए, आर्थिक रूप से कुछ तो मदद करनी चाहिए- अब्बुब्यारी सोच ही रहे थे कि वह सीढ़ी के नीचे खड़े होकर पूछा, "काका, चूहा मारने की दवा आई है?" उसके गले में जो बेल्ट था, वैसा ही था।

"नीचे क्यों खड़े हो? ऊपर आ जाओ।" अब्बुब्यारी यकायक सावधान हो गए।

"नहीं, मुझे जाना है।"

"एक जरूरी बात तुमसे करनी है। दो-तीन मिनट के लिए ऊपर आ जाओ।"

वह ऊपर आया और उनके सामने खड़ा हो गया।

"बैठ जाओ।" अब्बुब्यारी ने उसका चेहरा देखा। उसकी आँखें और कुछ अंदर चली गई थीं। कुर्ता और पैंट में एक-दो जगहों पर सिलाई की गई थी। वह बहुत कमजोर हो गया था, उसे देखकर अब्बुब्यारी का दिल पसीज गया।

"दोपहर का खाना खाया है?"

"जी हाँ।"

"कहाँ?"

"होटल में।"

"कल दोपहर को मेरे घर में तुम्हारे लिए एक छोटी-सी दावत है। तुम्हें जरूर खाना खाने के लिए आना चाहिए।"

"खास बात क्या है?" पहली बार वह हँसा।

"खास बात तो नहीं है। एक साथ बैठकर खाना खाएंगे, बस।"

"घर कहाँ हैं?"

"कल तुम यहीं आ जाओ, साथ में जाएंगे।"

"चूहा मारने की दवा आई है?"

"कल....कल देखेंगे...."

"ठीक है, कल आऊँगा" वह चला गया। उससे परिचय हो जाने के बाद अब्बुब्यारी ने पहली बार उसके चेहरे पर मुस्कान देखी।

दूसरे दिन अब्बुब्यारी के इंतजार करने के पहले ही वह उनकी दुकान के अंदर घुसा। आज वह ढंग के कपड़े पहने था। सिर पर तेल लगाकर कंघी किया था। अब्बुब्यारी को लगा कि लड़का कुछ काला तो है, मगर सुंदर है।

दुकान बंद कर दोनों घर की ओर चल पड़े। सड़क में अब्बुब्यारी ने उसके साथ इस प्रकार से प्यार से बातें की कि वे इस युवक को बरसों से जानते हैं। उसने भी दिल खोलकर उनसे बातें की।

घर में अब्बुब्यारी ने उसका परिचय अपनी पत्नी से कराया। दोनों साथ में खाना खाने बैठ गए। अब्बुब्यारी की बीवी ने ही पास में खड़े होकर खाना परोसा। उसने पेट भर खाना खाया। अब उसकी आँखों में अपनापन कूट-कूट कर भरा था।

खाना खाने के बाद अब्बुब्यारी ने अपनी पत्नी से दो कॉफी बनाकर लाने के लिए कहा और उस युवक को अपने कमरे में ले गए।

"देखो अमजद, तुम मेरे बेटे के जैसे हो। अगर तुम्हें कुछ पैसे चाहिए या और कोई मदद चाहिए तो बोलो। मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा है, करूँगा। तुम अपनी मुश्किल के बारे में मत सोचो और दूसरी बातों के बारे में भी मत सोचो।" अब्बुब्यारी ने फिर विवेक की बातें कही। उन्होंने जो कुछ कहा, उसने गंभीरता से सुनी। उसके चेहरे पर जो धन्यता की भावना थी, अब्बुब्यारी देख रहे थे।

"अमजद, मैंने एक गलती की है। जब से तुम्हारा परिचय हुआ, तब से मैं तुमसे एक झूठ कहता आ रहा हूँ। जब भी तुमने चूहा मारने की दवा पूछी, तब से मैं कहता आ रहा हूँ कि नहीं है। मगर सच बात तो यह है कि मेरे पास चूहा मारने की दवा थी। पिछले दिनों एक घटना घटी थी.... एक अनजान आदमी

को चूहा मारने की दवा दिया था और उसने उसे खाकर आत्महत्या कर ली। उसके बाद सालों तक मुझे कोर्ट-कचहरी भटकना पड़ा और इतना ही नहीं, मेरे कारण एक इंसान के प्राण पखेरू उड़ गए। इस भय से ही मैंने तुम्हें चूहा मारने की दवा नहीं दी। देखो अमजद, हमारे यहाँ आत्महत्या महापाप है...."

अब्बुब्यारी कहते जा रहे थे। यकायक वह उठ खड़ा हो गया। उसके चेहरे से पसीना छूट रहा था। आँखें लाल-लाल होकर आग उगल रही थीं। उसने अब्बुब्यारी को ही लाल-लाल आँखों से एकटक देखा और हूंकारा, "हूँ...." और फिर घर से चला गया। अब्बुब्यारी ने उसे कई बार पुकारा, मगर वह बिना मुड़े ओझल हो गया।

उस दिन से अब्बुब्यारी का दिमाग खराब हो गया। मैंने क्या गलती की कि वह इस प्रकार क्रोध में उठकर चला गया, यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी। इसी चिंता में वे रोज शाम के वक्त उसका इंतजार करने लगे।

पंद्रह दिन बीत गए। उसका पता ही न था। उन्हें विश्वास हो गया कि अब वह नहीं आएगा। अब उसके लिए इंतजार करने का कोई मतलब नहीं हैं, उन्होंने सोचा और उसे भूल जाने की कोशिश की। फिर भी, अगर वह एक बार मिल जाए तो उससे पूछूंगा कि मैंने क्या गलती की, वे इस प्रकार सोचते और व्याकुल हो जाते थे।

उस दिन सुबह किणी हांफते हुए दुकान की सीढ़ी चढ़कर आए और कहा, "अब्बू-अब्बू, वहाँ.... वहाँ एक एक्सीडेंट हुआ है। तुम्हारा वह.... वह है न.... वही चूहा मारने की दवा वाला, वह लारी के नीचे पड़ा है। टिप्पर लारी ने मारा है, ऐसा कहते हैं। उसके नाक से खून बह रहा है। होश नहीं है। सभी कह रहे हैं कि मर गया है। लोग उसे रिक्शा में डालकर अस्पताल ले गए।"

"किणी, हम एक बार अस्पताल जाकर देखेंगे?" अब्बुब्यारी पर मानो बिजली गिरी। उन्होंने किणी के सामने गिड़गिड़ाया।

"अब्बु, यह क्यों? जाकर करेंगे भी क्या? क्या तुम मरने वालों को बचा सकते हो, तुम डॉक्टर हो, तुमने चूहा मारने की दवा नहीं दी और उसने दूसरा रास्ता ढूँढ निकाला, बस।"

"किणी, तुम पागलों के जैसे बातें मत करो। तुम अपना मुँह बंद करो, बस यही काफी है तुम्हें तो हर वक्त एक जैसा ही।" अब्बुब्यारी रिक्शा में बैठकर अस्पताल की ओर चल पड़े।

अमजद के मुँह पर जरा-सी चोट लगी थी। खतरे की बात नहीं थी। शाम होते ही होश आ गया था। अब्बुब्यारी रात तक उसके पास ही बैठे थे। फिर दूसरे दिन नाश्ता, कॉफी के साथ अस्पताल गए। उसके पास बैठ कर उसके सिर को संवारते हुए कहा, "डरो मत, मैं हूँ न। घरवालों को खबर पहुँचाना है क्या?"

उसने 'न' करते हुए सिर हिलाया।

अब्बुब्यारी ने खुद अपने हाथों से नाश्ता कराया, कॉफी पिलाई।

"दोपहर को खाना लेकर आऊँगा, डरो मत।" अब्बुब्यारी जब उठकर जाने लगे तो उसने उनका हाथ थाम लिया।

"क्या बात है?" अब्बुब्यारी ने उसे ही देखा।

"अगर चूहा मारने की दवा हो तो उसे आपके नौकर के हाथ भेजकर मेरे कमरे में रखवाइए। नहीं तो आपकी बिल्ली है न, उसे ही मेरे आने तक मेरे कमरे में छोड़ दीजिए। नहीं तो मेरी सारी किताबें बर्बाद हो जाएंगी। मैं कई सालों से उन किताबों को इकट्ठा करता आया हूँ। वे अमूल्य और अपूर्व किताबें हैं। वे किताबें ही मेरी जिंदगी है। अगर वे बर्बाद हो गई तो मैं जी नहीं सकता...." उसकी आँखें भर आई थीं। वह अब्बुब्यारी की उंगलियों को अपनी मुट्ठी में पकड़ कर गिड़गिड़ा रहा था।

अब्बुब्यारी अब शर्म से सिर झुकाए खड़े थे और उनके मुंह से शब्द ही नहीं निकल रहे थे।

– II$^{nd}$ क्रॉस, अन्नाजीरॉय लेआउट, I स्टेज, विनोबा नगर, शिमोगा-577204, कर्नाटक

❑❑❑

# समुंदर

**बी. बलरामस्वामी**
**अनुवाद : बुक्कूरू वेंकटराव**

आंधी की एरीना में योद्धा सा वायु और बारिश एक से बढ़कर एक अपनी शक्ति दिखाने लगी। समुद्र में भयंकर कोलाहल था। लहरें ऊँचे पहाड़ों सी उछलने लगी। शतृ-सा समुद्र ने सीमा को पार किया था। तट को घिसाते हुए वह अपने में पेड़, पौधे और सबको विलीन करने लगा। समुद्र ऐसा उमड़ने लगा कि उसे कलुषित करने वाला मानव का अंत चाहता हो।

मूसलाधार में भीग कर तीव्र झोंकों से लड़खड़ाते हुए दुर्गा किनारे पर उदासीन मन से खड़ी थी। काला नाग-सा फुफकारने वाला समुद्र को देखकर उसका दिल जोर से धड़कने लगा। जहाँ तक उसकी नजर गई थी वहाँ तक बीभत्स समुद्र था। उससे वह भयभीत हो गई। उसने अपने साथ लाए गए हल्दी, कुंकुम, फूल और दो आँसू के बूँद समुद्र को समर्पित किए। उग्र समुंदर से शांत होने की विनती की। मछली मारने गए अपने पति मुत्यालु और पुत्र गंगराजु को बलि पर न चढ़ने की प्रार्थना की। वहाँ से वह अपने घर लौट गई।

बरामदे में खट पर लेटे हुए समुद्रालु बहू को देखकर धीरे से उठ खड़ा हुआ। आशा भरी आवाज से पूछा, "दुर्गा, सिगार पीए दो दिन हो गए। ईर्नायुडु की दुकान जाना चाहता था लेकिन बारिश कम नहीं हुई। बाहर गई हो क्या मेरे लिए सिगार लाई?"

"किसी का घर जले, कोई तापे। मछली मारने गए पुत्र और पौत्र की कोई चिंता नहीं है, मगर सिगार की चिंता बूढ़े को" भीगे कपड़े सुखाते हुए दुर्गा अपने मामा पर लाल पीला हो गई।

"उनपर चिंता क्यों जताना है? क्या वे बिल्लियाँ हैं? बड़े शेर हैं। जंगल में आखेट शेर, समुंदर में मछली मारने वाले हम एक जैसे हैं.... जीत ही जीत.... हार की बात नहीं। ऐसे कई भयंकर तूफानों को मैंने देखा, कोई हानि हुई क्या? उनको भी न होगी। वे सचमुच सुरक्षित होंगे.... घर लोटेंगे.... दुर्गा, तुम चिंता न करो।" बहू के दिल में धीरज भरते हुए समुद्रालु ने कहा

"चिंता न करूँ तो क्या करूँ? सो जाऊँ.... यह आँधी साधारण जैसी दिख नहीं पड़ती है। कोई राक्षसी हो। समुंदर की ज्वार से मुझे भय लगने लगा।" कहते हुए वह रोने लगी।

"उन्हें कुछ हानि न होगी.... क्यों न सुनते हो? हम गंग के पुत्र हैं। माँ गंगा, हमें हानि नहीं पहुँचाती है।"

"मामा.... तेरी बात सच निकलेगी तो मैं.... गंगा माँ की दया से वे सुरक्षित लौट आएँ तो.... मैं तुझे सिगार दूँगी और गंगा मैय्या को मुर्गी अर्पित करूँगी।" साड़ी के पल्लू से आँखें पोंछकर दुर्गा ने कहा।

"ऐसा ही करो.... पहले सिगार लाओ.... मेरा मुँह...." समुद्रालु गिड़गिड़ाया।

"लाऊँगी.... बारिश कम होगी तो.... लाऊँगी।" कहकर बाहर देखा।

मूसलाधार.... हवा के तेज झोंके.... समुंदर की लगातार गर्जन ध्वनि.... कम का नाम नहीं.... और भी जोर पकड़ा।

पीढ़ा पर बैठी दुर्गा धीरज बटोरने लगी लेकिन वह अपने वश में नहीं थी। बार-बार पति और पुत्र याद आने लगे। उन्हें कुछ हानि होने की कल्पना से डरती है। गंगा मैय्या से बार-बार विनती करती है कि उनकी कृपा से वे सुरक्षित रहें।

दुर्गा का बेटा गंगराजु बहुत होनहार है। उसमें जिज्ञासा अधिक है। नई-नई चीजों का आविष्कार कर सबको आश्चर्य में डालता है। इंटर में ज्यादा अंक मिल गए। वह अपने नए विचारों को साकार करना चाहता है इसलिए इंजीनियरी पढ़ना चाहता है। बहुत कष्ट उठाकर उसने जे.ई.ई. अड्वांसड परीक्षा लिखी। अच्छा रैंक प्राप्त कर हैदराबाद के ऐ.ऐ.टी. की सीट प्राप्त की। तो निश्चित तारीख के अंदर एक लाख फीस भरनी थी। दुर्गा और उसके पति मृत्यालु को समझ में नहीं आया कि एक लाख रुपए कहाँ से लाएंगे। बैंक में और घर में ज्यादा पैसे नहीं थे कुलमिलाकर दस हजार से अधिक नहीं थे। बाकि पैसे कहाँ से लाएंगे?

गंगराजु ने कहा कि बैंक से एजुकेशन लोन लेंगे। तो आशा से वे बैंक गए लेकिन बैंक ने उनकी गरीबी पर परिहास किया। दुर्गा ने निराशा से कहा, "बेटा,

यह पढ़ाई हमारे जैसे गरीब लोगों की नहीं है.... तुम दूसरी पढ़ाई पढ़ो जिस पर ज्यादा खर्च न हो।"

तो गंगराजु ने उसकी बात नहीं मानी। "मैं इंजीनियरी की पढ़ाई पढूँगा। हमारे पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम जी ने जैसे देश की सेवा की थी वैसे मैं भी समाज की सेवा करूँगा। वे मेरे रोलमोडल हैं। मेरे जैसे उन्होंने गरीब के परिवार में जन्म लिया था। अनेक कष्टों को झेलकर आखिर वे वैज्ञानिक बन गए। अब उनपर देश गर्व करता है। कलाम जी की बहन ने उनकी पढ़ाई के लिए अपने सोने की चूड़ियाँ, जेवर आदि गिरवी रखी थी। तुम भी उसकी तरह मेरी पढ़ाई के लिए कुछ न कुछ करो। चाहे तो छुट्टियों में मैं बाप के साथ मछली मारने को जाऊँगा।" उसने मनाया।

"मेरा पोता जो पढ़ाई पढ़ना चाहता है वही पढ़ाओ। उसे इंजीनियर के रूप में देखना चाहता हूँ।" समुद्रालु ने पोते का साथ दिया।

"धन की गठरी कहीं रखी थी क्या?.... बताओ, उसे पढ़ाऊँगी।" कहकर मामा पर गुस्सा दिखाया दुर्गा ने। बाद में शांत मन से सोचा। उसने सोचा था कि हमारा जीवन तट पर पड़ी मछली जैसा है वैसा बेटे का जीवन नहीं होना चाहिए। निर्णय किया कि वह जो पढ़ना चाहेगा वही उसके अच्छे भविष्य के लिए पढ़ाऊँगी। मुत्यालु को धीरे-धीरे समझाकर मनाया। दोनों कर्ज के लिए बंगारराजु के पास गए। समस्या बताकर मांगा कि उनके खपरैल को गिरवी रखकर एक लाख रुपए दें।

बंगारराजु ने व्यंग्य हँसी हँसकर कहा, "तो मेरे बेटे की होड़ में तेरा बेटा इंजीनियर बनेगा।"

वह तो गाँव का महाजन है, बातूनी है और घमंडी है। उसके पास दस नाव हैं। उन्हें वह किराए पर देता है। मजदूरों से मछलियाँ मरवाता है। जो कर्ज चाहते हैं उन्हें देता है। पैसे का लालची है। सभी विषयों में अपना हाथ ऊपर रखना चाहता है। पूछे न पूछे सबको बताया था कि उसका बेटा इंजीनियरी पढ़ रहा है।

गप्पे मारने वाला बंगारराजु को मुत्यालु और दुर्गा पर ईर्ष्या हुई, गुस्सा आया, आक्रोष बढ़ गया। सोचा, "इस गाँव में केवल मैं ही गर्व से कह रहा था कि मेरा बेटा ही इंजीनियरी पढ़ रहा है। अगर अब इनका बेटा भी इंजीनियरी पढ़ेगा तो मेरा बड़प्पन का क्या होगा? कुछ करना होगा.... गंगराजु की इंजीनियरी की

पढ़ाई में अड़चन डालनी है। उनकी आशाओं पर पानी फेरना है। निर्णय लिया कि जितना कर्ज मांगेंगे उतना नहीं दूँगा।"

"तो.... दूँगा, क्यों नहीं दूँगा? गंगराजु के अच्छे भविष्य के लिए क्यों नहीं दूँगा?.... तो.... जितना चाहा उतना नहीं दे सकता। लेकिन तेरा घर गिरवी रखकर पचास हजार रुपए दूँगा।.... उससे अधिक नहीं दे सकता हूँ।" ठीक-ठीक कह दिया बंगारराजु ने।

"वह काफी नहीं बाबूजी, और बीस हजार अधिक दीजिए।" मुत्यालु ने गिड़गिड़ाया।

"अरे मुत्यालु.... तुम मेरे गाँववाले हो, इतना दे रहा हूँ, और कोई दूसरा होता तो नहीं देता।"

"बाबूजी.... और दस हजार ज्यादा...."

"चाहे तो मेरे घर में खाकर जाओ। मुझे परेशान मत करो।"

बंगारराजु के बारे में वे भली-भांति जानते हैं। जो कहते है उसपर टिकता है। इतना मनाने पर भी वह नहीं माना है। इसलिए वे चुपचाप दी रकम स्वीकार करते हैं। निश्चित तारीख को फीस भरनी है बाकि रकम इकट्ठा करने का प्रयास करेंगे।

निराशा में न पड़कर आशा से बढ़ने वालों का साहस देखकर बंगारराजु आश्चर्य में पड़ गया। आखिर अस्त्र के रूप में उनके दिलों में कायरता भरने को तैयार हो गया।

"घर लीपने से त्योहार होगा? एक लाख रुपए फीस भरने से तेरा बेटा इंजीनियर बनेगा? चार साल पढ़ना है.... और चार लाख खर्च होगा.... धनी होने पर भी मैं बहुत परेशान हो रहा हूँ। छटपटा रहा हूँ। खाने को रोटी नहीं तुम कैसे पढ़ाओगे? एक साल के बाद पूरब की ओर मुड़कर नमस्कार करना पड़ेगा। गाँठ में पैसा नहीं, बाँकीपुर की सैर,.... धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का,.... मेरी बात मानो, बड़े लोगों की पढ़ाई छोड़ो, गरीबों की पढ़ाई पढ़ने को तुम अपने पुत्र से कहो।"

"बाबूजी.... पढ़ाई-पढ़ाई है। उसमें अमीरों और गरीबों की अलग-अलग पढ़ाई होती है क्या?" दुर्गा ने भोलेपन से पूछा

"है.... इंजीनियर, डॉक्टर, कलक्टर, वकील आदि की पढ़ाई पढ़ने के लिए पैसे पानी की तरह खर्च करना पड़ेगा।..... वे सब हमारे जैसे अमीरों के लिए. ... चपरासी जैसी नौकरियाँ पाने की पढ़ाई अलग है। उसका खर्च ज्यादा नहीं होता है.... तेरे जैसे गरीबों के लिए है।"

"यह कैसा न्याय है बाबू जी?.... क्या डॉक्टर, इंजीनियर, कलक्टर, वकील, अमीरों के हैं?.... हमारे जैसे गरीबों के नहीं हैं? फीस को देखते ही गरीब डरता है और पढ़ने का शौक नहीं दिखाता है, क्या इसी उद्देश्य से फीस इतना बढ़ा दिया? गरीबों के वोटों से नेता बन गए, गरीबों के परिश्रम से सुख भोगने वाले अधिकारी, गरीबों को इस तरह दबाना ठीक है क्या....? गरीब के घर जन्म लेना पाप है क्या? वांछित पढ़ाई पढ़ने का हक नहीं है क्या? पैसे नहीं तो होशियार पढ़ाई का योग्य नहीं होगा क्या? यह कौन-सा न्याय है?" क्रोध से दुर्गा ने पूछा।

"हमारे गंगाराजु सरकार की पाठशाला में पहली कक्षा से लेकर इंटर कक्षा तक मुफ्त में पढ़ा था। खुशी हुई सोचा था कि सरकार गरीबों के पक्ष में है। इतने में, इस इंजीनियरी की फीस देखते ही हताश हो गए। ऐसा लगा कि किसी ने गुबारे से हवा निकाली हो। किसी ने भोजन मुफ्त में परोसकर आखिर दही का दाम वसूल लिया हो।" कहकर दीर्घ सांस ली मुत्यालु ने।

"क्या करें.... आजकल पढ़ाई जुआ का खेल-सा हो गया है। हमारे जैसे अमीर पढ़ने लायक पढ़ाई हो गई.... इसलिए" बंगारराजु की बातें बीच में काटकर मुत्यालु ने गुस्से से कहा।

"तो हमारे गंगराजु को इंजीनियरी नहीं पढ़नी चाहिए। गरीब को गरीब-सा रहना पड़ेगा। यही आप चाहते हैं क्या? आप का दर्द है कि अगर गरीब पढ़ेगा तो अमीरों की चाकरी कौन करेगा? देखो बाबूजी.... समुंदर की कसम खाकर कह रहा हूँ, मेरे बेटे को चपरासी नहीं बनाऊँगा। आपके बेटे के जैसे उसे इंजीनियरी पढ़ाऊँगा। उसकी इच्छा पूरी करूँगा। मैं बात का धनी बनूँगा। अब आप पचास हजार रुपए देने का वादा निभाइए।"

"क्या चुनौती दे रहे हो?.... ठीक है.... मैं अपना वादा निभाऊँग। यह भी देखूँगा कि तुम किस तरह अपनी बात निभाओगे?" जलते हुए अहंकार से कहा बंगारराजु ने।

झट से मुत्यालु दुर्गा को लेकर घर चला गया। मन में कसम खाई कि किसी न किसी तरह बेटे को पढ़ाना है। बंगाराजु का गर्व चूर-चूर करने का दृढ़ संकल्प किया। बाकि पैसे कैसे इकट्ठे करूँ? सर पकड़कर बैठ गया।

गंगराजु ने बंगाराजु की नाव को किराए पर लेकर मछली मारने की बात कही। उसका विचार अच्छा लगा तो मुत्यालु ने मान लिया।

मछली मारने गए तो लाभ हुआ। खर्च छोड़े तो दस हजार बचत हुई। बंगाराजु के मजदूर थे, अब किराएदार बनकर खुद मछली मारने गए थे। उन्हें बेहतर खुशी हुई। फीस भरने को और दस दिन बाकी हैं। इसलिए और दो-तीन बार मछली मारने की उम्मीद हुई।

जब मछली मारने को तैयार थे तब तूफान आने की खबर मिली। तो समुद्र में न जाने को दुर्गा ने कहा था। उसकी बात न मानकर मछली मारने गए।

बाद में तूफान तेज हो गया। समुंदर में उपद्रव मच गया। दुर्गा शोक-समुंदर में डूब गई। समुद्रालु को बहू को सांत्वना देने में बहुत परेशानी उठानी पड़ी।

तूफान तट को पार कर गया। बारिश बिल्कुल नहीं थी। समुंद्र पीछे हट गया। पूरब में नया सूरज उगा।

घाट मछुवारों के परिवारों से भर गया। उनके चेहरे व्यथा से भरे हैं। तुफान की वार्ता न जानकर और जानकर कुछ लोग मछली मारने गए थे। अब तक कोई वापस नहीं आया था। इसलिए सभी समुद्र की ओर आशा भरी आँखों से देखने लगे। गंगा मैय्या और समुद्र से वे प्रार्थना करने लगे कि वे खैरियत से लौट जाएँ।

घाट से कुछ दूरी पर दो शव आने की खबर क्षण भर में फैल गई। लोग छाती पीटते हुए उस और दौड़ पड़े। दुर्गा भी रोते हुए दौड़ पड़ी। दौड़ते-दौड़ते थक कर रेत में धड़ाम से गिर गई। किसी ने कहा कि सब पड़ोस के गाँव के हैं। यह सुनकर दीर्घ सांस लिया दुर्गा ने। फिर घाट की ओर लौट गई।

इतने में एक नाव तट पर आई। दुर्गा आशा से वहाँ गई। लेकिन निराशा हुई।

"ओ किशन मामा.... हमारे लोग दिखाई दिए क्या?" बेचैनी से पूछा।

"नहीं.... हम ही जान हथेली में रखकर आए। इस तूफान में बचकर आने वाला सचमुच मृत्युंजय ही है।" उसकी बात सुनकर दुर्गा रो पड़ी।

मध्याह्न हुआ। किसी के तीन मृत शरीर घाट की ओर आ गए। भीड़ में शोरगुल मच गया। दुर्गा का दिल धड़कने लगा। समुद्रालु बेचैन हो गया। मन में कोई अपशकुन का शक उठा।

ऊपर नीलाकाश, नीचे नीला समुंदर, हवा कोई अनोखा शब्द करते हुए जोर से बहने लगी। लहरें उठकर गिरने लगी। मछलियाँ इधर-उधर छलांग मारने लगी। समुंदर के बकुले अपनी चोंचों से मछलियों को पकड़ने लगे, अलग-अलग झुंड बनकर आसमान में उड़ने लगे।

उस विशाल समुंद्र में एक छोटी नाव थी। वह तीन मील दूर पर रहे घाट की ओर जाने लगी। डीजल न होने की वजह से इंजन बंद हो गया। मुत्यालु और गंगराजु डांड चलाते थक गए। कमजोरी से वे धीरे-धीरे डांड चलाने लगे। नाव घाट की तरफ धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

मुत्यालु और गंगराजु पूरी तरह थक गए। तूफान से लड़ते-लड़ते कमजोर हो गए। मुत्यालु का अनुभव.... गंगराजु के साहस.... के कारण भयंकर तूफान में नाव उलट नहीं सकी। उनकी जान बच गई। मगर सारे जाल समुंदर में गिर गए। उनकी आशाएँ टूट गई।

मुत्यालु ने डांड चलाते हुए बेटे की ओर दयनीय दृष्टि से देखा। कौरव और पांडवों-सा गुरुकुल में विद्या सीखने का अवसर न मिलने पर व्यथा भरित मुख से एकलव्य जैसा था वैसा वह था। दुख उमड़ पड़ा। "युग बीत गए, पीढ़ियाँ चली गई लेकिन वक्त नहीं बदला। तब हो या अब हो, पढ़ाई और अधिकार अमीरों के हैं। मांड और आँसू गरीबों के हैं।" सोचकर लाचार हो गया मुत्यालु।

उसे कानून बनाने वाले शासकों पर गुस्सा आया। बंगारराजु के अहंकार पर भी क्रोध आया उसे अपनी मजबूरी पर विरक्ति लगी।

इस संसार में मानव को जन्म नहीं लेना चाहिए। चाहे जन्म लें तो गरीब के घर जन्म नहीं लेना चाहिए? जन्म लें तो ऊँची शिक्षाओं पर आशा नहीं रखनी चाहिए? गरीब को अमीरों की झूठी चाटकर जीना है क्या?.... उन के यहाँ चपरासी का काम करने के लिए पढ़ना चाहिए.... उससे ऊँची शिक्षा नहीं पढ़नी चाहिए। ऊँची शिक्षा की फीस बढ़ाते हैं ताकि गरीब न पढ़ सके। यही उनका उद्देश्य है। गरीब कैसे फीस भरेगा? हमारे गंगराजु ने इस फीस को न भर सकने

वाले मछुवारों के घर में जन्म लिया। उसकी वांछित शिक्षा न पढ़ाने वालों के घर में जन्म लिया। ऐसे जन्म लेने वालों में अब वह, कल उसके बच्चे, उन बच्चों के बच्चे.... कोई अपनी वांछित पढ़ाई न पढ़ सकेगा। उन सबको गरीबी का जीवन बिताना पड़ेगा। मछली मारकर जीना पड़ेगा। ऐसा नहीं होना चाहिए, गंगराजु को उसकी वांछित शिक्षा पढ़नी चाहिए.... गरीब को अमीर बनना है.... उसकी उन्नति के लिए मुझे कुछ करना पड़ेगा.... क्या करूँ? मुत्यालु गहरी चिंता में पड़ गया और अपनी मंद बुद्धि को कोसने लगा।

इतने में गंगराजु ने प्लास्टिक कवर में रखा हुआ रेडियो को निकालकर ऑन किया। आकाशवाणी में वार्ताओं का प्रसार होने लगा।

"....तूफान में चल बसे मछुवारों के प्रति मुख्यमंत्री ने अपनी प्रगाढ़ सहानुभूति प्रकट की। जल्दी ही उनके परिवारों को पाँच लाख रुपए अनुग्रह भुगतान देने का ऐलान किया।"

मुत्यालु ने यह वार्ता सुनी। तुरंत उसके दिमाग में विचार उठा। वही दिमाग को खुदेरने लगा।

तुफान में मरने वालों को पाँच लाख मिलेंगे। इस संसार में जीने वाले का मूल्य शून्य है, मरने वाले का मूल्य पाँच लाख है।" हँस लिया।

अगर हम घाट पहुँचेंगे तो नुक्सान के गुणांक डराएंगे। यदि मेरा शव तट पहुँचेगा तो गंगराजु के हाथ में पाँच लाख रुपए आएंगे। वे रुपए उसकी पढ़ाई के लिए काफी होंगे। उसकी आशा पूरी होगी। वह इंजीनियर बनेगा। गरीब अमीर बनेगा। वह जीतेगा। हर कहानी में गरीब पराजित होता है, अमीर जीतता है। इस कहानी में ऐसा नहीं होना चाहिए। गरीब को जीतना पड़ेगा।.... बंगारराजु जैसे लोगों का घमंड चूर-चूर होना है। अगर ऐसा होना चाहिए तो मेरी जान समुंदर में गंवाना चाहिए।....

दृढ़ निश्चय कर मुत्यालू ने बेटे की ओर अंतिम बार देखा। वह उदासीन मन से डांड लगाते चिंता में पड़ गया।

"अरे गंगराजु उदास मत हो जाओ।.... बुझने वाली तेरी पढ़ाई के दिए में मेरी जान का तेल डालूँगा। तुम जलकर संसार को रोशनी दो.... संसार को बताओ कि विद्या से वित्त को नहीं जोड़ना चाहिए। बताओ कि गरीब-गरीब नहीं अमीर भी बनेगा।" सोचते हुए समुंदर की ओर देखता है।

"हे समुंदर.... बारिश देते हो, ठंडी हवा देते हो, कई लोगों को जीविका देते हो, ऐसा, तेरी गोद में मुझे मरने की जगह दो.... हमारे गंगराजु को उसकी वांछित पढ़ाई दो...." सोचते हुए लुंगी पैरों पर लगाकर कूदने को तैयार हो गया।

इतने में कोई शब्द सुनकर चौंक पड़ा और पीछे मुड़कर मृत्यालु ने देखा। गंगराजु समुंदर में कूद कर तैरते हुए आगे बढ़ने लगा। मुत्यालु को समझ में नहीं आया कि बेटा समुंदर में क्या कूद पड़ा, खुदकुशी की चेष्टा छोड़कर उस ओर देखने लगा।

थोड़े वक्त के बाद फिर गंगराजु नाव पर आ गया। उसके हाथ में एक पक्षी आराम करने लगी। गंगराजु हँसकर, "अपने झुंड के साथ कहीं से, कब से उड़ती हुई आ रही थी.... यहाँ आते ही थक गई, उड़ न सकी, मृत्यु को चाहकर समुंदर में गिर गई, यह मेरी नजरों में पड़ी। लड़ना है.... थक गया, कष्ट सर पर टूट पड़ा आदि को दृष्टि में रखकर जीवन को समाप्त करना गलत है न बाबा। आज का दिन हमारा नहीं है तो कल का दिन हमारा नहीं होगा क्या?.... हमें वक्त के लिए इंतजार करना है। थकने पर भी, आर्थिक संकट टूट पड़ने पर भी.... परवाह न करके आगे बढ़ना है। हे बाबा,.... मेरी पढ़ाई की चिंता न करो। यह साल नहीं तो, अगले साल पढ़ूँगा। इंजीनियर बनूँगा।" पक्षी को प्रेम से संवारते हुए.... बाबा की ओर पीड़ा से देखते हुए कहा।

गंगराजु मुत्यालु को ऐसा दिख पड़ा कि अर्जुन को गीताउपदेश देने वाला श्री कृष्ण हो। बेटे के आत्मविश्वास को देखकर खुश हुए "बहुत अच्छी तरह बताया.... मेरी आँखें खुल गई। तुम को जिताने के लिए मैं खुदकुशी करना चाहता था। उस जीत में कोई मजा नहीं होता है, जान गया कि लड़कर जीतने में मजा है। वैसा ही जीतेंगे।" कहते हुए पक्षी को प्रेम से अपने हाथ में लिया।

उनकी बातों से समुंदर को गुदगुदी लगी। उसने लहरों के तट तक जल्दी पहुँचाने का आदेश दिया। आज्ञापालन करने वाली लहरें.... व्यथा भरित चेहरों से इंतजार करने वाले दुर्गा और समुद्रालु तक नाव को पहुँचाने के काम में लग गई। अस्तु।

– 29-31-6, गोल्ललपालेम, विशाखापट्टनम्-530020

❑❑❑

# फरीद चा

**डॉ. पंकज साहा**

फरीद चा को मैं कभी समझ नहीं पाया। पिता जी के बचपन के मित्र थे। बाद में दोनों एक साथ कस्बे के रजिस्ट्री ऑफिस में एक्सट्रा क्लर्क, फिर क्लर्क बने। मेरे घर उनका आना-जाना था। एकदम बचपन की बातें मुझे याद नहीं; पर जब से होश संभाला उन्हें सफेद कुरता-पाजामा में ही देखा। पाजामा घुटने से चार इंच ऊपर। लंबा-चौड़ा-तगड़ा शरीर। मौलानाओं जैसी दाढ़ी। काले घने बाल। मुझे देखते ही गोद में उठा लेते। कुरते की जेब से एक लेमनचूस निकाल कर देते। लेमनचूस से ज्यादा आनंद मुझे उनकी दाढ़ियों से खेलने में आता था। वे बुरा नहीं मानते। कोई मुझे टोकता तो वे हँस देते। कोयले के समान काले चेहरे के मध्य उनकी सफेद दंत पंक्तियाँ चमक उठतीं।

मेरी माँ फरीद चा से परदे की आड़ में ही बातें करती थीं, पर मेरी दादी उनके आते ही दौड़कर बैठकखाने में पहुँच जातीं और घंटों दुनिया जहान की बातें करतीं। फरीद चा अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। अपने धर्म से उन्हें अगाध प्रेम था, पर दूसरे धर्मों का वे आदर भी करते थे। कभी-कभी तो हिंदू धर्म के किसी मामले में अगुआ की भूमिका भी निभाते थे। हमारे कसबे से लगभग आठ मील दक्षिण-पूर्व कोयलाबाजार में उनका गाँव था। वहाँ पच्चीस-तीस मुस्लिमों एवं पाँच-छह गरीब हिंदुओं के घर थे। एक मस्जिद वहाँ थी, पर कोई मंदिर न था। हिंदुओं में इतना सामर्थ्य न था कि अपने खर्चे से वे एक मंदिर का निर्माण करवा सकें। फरीद चा को हिंदुओं की भावना का पता चला तो उन्होंने सारे गाँव

वालों से चंदा एकत्र कर न केवल मंदिर का निर्माण करवाया, बल्कि अपने खर्चे से तीन दिनों तक कीर्तन एवं भोजन का प्रबंध भी करवाया।

मेरे पिताजी फरीद चा की तरह धार्मिक प्रवृत्ति के न थे। ईद में या किसी आयोजन में फरीद चा के घर दावत का आनंद लेने में उन्हें परहेज न था। ऐसे ही एक दावत में पिता जी मुझे भी अपने साथ ले गए।

कोयलाबाजार मोड़ तक तांगे की सवारी उसके बाद लगभग एक मील पैदल या साइकिल पर चलकर उनके गाँव जाया जा सकता था। हम लोग तांगे से मोड़ पर उतरे। वहाँ फरीद चा दो साइकिलें लेकर खड़े थे। एक साइकिल उनका भतीजा लेकर आया था। पिता जी ने एक साइकिल संभाली। उनका भतीजा पीछे कैरियर पर बैठा। मैं फरीद चा की साइकिल पर आगे बैठा। कच्ची सड़क पर लड़खड़ाती हुई साइकिलें चल पड़ीं। दोनों ओर गेहूँ की पकी लहलहाती फसलें। कहीं-कहीं सरसों। फरीद चा की साइकिल आगे थी। उन्होंने दूर एक धब्बानुमा आकृति की ओर संकेत करते हुए कहा, "वह है हमारा कोयलाबाजार गाँव।"

मैंने बाल-सुलभ कौतूहल से पूछा, "चाचा क्या वहाँ कोयले का बाजार है?"

फरीद चा हँसकर बोले, "नहीं वहाँ तो कोयले की एक भी दुकान नहीं है। कोयला तो हमें शंकरपुर से ही लाना पड़ता है।"

"तब इस गाँव को कोयलाबाजार क्यों कहते हैं?"

"पता नहीं, मैंने जब से होश संभाला, कोयले का कोई कारोबार यहाँ नहीं देखा न अपने बुजुर्गों से इस बारे में कुछ सुना। हाँ, यहाँ की अमराइयों में कोयलें खूब कूकती हैं। हो सकता है इसी कारण किसी ने इसका नाम कोयल बाजार रखा हो जो बाद में बिगड़कर कोयलाबाजार हो गया हो।"

मेरे बाल-मन में कुछ समाया, कुछ नहीं समाया। पर उस समय मेरा मन फूला न समाया जब गाँव को चारों ओर से घेरे हुए आम के बागीचे में हमने प्रवेश किया। आम में मंजर आ गए थे। मंजर की खुशबू मदहोश कर रही थी और कोयलें कूक-कूक कर मानों हमारी अगवानी कर रही थीं।

गाँव के लगभग सारे घर कच्चे थे। गोबर और मिट्टी से पुती हुई दीवारों पर खपरैल की छत। प्रायः प्रत्येक घर के बाहर मुर्गियाँ विचरती हुई। किसी-किसी के दरवाजे के बाहर गाय-बैल बंधे दिखे। घर के बाहर ही नाद और नाद में गाय-बैलों को सानी-पानी कराते कुछ लोग।

फरीद चा का घर अपेक्षाकृत बड़ा था। अंदर बड़ा आंगन। आंगन में कुआँ। एक ओर खपरैल के छाजन में कुछ गाय-बैल-बकरियाँ बंधी हुई। मुर्गे-मुर्गियाँ आंगन में, छाजन में, कमरों में निर्बाध आ-जा रहीं थीं। कभी-कभी वे इस प्रकार उधम मचातीं जैसे बच्चे ननिहाल में उधम मचाते हैं।

पिता जी फरीद चा के साथ बाहर बरामदे में बैठे, परंतु मुझे फरीद चा की बेटी सलमा हाथ पकड़कर अंदर ले गई। सलमा की अम्मी ने मुझे इस प्रकार अपने आंचल में छुपा लिया जैसे मैं उनका कोई बिछुड़ा हुआ बेटा हूँ। सलमा मुझसे चार साल बड़ी थी, पर उसने मुझे अपना दोस्त बना लिया और मैंने उसे दीदी मान लिया। वह मुझे मकान के पीछे अमराई में ले गई जहाँ एक पेड़ की डाल पर झूला लगा हुआ था। उस दिन जैसी मस्ती मैंने अपने जीवन में कभी नहीं की।

कोयला बाजार के पास के गाँव के मिडिल स्कूल से सातवीं कक्षा पास करने के बाद सलमा आपा का एडमिशन हमारे कसबे के हाईस्कूल में हो गया। बेटी की शिक्षा के लिए फरीद चा ने कस्बे में गंगा किनारे एक मकान बनवा लिया। मेरा अधिकांश समय उनके मकान में सलमा आपा के साथ खेलने-कूदने में बीतने लगा।

उत्तर की ओर कल-कल करती गंगा नदी और दक्षिण की ओर पहाड़ियों से घिरे बीस-पच्चीस हजार की आबादी वाले हमारे कसबे शंकरपुर ने तब न तो गाँव का अनगढ़पन उतारा था न शहर की आधुनिकता ही ओढ़ी थी। हिंदू एवं मुस्लिम आबादी का अनुपात साठ एवं चालीस प्रतिशत का था। कसबे के प्रत्येक मोहल्ले में सदियों से हिंदू-मुस्लिम एक साथ रहते आए हैं। कहीं-कहीं तो दोनों के घरों के बीच की दीवार एक ही है। देश के किसी भी कोने में हिंदू-मुस्लिम दंगे होते तो भी हमारा कसबा बिल्कुल शांत रहता।

होली में मुस्लिमों की एवं ईद में हिंदुओं की शिरकत आम बात थी। होली में अगजा जलाने के लिए हम लोग रात में लकड़ियाँ चुराकर लाते थे। दोनों समुदायों के लोगों को दूसरे दिन सुबह पता चलता था कि किसी की बाँस की टट्टी, किसी की पुरानी खाट, किसी की टूटी चारपाई, किसी के घर में रखा लकड़ी का कुंदा गायब है। सबों को पता होता कि वे कहाँ गए होंगे, पर कोई कुछ कहता न था। कुछ लोग तो हँसते भी थे। कुछ मुस्लिम तो अपने घर में रखी लकड़ी स्वतः दे देते थे।

कुछ वाकये मुझे विशेष तौर पर याद हैं, जिन्हें बताने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। कसबे में फरीद चा के चचेरे भाई की जूते की दुकान थी। उनका बेटा नजीर फिल्मी हीरो की तरह खूबसूरत था। काफी फैशनबाज। अपनी खूबसूरती के कारण वह शंकरपुर का प्रिंस कहलाता था। परंतु विधि का विधान भी विचित्र था। नजीर के अब्बा ठीक उससे उलट थे। काला-कलूटा, मरियल, पिचके गालों वाला। शरारती बच्चे नजीर को देखकर कहते "बाप छछूंदर, बेटा धरमेंदर।" नजीर चिढ़ जाता और गालियाँ बकता हुआ मारने को दौड़ता। चिढ़ाने से पहले ही बच्चे भागने की पोजीशन ले लेते थे। पर कभी-कभी को पकड़ में आ जाता था, तो वह बहुत पिटाई करता। जिस बच्चे की पिटाई होती थी उसके घर वालों को अगर पता चल जाता था, तो उसकी दोबारा पिटाई होती, सो मार खाने की शिकायत कोई अपने घर में करता ही नहीं था।

मेरी भी बहुत इच्छा थी उसे चिढ़ाने की, पर साहस नहीं होता था। फरीद चा के घर आने-जाने के कारण नजीर मुझे अच्छी तरह जानता था। मैं उन्हें नजीर भैया कहता था। एक दिन चार-पाँच लड़कों के साथ मैं स्कूल से घर लौट रहा था। नजीर भैया एक सैलून में बाल कटवा रहे थे। हमने उनको देखा। आँखों-ही-आँखों में इशारे हुए और हम 'मत चूको चौहान' की स्थिति में आ गए। हमने एक स्वर में "बाप छछूंदर, बेटा धरमेंदर" कहा और देखते-ही-देखते वहाँ से छू-मंतर।

नजीर भैया को मुझसे यह उम्मीद नहीं थी। वे सीधे मेरे घर आए। मेरे तो प्राण ही सूख गए। मेरी शिकायत होगी और मुझे मार पड़ेगी, इसमें कोई शक नहीं

था। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "तुमने आज जो हरकत की उसकी शिकायत तुम्हारे पिता जी से नहीं करूँगा, पर सलमा को सब बता दूँगा।"

मैंने डबडबाई आँखों से कहा, "आप बेशक चार-पाँच झापड़ मार लीजिए, मेरे पिता जी से शिकायत कर दीजिए, पर भगवान के लिए सलमा आपा को कुछ मत कहिएगा।"

उन्होंने कहा, "तो वादा करो ऐसी गंदी हरकत कभी नहीं करोगे।" मैंने वादा किया और निभाया भी। बाद में उसी नजीर भैया से सलमा आपा की शादी हुई और वह उनके साथ कानपुर चली गई जहाँ नजीर भैया का एक जूते की फैक्ट्री में नौकरी मिल गई थी।

दूसरा वाकया आपातकाल के समय का है। तब मैं कक्षा आठ में पढ़ता था। बड़े-बूढ़ों से सुनने को मिलता था कि लोकतंत्र की हत्या हो गई, अभिव्यक्ति की आजादी छिन गई, पर कुछ समझ में नहीं आता था। पुलिस की जीप में लाउडस्पीकर लगाकर रोज लगातार घोषणा की जाती थी कि धारा 144 लागू है। लोग चार-पाँच के झुंड में न चलें, कोई अस्त्र-शस्त्र लेकर न चलें इत्यादि। पुलिस का ऐसा आतंक था कि हम लोग स्कूल जाना-आना भी झुंड में नहीं करते थे। घर के बाहर हमारा खेलना भी बंद कर दिया गया था। पुराने दबे मामले खोले जा रहे थे और रोज कसबे के कुछ लोग गिरफ्तार हो रहे थे। अनेक विरोधी नेता गिरफ्तार हो चुके थे, अनेक अंडरग्राउंड हो चुके थे।

उन दिनों फरीद चा बहुत डरे-सहमे रहते थे। उनके गाँव कोयलाबाजार के दक्षिण-पूर्व में एक झील है। यहाँ हर साल अप्रवासी पक्षियों के झुंड-के-झुंड आते हैं। फरीद चा को काज, लालशर जैसी पक्षियों के माँस बहुत पसंद थे। अपनी दोनाली बंदूक से वे अक्सर उन पक्षियों का शिकार करते। बाद में शिकार पर प्रतिबंध लग गया, परंतु फरीद चा की स्थिति "मुँह जब लागै तब नहिं छूटै' वाली थी। चोरी-चोरी, चुपके-चुपके शिकार कर ही लेते थे। एक बार रंगे हाथों पकड़े गए। उन पर मुकदमा दायर हो गया। रुपए-पैसे, पैरवी के बल पर केस दबा दिया गया। आपातकाल में जब पुराने केस खुलने लगे तो फरीद चा के अंदर डर समा गया कि कहीं उनका दबा केस खुल न जाए और पुलिस उन्हें गिरफ्तार न कर ले।

फरीद चा का एक चचेरा भाई पुरीद कलकत्ते में कुछ काम करता था। वह अपने गाँव लौट रहा था। शंकरपुर स्टेशन में ट्रेन रात के बारह बजे पहुँची। आपातकाल की वजह से स्टेशन में लगभग सन्नाटा था। कोयलाबाजार मोड़ तक जाने के लिए पहले एक-दो तांगे सवारी की प्रतिक्षा में मिल जाते थे, पर उस दिन एक भी तांगा नहीं था। जाड़े की ठंडी रात स्टेशन में बिताने के बजाए उसने फरीद चा के घर में आश्रय लेना उचित समझा। उसने फरीद चा के दरवाजे पर दस्तक दी। अंदर से फरीद चा ने पूछा, "कौन?"

बाहर से आवाज आई, "पुरीद।" फरीद चा ने सुना 'पुलिस'। फिर क्या था लुंगी पहने ही वे पिछवाड़े की ओर भागे। चारदीवारी फाँदने के क्रम में लुंगी के कारण लटपटा गए और धड़ाम से पीछे की ओर एक गड्ढ़े में गिर गए। उनके एक हाथ और एक पैर की हड्डी टूट गई। उन्हें तुरंत अस्पताल पहुँचाया गया। पता नहीं उस घटना को किसने लीक किया, पर दूसरे दिन सुबह दस-ग्यारह बजते-न-बजते सारा कसबा जान गया कि फरीद खाँ पुलिस के डर से भागते हुए हाथ-पैर तुड़वा बैठे हैं। उन्हें देखने के लिए अस्पताल में भीड़ उमड़ पड़ी। मैं भी पिता जी के साथ गया। उनकी हालत देखकर मुझे दया भी आई, हँसी भी आई। जेनरल वार्ड के एक बेड पर लेटे हुए वे मुझे दुनिया के सबसे दयनीय इंसान दिखे। उनके बाएं पैर एवं हाथ में प्लास्टर चढ़ा हुआ था। पैर और हाथ दोनों विपरीत दिशा में लगभग तीस डिग्री के कोण में रस्सियों के सहारे टंगे हुए थे। मुझे पुलिस के डर से उनके भागने की बात पर खूब हँसी आ रही थी। किसी तरह मुँह दबाकर बाहर निकला, फिर जोर-जोर से हँसने लगा। जिसने मुझे देखा, पागल समझा।

हमारे कसबे की जीवन-नैया इसी तरह मंथर गति से हँसी-गमी में चल रही थी। मैट्रिक पास करने के बाद पास के शहर से मैंने बी.ए. भी कर लिया। नौकरी के लिए संघर्ष कर ही रहा था कि पिता जी की हृदयाघात से मृत्यु हो गई। फरीद चा के प्रयासों से ही अनुकंपा के आधार पर मुझे पिता जी वाली नौकरी मिल गई। मेरा पूरा परिवार फरीद चा का मुरीद हो गया।

1990 तक हमारे कसबे ने कोई उल्लेखनीय करवट नहीं ली। 1990 के बाद भूमंडलीकरण एवं विश्वबाजारवाद का प्रभाव कसबे पर भी पड़ा। कसबे

पर आधुनिकता का रंग इस प्रकार चढ़ा कि वह शहर में तब्दील होने लगा। एक कॉलेज खुल गया। कुछ नए दफ्तर खुले, रेफरल अस्पताल बना, इंग्लिश मीडियम का एक बड़ा स्कूल खुल गया। धूल भरी सड़कों पर चींटी की चाल से रेंगने वाले लोगों के बीच स्कूटर या बाइक पर सर्र से गुजर जाने वाला एक बेपरवाह युवा-वर्ग अस्तित्व में आया। गाँव के लोग कसबे की जमीन खरीद कर पक्के मकान बनाने लगे। एक दलाल वर्ग सक्रिय हो उठा, कसबे की जमीन की कीमत आसमान पर चढ़ने लगी। रेललाइन के किनारे खास जमीन पर मुस्लिमों की एक बड़ी बस्ती बसी, जिसे 'नया बस्ती' नाम दिया गया। कसबे में हिंदू-मुस्लिम आबादी का ठहरा हुआ अनुपात अचानक चंचल हो उठा। सदर मस्जिद एवं नया बस्ती में कुछ बाहरी मौलानाओं की आवा-जाही अचानक बढ़ गई। हिंदू आबादी चौकन्नी हो गई, हिंदू संगठन बने, इत्यादि।

फरीद चा एवं मेरे परिवार में कुछ खट्टी-मीठी घटनाएँ घटीं। सलमा आपा को उनके शौहर ने गुस्से में तलाक दे दिया। वह अपनी दो बेटियों के साथ फरीद चा के पास आ गई। उस सदमें में फरीद चा की बीबी की मौत हो गई। कुछ दिनों बाद फरीद चा रिटायर हो गए। मेरी शादी हो गई।

दिसंबर, 1992 । अयोध्या में कार सेवकों का जमावड़ा बढ़ रहा था। सारा देश दम साधे टी.वी., अखबार पर नजरें जमाए हुए था। कुछ लोग रेडियो से भी चिपके हुए थे। अपना कसबा भी अछूता नहीं था। नुक्कड़ों में, चाय की दुकानों में उत्सुक चर्चाएँ होतीं।

6 दिसंबर। रविवार। छुट्टी का दिन। मैं अपने घर में ही था। शाम अभी उतरी ही थी कि अचानक शंख-ध्वनि, घंटा-ध्वनि आने लगीं। मैं हड़बड़ा कर घर से निकला। आवाजें भोला ठाकुर के घर से आ रही थीं। भोला ठाकुर स्वतंत्रतापूर्व कांग्रेस के बड़े नेता थे। स्वतंत्रता सेनानी के कोटे से अपने बेटे को पेट्रोल पंप का लाइसेंस दिलाया। हवा का रुख भांपकर वे खुद विश्व हिंदू परिषद के नेता बन बैठे और बेटे को भाजपा का नगर अध्यक्ष बनवा दिया। उनकी हवेलीनुमा घर के सामने बड़ी भीड़ थी। लोग जय श्रीराम के नारे के साथ एक-दूसरे को गुलाल लगा रहे थे। भोला ठाकुर सबको लड्डू बांट रहे थे। एक आदमी ने बताया कि बाबरी मस्जिद के ढाँचे को ढहा दिया गया है, सब इसी

की खुशी मना रहे हैं। मैं सन्न रह गया। अचानक मुझे लगा कि इस समय मुझे फरीद चा के पास होना चाहिए।

शाम रात्रि के अंधकार में बदल चुकी थी। ठंड ने अपनी चादर को फैला दिया था। रास्ते में हन्नान दर्जी की दुकान पड़ती थी। उनकी दुकान शाम के बाद हम कुछ मित्रों का स्थाई अड्डा था। देर रात तक हमारी गप्पबाजी चलती थी। देखा हन्नान भाई दुकान में ताला लगाकर निकल रहे हैं। मैंने पुकारा, "हन्नान भाई।" पर वे अनसुना कर पास की अंधेरी गली में गुम हो गए।

तीन-चार बार दस्तक देने के बाद फरीद चा का दरवाजा खुला। सलमा आपा थी। उसका चेहरा भारी था। उसने बैठक में बैठने का इशारा किया। मैंने फरीद चा के बारे में पूछा तो वह रो पड़ी, "जब से बाबरी मस्जिद गिरने का समाचार मिला तब से अब्बा परेशान थे। अचानक उन्होंने दो-तीन जगह फोन किया। थोड़ी देर पहले सुलेमान चाचा का फोन आया तो वे बिना कुछ बोले घर से निकल गए।"

मैंने पूछा, "कौन सुलेमान चाचा, कहीं सुलेमान अंसारी तो नहीं?"

उसने आँसू पोंछते हुए हामी भरी तो मेरा दिल जोर से धड़क उठा। सुलेमान अंसारी एक कट्टरवादी मुस्लिम संगठन के स्थानीय नेता थे। बांग्लादेश के कुछ आतंकवादियों से उनके तार जुड़े होने के संदेह में पुलिस ने कई बार उससे पूछताछ भी की थी। उसके यहाँ फरीद चा का जाना....। अचानक मुझे लगा कि मेरा कसबा एक रेलवे स्टेशन में तब्दील हो गया है, जिसमें दो प्लेटफार्म हैं और दोनों प्लेटफार्म के यात्रिगण दो अलग-अलग दिशाओं में जाने वाली ट्रेनों का इंतजार करने लगे हैं।

कुछ दिनों बाद फरीद चा से भेंट हुई। बातचीत में पहले जैसी बेतकल्लुफी न देख मैं बहुत निराश हुआ।

मकर संक्रांति आई, पर ठंड में कोई कमी नहीं आई। मैं सपरिवार गंगा स्नान करने गया था। कड़ाके की ठंड के कारण घाटों में स्नानार्थियों की बहुत भीड़ नहीं थी। अभी हम एक घाट में पहुँचे ही थे कि अचानक एक शोर उठा। पता चला कोई बच्चा डूब रहा है। बच्चे की माँ चीख-चीखकर बच्चे को बचाने

की गुहार लगाने लगी। विभिन्न घाटों में उपस्थिति कुछ लोग शोर मचा रहे थे, अधिकतर मूक दर्शक बने हुए थे। किसी की भी हिम्मत ठंडे जल में कूदकर बच्चे को बचाने की नहीं हो रही थी। अचानक लोगों ने देखा धारा के विपरीत एक आकृति तेजी से बच्चे की ओर बढ़ रही है। जब वह आकृति बच्चे को किनारे लेकर आई तो लोग खुशी से चिल्ला उठे, "फरीद खाँ।"

बच्चे को तो बचा लिया, पर फरीद चा का बूढ़ा शरीर ठंड से अकड़ गया। उन्हें तुरंत अस्पताल पहुँचाया गया, पर बचाया न जा सका।

अस्पताल के उसी जनरल वार्ड के एक बेड पर फरीद चा का निष्प्राण शरीर पड़ा था। सलमा आपा दहाड़ें मार-मारकर रो रही थीं। आस-पास गमगीन चेहरे लिए हुए लोग खड़े थे। मैं स्तंभित था।

– एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर

(प. बं.)-721305

❑❑❑

# क्रमशः

**महावीर राजी**

ट्रेन ने 'पोंऽऽऽ पोंऽऽऽ' करते हुए तीखी सीटी हवा में फेंकी, फिर फूफकारते हुए गंतव्य की ओर रेंगने लगी। सीटी की कर्कश आवाज़ हवा में कलाबाजी खाती हुई खिड़की की राह डिब्बे में घुसपैठ करती सीधी उसके कलेजे के भीतर उतरती चली गई। आवाज़ की थरथराहट से उसका शरीर निर्जीव, सर्द और स्पंदनहीन होने लगा। एक दम किसी शव की मानिंद! हाथ-पांव शिथिल....! आँखे तली हुई साबुत मछली की पथरा गई आँखों की तरह बेजान....! बहुत देर से रोका हुआ आंसुओं का सैलाब इन आंखें में भरभरा कर उतर जाना चाहता था पर पपोटे फड़फड़ा नहीं पाए। वह भय से सिहर उठा। जेहन में फ्रेंज काफ्का का कहानी 'मेरा मॉरफसिस' के नायक की छवि कौंध गई। कहीं उसके भीतर भी कहानी के नायक की तरह का कोई रूपांतरण तो नहीं घटने लगा?

दुर्घटना की खबर उसे सुबह ही लग गई थी। आज उसका साक्षात्कार था। ठीक दस बजे कंपनी के कार्यालय में हाजिरी लगा देनी थी। दस के बाद कभी भी उसका नंबर आ सकता था। साक्षात्कार की उत्तेजनात्मक बैचेनी के कारण नींद भोर में ही खुल गई थी। वह लॉज के बेड पर लेटा हुआ था और अधखुली आँखों के कोटरों में खरगोश की तरह दुबक आए नौकरी पा जाने के ख्वाब को हल्के-हल्के सहला रहा था कि मोबाइल की घंटी बज उठी। "दादा, माँ की ट्रैन का प्रधान खंटा के पास एक्सीडेंट हो गया है। भयंकर एक्सीडेंट! पता नहीं क्या हालत हुई होगी माँ की? बहुत डर लग रहा है। तुरंत आ जाओ।"

काजल का फोन था। भय से सूखे पत्ते की तरह थरथराता हुआ एक्सीडेंट की बात सुनकर वह स्तब्ध रह गया। कोटरों के भीतर दुबका खरगोश पलक झपकते हवा में अदृश्य हो गया। अनिष्ट की आशंका से पलकें मुंद गईं और मुंदी पलकों के स्याह घूसर स्कीन पर निमिष मात्र में चिलकने लगे कई-कई कोलाज....! दामोदर नदी के पार्श्व में बसा कुमारधुबी का अंदरुनी ग्रामांचल! छोटी-छोटी कच्ची पगडंडियों की लक्ष्मण रेखाओं से घिरे फूस, खपरैल व टाली के कोठरीनुमा घर! बकरियों, सुअरों और मुर्गियों की ममसायी गंध से गंधाता परिवेश! दूर-दूर तक मेंगनियों तरह फैला ईंट-भट्ठों व हार्ड-कोक चिमनियों का अबूझ संजाल! इनके आगे जहाँ-तहाँ 'पीपिंग टॉय', सी झांकती ई.सी.एल. तथा बी.सी.सी.एल के 'काले हीरे' की खदानों की शृंखला! इनके और भी आगे क्षितिज को अपने मजबूत कंधों का सहारा दिए अडिग पहाड़ियों की लंबी कतारें! पूरे वातावरण पर हर वक्त धुंआते कुहासे का तिलिस्मी आवरण!

पांचवीं के बाद काजल की पढ़ाई छूट गई थी। अब वह आसपास के कबूओं कॉलोनियों में चौका-बासन का काम करती है और खाली समय में रेलवे लाईन के दोनों तरह बिखरी राख की ढेरियों में से कोयला बीना करती है। सोलहवां साल चल रहा है उसका। बाबा ने उसकी शादी के लिए बहुत प्रयास किए पर बात कहीं भी बन नहीं पाई और वधु के शृंगार में उसे देखने की अभिलाषा लिए-लिए ही अंतिम यात्रा पर कूच कर गए। और माँ? माँ रोज सुबह छः पैंतीस की लोकल से एक घंटे का सफर तय करके घनबाद शहर के लेबर चौराहे को गुलजार करने चल देती है। कैसा भी काम..! कैसा भी मेहनताना! काटना, तोड़ना, ढुलाई, कुलीगीरी, मिस्त्री के हेल्पर का काम..! मिल गया तो लौटना शाम को होता। नहीं मिला तो क्लीन बोल्ड होकर दस-पचास वाली लोकल से बाइज्जत बैकट; पैविल्यिन! आज भी रोजाना की तरह वह छः पैंतीस की लोकल से निकली थी। घनबाद के पहले प्रधानखंटा के पास ट्रैन का एक्सीडेंट हो गया। एक्सीडेंट के बाद उस भयावह परिदृश्य में माँ का क्या हुआ होगा, सोचकर ही बदन झुरझुरी से भर उठा था।

पूरा चेहरा और बदन पसीने से चुहचुहा आया तो वह लॉज के रूम से निकल कर बाहर कोरिडोर में आ गया। दिमाग में भयानक झंझावात चल रहा

था। क्या करे वह? क्या....? इंटरव्यू छोड़कर सिंग-पूंछ समेट ले और इसी वक्त लौट चले। तुरंत रवाना भी हो जाए तो वहाँ पहुँचने में चार-पांच घंटे लग ही जाएंगे कि उसके पास पौराणिक जटायु या लालपरी के तरह के जादुई डैने नहीं कि उड़ान भरी और कुछ ही मिनटों में गंतव्य पर!

कशमकश की अवस्था काफी देर तक जहन में नाचती रही। बैचेनी असहज होने लगी तो वह रूम में लौट आया। चेहरे पर ठंडे पानी के छींटें मारे। कितनी मुश्किल से तो साक्षात्कार का मौका हासिल हुआ है। भरपूर उम्मीदों की खुशबूओं से महकती यह षोढ़षी सिर्फ दस कदमों के फासले पर खड़ी है। बाहों में भर लेने का आतुर आमंत्रण देती हुई। भावुकता की रौ में उसे दुत्कार कर भगा दे? साक्षात् मौत की तुलना में अभावों व जलालत की मौत कितनी वेदनादायक हुआ करती है, वह ही जानता है। धीमें जहर की तरह पल-पल दंश मारती कमबख्त।

फिर.... तुरंत लौट जाने से स्थितियाँ बदल जाएंगी? वहाँ तो जो अघटन घटना था, वह घट ही चुका है। अन्य सवारियों का जो हश्र हो रहा होगा, वही माँ का भी हो जाएगा। कुछ घंटा पहले या कुछ घंटा बाद वहाँ पहुँचने से भला क्या फर्क पड़ने वाला है? इस संभावनाशील साक्षात्कार को भावावेश में खो देना तो मूर्खता ही होगी न!

फिर उसने वही निर्णय लिया जो उसे सर्वथा व्यवहारिक लगा। इंटरव्यू तीन बजे समाप्त हुआ। तीन बजे तक उसने जेहन की स्लेट पर माँ की तस्वीर को अंकित होने से बेरहमी से रोके रखा। इंटरव्यू समाप्त होते ही दौड़ता-भागता स्टेशन की ओर चल पड़ा। अब ट्रैन में बैठ गया तो पूरा घटनाक्रम अपनी गिरफ्त में दबोचे जा रहा था। भीतर ही भीतर 'मेरा मॉरफसिस' जैसे ही किसी रूपांतरण का अजीबोगरीब एहसास....!

यह जिंदगी....' क्रमश' में ढलता हुआ लंबा सोप ऑपेरा

बाबूजी एकाउंट्स विभाग में मुलाजिम थे। पूरे बीस साल तक इस संस्थान में सेवा देते रहे थे। तीन साल पूर्व जब रिटायर हुए तो काफी दौड़-धूप की कि किसी तरह मुन्ने को वहाँ जॉब की नियुक्ति मिल जाए। बाबूजी की ईमानदारी और निष्ठा की धाक थी विभाग में। निष्ठा न केवल संस्थान के प्रति, बल्कि

विभागीय बॉस भि. भट्नागर के प्रति थी। इस निष्ठा का संबल तो था ही, मुन्ने की अकादामिक कोर्सों का भी पूरा भरोसा था।

भटनागर साहब के प्रति निष्ठा का भावोच्छवास ही था कि बाबूजी प्रायः रोज ही ऑफिस आवर्स के बाद भटनागर साहब के बंगले चले जाते और उनके बच्चों को ट्यूशन दिया करते। साहब के आदेशनुमा अनुरोध को नकारने की क्षमता नहीं थी उनमें। इसके अलावा ऐसा करते हुए भीतर गहरे में यह विश्वास भी कुकुरमुत्ते की तरह फूट चला था कि साहब भविष्य में मुन्ना का भविष्य संवार देंगे। दो बच्चे थे साहब के। उद्दंड व अनुशासनहीन। उन्हें शिक्षित-दीक्षित करने के क्रम में समय का कतई ध्यान नहीं रहता और घर लौटने में काफी देर हो जाती। लौटते तो शरीर थकान से पस्त रहता सीधे बैठ कर खाना खा सके, इतनी ऊर्जा भी शेष नहीं रहती।

संयोग ऐसा हुआ कि बाबूजी के रिटायरमेंट के कुछ माह पहले ही भटनागर साहब स्टॉफ सेलेक्शन बोर्ड के अध्यक्ष पद पर आ गए। यानी कि सोने पर सुहागा।

काफी दिनों तक तो साहब व्यस्तता का ढोंग करते हुए बाबूजी से मिलने से ही कतराते रहे। अंततः बढ़ते तकाजों से खींच कर मिलने का समय देना पड़ा।

नियत समय पर नियत दिन बाबूजी समस्त अकादमिक प्रमाण पत्रों के साथ उसे साहब के बंगले पर ले गए। इधर-उधर की भूमिका के बाद ज्योंहि बाबूजी ने उसकी नौकरी के बारे में चर्चा की, भटनागर साहब भड़क ही उठे- 'आप भी अजीब हैं मि. राम। नौकरी क्या पेड़ पर लटका हुआ फल है कि तोड़ा और आपके बेटे को थमा दिया, हंह! इसके लिए प्रोपर चैनल से आना पड़ता है। रूल्स और रेगुलेशन्स भी तो कोई मायने रखते हैं कि नहीं?' उत्तर में बाबूजी कहना चाहते थे कि आपका निकम्मा बेटा जो बी. ए. में दो बार फेल हुआ और जिसका अनुशासन और सलीकेपन से दूर-दूर का वास्ता नहीं, पी. आर. ओ. के मयूर-सिंहासन पर किस रूल्स के तहत बैठ सका बताएंगे? पर कह नहीं सके। इसके विपरित उन्होंने बैठकर साहब के पांव पकड़ लिए- 'सर, मैने पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से आपकी सेवा की। ईमानदारी एवं निष्ठा में मुन्ना मुझसे भी एक

कदम आगे जाएगा। प्लीज सर.... आप चाहेंगे तो इस बदनसीब का भविष्य संवर जाएगा।' बाबूजी की कातर गिड़गिड़ाहट पर वह भीतर ही भीतर तिलमिला उठा था। एक अदद नौकरी के लिए अपनी मर्यादा को इस कदर धूल-धूसरित कर देना होगा, यह तो सपने में भी न सोचा था।

साहब कुछ क्षणों के लिए निर्निमेष उसके चेहरे को तौलते रहे। संभवत: सोच रहे हों कि यह गबरु जवान भी अपने बाप की तरह उनके अफसर बेटों की सेवा निष्ठापूर्वक कर सकेगा या नहीं? फिर एक लंबी सांस छोड़ते हुए उन्होंने बाबूजी की पीठ थपथपायी - 'आप हमारी संस्थान के एक योग्य कर्मचारी रह चुके हैं। हम आपकी सेवा से खूब प्रसन्न हैं। ज्यादा बड़ा नहीं, सिर्फ दो लाख का छोटा-सा सूटकेस चाहेंगे। अन्यथा लोग तो इस संस्थान में नौकरी पाने के लिए, वह भी पिउन और वाचमैन स्तर की तीन-तीन, चार-चार लाख वाला भारी-भरकम सूटकेश लिए चक्कर लगा रहे हैं हमारे आगे-पीछे।'

बाबूजी को काटो तो खून नहीं। एक दम सन्न ही रह गए। फिर दयनीयता से मिमियाए- 'बहुत गरीब हैं हम लोग। जो भी पैसा मिला सेवा-निवृत्ति पर, सब बेटे की पढ़ाई में खर्च हो गया। फर्स्ट क्लास की अकादमिक डिग्री के अलावा कुछ भी नहीं है हमारे पास। दया करें सर....।'

बाबूजी की गिड़गिड़ाहट क्रमश: तेज होती गयी, पर भटनागर साहब के चिकने घड़े पर किसी भी तरह की कोई बूंद भला कैसे ठहर पाती।

'नो मर्सी इन मनी मैटर्स, मि. राम। सूटकेस लाइए और नियुक्ति पत्र ले जाइए, ओ.के.?' चेहरे पर बेहया हिनहिनाहट!

साहब की तकरीर को सुनते हुए उसके मस्तिष्क की शिराएं विस्फोट की सीमा तक तन गईं। इच्छा हुई आगे बढ़कर साहब को कॉलर से पकड़ कर हवा में उठा ले ओर पूछे - 'भ्रष्टाचार और अनीति में कंठ तक डूबे आप जैसे अफसर भला ईमानदारी और उपकार का मूल्य क्या समझेंगे? अरे, उपकार तो मेरे इस बूढ़े पिता ने किया है आप के ऊपर। लगातार आठ सालों तक तुम्हारे निकम्मे बच्चों को नि:शुल्क ट्यूशन देकर। ऑफिस आवर्स के बाद के वे अमूल्य क्षण जिन पर हम बच्चों का और माँ का अधिकार होना चाहिए था, तुम्हें खैरात में

दे दिया। किसने किस पर एहसान किया, बताएँ। अरे जोड़ सकें तो जोड़ लें, उन आठ सालों के परिश्रम, सुकून और निष्ठा-ईमानदारी का कुल वेल्यू किसी भी बड़े से बड़े सूटकेस पर भारी पड़ेगा।'

उसके बाद रोज सवेरे प्रमाण पत्रों की फाइल को कांख में दबाकर घर से निकल पड़ता एवं शाम हुए हताशा और पराजय की मोटी परतों का परचम चेहरे से चिपकाए बेक टु पैविलियन। मानो स्थायी भाव ही बन गया जिंदगी का। रात-रात भर जाग-जाग कर प्रमुख पत्रिकाओं के वान्टेड कॉलमों पर रिसर्च। दूसरे दिन चुनिंदा रिक्तियों के लिए आवेदनों का प्रक्षेपण। बिल्कुल मिशाइल की तर्ज पर। सब कुछ मशीनी तरीके से ही होता। आवेदन प्रेषित करते वक्त जेहन में आशा और निराशा की द्वंद्वात्मक लहरें उठतीं रहतीं पर लिखित परीक्षा की सूचना आते ही दिल सूरजमुखी सा खिल उठता। परीक्षा के सूचना पत्र को थामते हुए लगता कि नौकरी-रूपसी कुहासे की सघन परतों के पीछे से झलक दिखाने लगी है। लिखित परीक्षा के बाद साक्षात्कार का आमंत्रण। रूपसी दस कदमों के फासले पर आ खड़ी होती और वह रोमांच से भर उठता।

पर इन दस कदमों को तय करके रूपसी को बाँहों में भर लेने का सौभाग्य अभी तक नहीं मिल पाया। साक्षात्कार खराब रहा हो, ऐसी बात कतई नहीं होती। बस हर साक्षात्कार के बाद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूटकेस की मांग दस्ती बम की तरह सामने आ गिरती। सूटकेस यानी दो-ढाई लाख की राशि। कहाँ से जुटाए इन पैसों को? भटनागर साहब के इंकार के बाद बाबूजी को ऐसा भयंकर शॉक लगा कि एक बार जो बिस्तर पकड़े तो फिर उठ न सके। महीने भर बाद ही पक्षाघात की गाज गिरी। जो भी थोड़ी सी जमा पूंजी थी, बूंद-बूंद करके ईलाज के ब्लैक-हॉल में समाती चली गई। छह माह की गहन यातना के बाद बाबूजी अंतिम यात्रा पर निकल ही गए। अपने पीछे घर को पूरी तरह खोखला छोड़कर।

उसके बाद....? सारा समीकरण तेजी से उलट-पुलट होने लगा। काजल की शादी की बात स्वयमेव ही ठंडे बस्ते की अतल गहराई में जा दबी। उसका राख की ढेरियों से कोयला बिनना और मां का घनबाद शहर के लेबर चौराहे को

गुलजार करना पानीपत की ऐतिहासिक घटनाओं की मानिंद ही उसके जेहन की स्लेट पर अंकित हो गए हैं। तीन साल की लंबी संघर्षपूर्ण यात्रा का एक-एक लम्हा आँखों के आगे जीवंत मछली की तरह फड़फड़ा रहा है। स्थिति आज भी वही है जो तीन साल पूर्व थी। दिनचर्या भी लगभग वही की वही। वांटेड कॉलमों पर देर रात तक रिसर्च। चुनिंदा रिक्तियों के लिए आवेदन। लिखित टेस्ट। साक्षात्कार की अग्नि परीक्षा। सूटकेस की बेहया मांग। अमीरों की टिमटिमाती लौ पर घड़ों ठंडे जल की बौछार। 'इतिश्री रेवा खंडे एक और अध्याय समाप्त' के साथ फिर से नई शुरूआत की पहल। रूपसी दस कदमों के फासले तक आकर मुंह चिढ़ाते रहती। वह आहें भरता हसरत से उसे देखता रह जाता। उसे लगने लगा, नौकरी के लिए उसके प्रयास किसी धारावाही की तरह हो गए हैं। उस सोप ऑपेरा की तरह जो 'क्रमशः' में ढलता हुआ अनंत समय तक चलता रहता है।

**यह सकारात्मक सोच ( यानी पोजिटिव एटिट्यूड ) किस चिड़िया का नाम है भाई....**

रेलवे अस्पताल पहुँचते-पहुँचते रात के आठ बज गए। अस्पताल की विशाल इमारत का हर ओना-कोना घायलों, उनकी चींख-पुकार और उनके रिश्तेदारों की आकुल आपाधापी से भरा पड़ा था। कहीं भी तिल रखने की जगह नहीं थी। आहतों को शय्याओं के अलावा बरामदे, कोरिडोर तथा आंगन, जहाँ भी जगह मिली, डाल दिया गया था। प्रधानखंटा के पास ट्रैक पर काफी दूर तक फीशप्लेट हटी हुई थी जिससे पाँच डिब्बे उलट कर पास की डाउन ट्रैक पर गिर पड़े। तभी डाउन ट्रैक पर पूरे वेग से आ रही एक्सप्रेस ट्रैन ने उन बोगियों के परखचे उड़ा दिए थे। ऊफ, कैसा हृदय विदारक दृश्य रहा होगा। सोच कर ही झुरझुरी भर गई पूरे बदन में।

एक घंटे की सघन खोज के बाद वह माँ तक पहुँच सका था। ऊपरी तल्ले के 17 नं. बेंड के पास जमीन पर लिटाया गया था उसे। अद्‌र्धचेतन अवस्था। कलाई, नाक और मुँह से लंबे-लंबे केंचुओं की मानिंद चिपटी ऑक्सीजन एवं सेलाइन की नलियाँ। बायां पाँव और दायां हाथ मोटी पट्टियों से आवृत्त। दुर्घटना

ने माँ के दैहिक भूगोल को पूरी तरह बदल कर रख दिया था। झूर्रियोंदार चेहरे पर पट्टियों एवं नलियों के पैबंद सहानुभूति व करुणा की बजाय जुगुप्सा व वितृष्णा के भाव जगा रहे थे।

तभी सामने से डॉक्टर एवं नर्सों की टोली मुआयने के लिए आती दिखी। पूछने पर डॉक्टर ने आगे बढ़कर माँ के सिरहाने रखी केश-हिस्ट्री रिपोर्टों पर नजर डाली, फिर चिंतातुर लहजे में बोला- 'दखिए यंग मेन, हालत काफी नाजुक है। पांव और बाँह पर गहरे जख्म आए हैं और टिटनेस फैल रहा है। दवा दे दी गई है। कल सुबह तक टिटनेस कंट्रोल नहीं हुआ तो.... तो ऑपरेशन करना पड़ेगा।'

'ऑपरेशन....?' ऑपरेशन के नाम पर जेहन दहशत से भर उठा। ऑपरेशन यानी बाँह या पांव या दोनों ही अंगों का विच्छेद।

'जी हाँ! लेकिन अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सुबह तक इंतजार करें।'

डॉक्टर ने उसकी पीठ थपथपायी और चला गया। माँ के पास ही कोने में डरी-सहमी काजल बैठी हुई थी। होंठ तनाव एवं भय से पपड़ियाए हुए थे। घर लौट जाने का तो सवाल ही नहीं था। दोनों को वहीं छोड़कर वह बाहर कंपाउंड में आ गया। बाहर पूरे वातावरण पर लंबे कफन का चंदोबा तना हुआ था और इस चंदोबे का रंग स्याह था। चंदोबे के नीचे की चहल-पहल क्रमशः स्खलित होती जा रही थी। गहरे तनाव के बावजूद स्मृतियों के ढेर तले दबी कभी की पढ़ी दो पंक्तियाँ गेंहुअन की तरह फुंफकार उठीं- 'रौशन से अब तक के संजोए स्वप्नों के मलवे तले, देखो किसी मुरदे सा ही दफना हुआ है हर कोई....।' वह विक्षिप्त की तरह हँस पड़ा। सचमुच.... इस वक्त परिवेश ऐसा ही था मानो कफननुमा स्याह चंदोबे के नीचे कुछ प्रेत इधर से उधर मंडरा रहे हों।

दिवार से लगी बेंच पर बैठकर मोबाइल निकाला। पूराना मॉडल का मोबाइल जिसमें कलंगी की तरह एंटेना लगा हुआ था। समय देखा। ग्यारह बज रहे थे। अरे, ग्याहर बज गए? इतनी जल्दी? उसने चौंकने का अभिनय किया, जैसे कि ग्यारह को इतनी जल्दी नहीं बज जाना था और कि ग्यारह इतनी जल्दी

नहीं बज जाता तो निश्चित रूप से कोई चमत्कार घट कर ही रहता। बाहर फैले सन्नाटे का धुआँ बूंद-बूंद करके उसके भीतर घुसपैठ कर रहा था। जैसे-जैसे भीतर सन्नाटा भरते जा रहा था, वैसे-वैसे ही मस्तिष्क में घुमेरे घालता झंझावात गति पकड़ते जा रहा था। कब तक चलती रहेगी यह कवायद जिंदगी में? कब और किस तरह हासिल होगी एक अदद नौकरी? हर जगह सूटकेस और सिफारिश की मांग दस्ती बम की तरह पटक दी जाती है। उसके पास दोनों में से एक भी चीज नहीं है। न सूटकेस है, न ही सिफारिश। घर की जो माली हालत है, बचे-खुचे बर्तन-भांडों एवं अन्य चीजों को बेच भी दिया जाए तो आठ-दस हजार से ज्यादा नहीं जुट सकेंगे।

इस बार के साक्षात्कार का समापन भी उन्हीं 'वैदिक ऋचाओं' के साथ हुआ था। उसके अनुनय-विनय एवं गिड़गिड़ाहट के द्रवित होने का ढोंग करते हुए एम.डी. ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा- 'ठीक है मि. राम। आपकी बातों ने गहरे तक छू लिया हमें। नाऊ चीयर अप। यह जॉब हमने आपको एलॉट किया, खुश?'

सचमुच वह खुशी से उछल ही पड़ना चाह रहा था। फिर पिछले अनुभवों ने संयम का ब्रेक लगा दिया। देखें आगे क्या होता है।

आगे वही हुआ जिसका अंदेशा था।

'आपकी हालत को देखते हुए हमने सिर्फ दो लाख का सूटकेस लेने का निश्चय किया है। अन्यथा तीन-तीन चार-चार लाख वाले सूटकेस लिए उम्मीद्वार कतार में खड़े हैं। दस दिन की मोहलत दे रहे हैं हम। मोहलत नहीं, ग्रेस पीरियड। दस दिनों के भीतर सूटकेस लेकर इस पते पर पहुँच गए तो नियुक्ति पत्र हाथों-हाथ मिल जाएगा। ग्यारहवें दिन जॉब दूसरे उम्मीद्वार के खाते में चली जाएगी। इज दैट क्लीयर....?'

हू-ब-हू वे ही शब्द! किसी साजिश के तहत ही मि. भट्नागर के मुखार बिंद से निस्सृत होकर हर एम. डी. हर जी. एम. के उपलों जैसे होंठों पर सवार हो जाने को आतुर। हंह! दस दिनों में से दो दिन तो निकल ही गए। शेष आठ दिन भी अंधेरे में हाथ पाँव मारते निकल जाएंगे। वह रूपसी इस बार भी दस

कदमों के फासले तक आकर मुँह चिढ़ाते हुए दूर भाग जाएगी। उसके बाद क्या होगा? होंठों पर वक्र हँसी उभर आई। होगा क्या....? फिर से आवेदनों का प्रेक्षपण ....। फिर से लिखित टेस्ट की अग्नि परिक्षा....। फिर से साक्षात्कार का बुलावा। फिर से सूटकेस की गुगली....। और फिर से दिन चुभे बैलून की तरह सब कुछ फुस्स। किसी सोप ऑपेरा की तरह 'क्रमश' में ढलती हुई अनंत समय तक चलती रहने वाली एक मनहूस कवायद....।

मौसम भी मिजाज के हिसाब से ही एहसास जगाता है। सारी रात करवटें बदलते कट गई। सुबह उठा तो सिर भारी था। आँखें रक्ताभ....। जेहन में तनाव और चिंता, भय एवं आशंका का कुहासा ठुंसा हुआ था। जून की गर्मी में भी भोर की शीतल बयार काँटों सी चुभ रही थी। सुबह गहन चेकअप के बाद डॉक्टरों ने निर्णय लिया था– 'बाँह का जख्म नियंत्रित हो गया है, पाँव के जख्म से टिटनेस को निरस्त करने के लिए ऑपरेशन किया जाएगा। अगर ऑपरेशन से टिटनेस हट गया तो ठीक अन्यथा पाँव के संक्रमित हिस्से को काट कर अलग कर देना होगा। बूढ़ा शरीर, कमजोर काया। कुछ भी नहीं कहा जा सकता।'

ठीक सात बजे माँ को स्ट्रेचर पर डालकर ऑपरेशन थियेटर में ले जाया गया। ऑपरेशन थियेटर का दरवाजा बंद होते ही दरवाजे पर कलंगी सा जड़ा लाल बल्ब भक् से जल उठा। बल्ब भी रक्ताभ लालिमा रीढ़ की हड्डियों में से गुजरती हुई पूरे बदन को झनझना गई।

उसने सूखी हँसी के साथ सिर को झटका दिया। मि. राम., एक बार फिर से नए सिरे से सकारात्मक सोच की मशाल को थाम कर देखिए न।

ठीक है। चलो, थाम लिया। उसने आँखें मूंद लीं। मुंदी पलकों के भीतर एक मादक सपने का लारवा आकार ग्रहण करने लगा। कोई देवदूत आकाश से उतरता है रात के नीरव क्षणों में उसकी कोठरी के भीतर। रख जाता है दो लाख का भारी भरकम सूटकेस उसके सिरहाने। चमत्कृत रह जाता है वह। भीग उठता है पूरा बदन एक अबूझ रोमांच से। एकाउंट्स अफसर का गौरवमय पद। पांच अंकों की भारी भरकम तनख्वाह। सभी ऐशो आराम से सज्जित भव्य बंगला। प्यार करने वाली पत्नी, बाहर द्वार पर खड़ी चमचमाती इंडिगो कार।

....कि अचानक ठोकर लगने से लड़खड़ा गया वह। गिरते-गिरते बचा। सारी पोजिटिव सोच, एक झटके में चमचमाती इंडिगो से निकल कर दिवार के सहारे रखी बलगम से बजबजाती डस्टबिन में जा गिरी। बलगम को देखकर दिमाग भन्ना गया। यथार्थ पूरी नग्नता के साथ सामने खड़ा था। स्याह कफन के तले प्रेत की तरह मंडराती जिंदगी। इस जिंदगी में दो लाख का तेल जुटना नामुमकिन है और इस तरह राधा का नाचना भी नामुमकिन।

माँ.... तू कितनी भोली है, कितनी लाचार भी

अस्पताल के मेन गेट के पास बाहर चाय की गुमटी थी। गुमटी के काउंटर पर रखे टी.वी. पर समाचार चल रहे थे। एक ही ढर्रे के देशी-विदेशी समाचार जिनमें धाकड़ नेताओं और उनके चमचों के उलजलूल वक्तव्य तथा उनके हगने-मूतने और खाँसने के समाचार प्रमुख थे। अन्यमनस्क सा चाय सुड़कते हुए वह बेंच पर बैठ गया। तभी कल की रेल-दुर्घटना से संबंधित समाचार हवा में तैरने लगे। दुर्घटना की भयावहता पर रेल मंत्री द्वारा शोक संदेश का मर्शिया....। जाँच कमीशन के गठन का थोथा आश्वासन। फिर अंत में घोषणा- 'दुर्घटना में घायलों को पचास हजार रूपए, आंशिक अपाहिज हो जाने वाले यात्री को एक लाख तथा मृत व्यक्ति के आश्रितों को दो लाख रुपए के मुआवजे की घोषणा की जाती है।

वह स्तब्ध रह गया। ऑक्सीजन-सेलाइन की केंचुल-नलियों से आछन्न माँ की झूर्रियोंदार पोपला मुँह निमिष मात्र में जेहन में कौंध गया। मरणासन्न और अशक्त शरीर पर शल्य-क्रिया चल रही है। शल्य क्रिया के दौरान कुछ भी अघटन नहीं घट सकता क्या? बेशक घट सकता है। उसकी आँखों में लोमड़ी की सी कुटिलता ठुंस गई। तेज-तेज कदमों से दौड़ते हुए ऑपरेशन थियेटर की ओर लौट पड़ा वह। चाल में अप्रत्याशित फुर्ति आ गई। धड़कने बेलगाम बढ़ गई। भीतर गहरे में एक अरसे से दरक कर कण-कण में बिखरा उसका अस्तित्व संश्लेषित होकर गुड़ने की प्रक्रिया में लग गया। माँ चाहे तो उसकी जिंदगी संवर सकती है। उसके टूटे-फूटे सपने मुकम्मल सुंदर आकार ले सकते हैं। लेकिन ऐसा क्या सिर्फ माँ के चाहने से ही हो सकेगा? माँ तो अद्‌र्धचेतन व्यवस्था में

ऑपरेशन टेबल पर पड़ी है। काश, सिर्फ कुछ क्षणों के लिए डॉक्टर किसी काम के बहाने थियेटर से बाहर आ जाए। फिर वह सब कुछ 'सेट' कर लेगा। ऑपरेशन शुरू भी नहीं हुआ होगा अभी। सिर्फ पंद्रह मिनट ही हुए हैं थियेटर के भीतर गए। पंद्रह मिनट तो मास्क-दस्ताने वगैरह पहनने में ही लग जाते हैं। कितना अच्छा होता, ऑपरेशन थियेटर में माँ को ले जाने के पहले ही मुआवजे की घोषणा के समाचार प्रसारित हो गए होते।

रोमांच और उत्तेजना से पूरी देह पसीने-पसीने हो उठी। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए नजरें सीढ़ियों की दीवार पर टिकट की मानिंद चिपकी छिपकली पर चली गईं। छिपकली से कुछ ही दूर पर एक तिलचट्टा रेंग रहा था। छिपकली तेजी से तिलचट्टे पर झपट्टा मारती है। तिलचट्टा पैंतरा बदल कर भागता है। छिपकली भी तेजी से पीछा करती है। उसकी सांसें थम सी गईं। हवा में एक सस्पैंस घुल गया। अंततः तिलचट्टा छिपकली के जबड़ों में फंस ही गया। थोड़ी देर की छटपटाहट और फिर सब कुछ शांत। तभी छिपकली के जबड़े में समाते तिलचट्टे का चेहरा तेजी से बदलने लगा और देखते ही देखते वह माँ के झूर्रियोंदार चेहरे में तब्दील हो गया। उसकी आँखों में बिल्ली की चमक ठुंस आई।

थियेटर का दरवाजा बंद था। सिरे का लाल बल्ब जला हुआ। उत्तेजना और बैचेनी से हाथ मलता हुआ पास की बेंच पर बैठ गया। सिर्फ कुछ क्षणों के लिए एक बार डॉक्टर बाहर निकल आए....। आह....। चातकी आँखें बंद दरवाजे पर टिकी हुई थीं.... कि एक झपाका हुआ। पलकें स्वयमेव ढलक गईं। दरवाजा एक बड़े स्क्रीन में बदल गया और स्क्रीन पर कौंधने लगे कुछ अजूबे कोलाज...

नवें माह की असहय प्रसव-वेदना। फूले हुए पेट के भीतर भ्रूण की भरतनाट्यमी मुद्रा से माँ की चींख फूट जाती है- 'आह....।' 'मैंने कहा था, हमें नहीं चाहिए अभी बच्चे। एबार्शन करा लो। पर तुम नहीं मानी। अब भुगतो....।' पिता उसका सिर सहलाते हुए फनफनाते हैं। 'भुगत लूंगी जी, पर इस कलेजे के टुकड़े को तुम्हारी गोद में देकर ही रहूंगी। अरे.... बुढ़ापे का सहारा चाहिए कि नहीं?' माँ खिलखिलाती है।

उसके बाद माँ का ऑपरेशन थियेटर के कोहकाफ में प्रवेश। कोहकाफ की डरावनी खामोशी। सिजेरियन की भयानक त्रासद यात्रा....। फिर जैसे ही 'हुआं.... हुआं....' की किलकारी गूंजी कि माँ सारी मर्मांतक पीड़ा को भूलाकर उसे चुंबनों से सराबोर कर देती है....

अचानक एक खटका हुआ और तंद्रा का तिलिस्म टूट गया। पूरे चेहरे पर स्वेद-कण छलक आए। आँखें फाड़कर घड़ी को निहारा। ऐं....? दो घंटे बीत गए। वह हड़बड़ा कर बेंच से उठ खड़ा हुआ। थियेटर का दरवाजा अभी भी बंद था। पता नहीं, अंदर क्या हो रहा है? तिलिस्म के हैंगओवर के प्रभाव में उत्तेजना चरम पर जा पहुँची। प्राण हलक में आ गए। धड़कनें बेकाबू हो गईं। वह बैचेनी में चहलकदमी करने लगा।

टिक.... टिक....! टिक.... टिक....!

अंततः थियेटर का दरवाजा खुल गया। दरवाजे के माथे पर लगी लाल कलंगी बुझ गई। डॉक्टर मुस्कुराते हुए बाहर आया- 'कनग्रेट्स सर.... आपकी माँ खतरे से बाहर है। ऑपरेशन सफल हुआ।' वह विक्षिप्त की तरह डॉक्टर के दोनों कंधों को झिंझोड़ पड़ा- 'ओह नो, डॉक्टर! आप झूठ बोल रहे हैं। माँ मुझे धोखा नहीं दे सकती....।'

उसकी आँखें डबडबा आईं। नौकरी के लिए उसका संघर्ष किसी लंबे 'सोप-ओपेरा' की तरह फिर से क्रमशः में ढल गया था।

– द्वारा प्रिंस, केडिया मार्केट, आसनसोल-713301 (प. बंगाल)

❑❑❑

# दास्तान-ए-चमेलीपति

डॉ. दादूराम शर्मा

अप्रैल का महीना था। सुबह का स्कूल था। दोपहर में छुट्टी होने पर मैं और रामप्रकाश शर्मा साइकिल से अपने गाँव लौट रहे थे। उसी दिन से प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र बींझावाड़ा में तीन दिवसीय परिवार नियोजन शिविर का आयोजन था। रास्ते में शर्मा जी ने बताया कि उन्होंने भी नसबंदी के लिए अपना नाम डॉक्टर के पास लिखा दिया है। वे बड़े परेशान दिखे, बताया कि उनकी पत्नी नसबंदी के खिलाफ है। मैंने समझाया- "इसमें परेशानी की क्या बात है? घर में भाभी को यह बताकर आ जाना कि रिजल्ट तैयार करना है। रात में वहीं रुकना होगा और ऑपरेशन करा लेना! बस।"

"नहीं यार, तुम्हारी भाभी बड़ी विकट है। उससे ऑपरेशन की बात छिपाना संभव नहीं है।" उन्होंने अपनी मजबूरी बताई।

"तब तो आपको अपना नाम नहीं लिखाना चाहिए था। नाम लिखा दिया है और ऑपरेशन कराने नहीं जाएंगे तो एंबूलेंस आपको लेने आ जाएगी।"

गाँव आ गया था। हम लोग अपने-अपने घर चले गए।

मैं एम.ए. की तैयारी कर रहा था। रात में भोजन करके पढ़ने बैठा ही था कि घर के सामने एंबूलेंस आकर रुकी। उठकर देखा तो उसमें से हमारे प्रधान पाठक दीक्षित जी और साथी साहू जी उतर रहे थे। मैंने अभिवादन किया और पूछा कि रात में आप लोगों ने कैसे कष्ट किया? वे बोले- "शर्मा जी, रामप्रकाश ने नसबंदी के लिए डॉक्टर साहब के पास नाम लिखा दिया है और गया नहीं इसलिए उन्होंने उसे लेने के लिए हमें भेजा है।"

रामप्रकाश का घर गाँव के बीच में है मेरा घर गाँव के दक्षिणी छोर पर। उनके घर के सामने से ही एंबूलेंस आई थी। मैंने पूछा- "क्या आप लोगों ने आते समय उन्हें उनके घर पर नहीं देखा?" वे बोले- "उसके घर पर रुके थे। उसकी पत्नी ने बताया कि वे थाँवरी गए हैं उनके मामा जी को पैंसठ साल की उम्र में संतान के लिए दूसरी शादी करने का भूत सवार हो गया है। रोकने गए हैं उन्हें!"

मुझे भी उनके मामा जी के विवाह के लिए उछल-कूद मचाने की जानकारी थी अत: मैंने कहा- "सर, बात तो सच्ची है। जरूर गए होंगे।"

उन्होंने कहा- "नहीं शर्मा जी, हमें ऐसा लगा कि वह घर पर ही है और गाड़ी की आवाज सुनकर छिप गया है। छोटी लड़की "पापा तो...." ही बोल पाई थी कि उसकी माँ ने उसे डपटकर रोक दिया। चलिए, देखना है उसे।"

मेरा माथा ठनका! रामप्रकाश जी की पत्नी चमेली बाई साक्षात् भूचाल थी। कलह में अकेली ही मुहल्ले की दस-पाँच महिलाओं के दांत खट्टे कर देती थी। आदमी भी उसकी कैंची-सी चलती जवान के आगे सिर झुकाकर चुपचाप खिसक जाने में ही अपनी खैरियत समझते थे। मुहल्ले में उसके चार-चार काका ससुर थे लेकिन सभी की उसके आगे घिग्घी बंध जाती थी। मैंने उन्हें एक पुरानी घटना सुनाई ताकि वे उन्हें छोड़कर सकुशल लौट जाएँ-

रामप्रकाश शर्मा की नई-नई शादी हुई थी। माँ का तो उनके बचपन में देहावसान हो गया था। घर पर पिता जी अकेले थे। एक रात चमेली और रामप्रकाश में 'तू-तू, मैं-मैं' हो गई। वाग्युद्ध में रामप्रकाश को हारना ही था। पुरुष जब वाद-विवाद में स्त्री से हार जाता है तो पशुबल का सहारा लेता है- मार-पीट पर आमादा हो जाता है। लिहाजा वे पत्नी को मारने के लिए लपके। पिता जी अभी तक मूकदर्शक बने देख रहे थे। अब उनसे न रहा गया,

बीच में आकर बोले- "खबरदार! जो मेरे सामने बहू पर हाथ उठाया तो!

और बहू, तुम भी चुप रहो।

"तो आप मुझे मारने नहीं देंगे।"

"हरगिज नहीं!"

"मैं तो मारूँगा ही"

"देखता हूँ, कैसे मारता है तू?"

उधर ससुर की बार-बार चुप रहने की हिदायत को अनसुना करके चमेली बाई उन्हें उकसा रही थी- "मर्द है तो हाथ लगाकर देख।"

वे फिर लपके तो पिता जी ने कसकर पकड़ लिया। उन्होंने छूटने का प्रयत्न करते हुए कहा- "नहीं मारने देंगे तो मैं कुँए में कूद जाऊँगा।"

"कूदेगा तो कूद जा। नालायक कहीं का।"

और वे तेजी से घर से निकले और चौगान के कुँए में "सिद्ध गणेश" कहकर छलांग लगा दी।

अब तो हड़कंप मच गई। पिता जी ने आवाज लगाकर अपने भाइयों और मुहल्ले वालों को इकट्ठा कर लिया। सब लोग कुएँ के आस-पास जमा हो गए। टार्च से देखा तो वे तैर रहे थे। पिता जी ने, चाचाओं ने, बड़े-बूढ़ों ने जी-भरकर गालियाँ दीं, बुरा-भला कहा।

हम बच्चों के लिए तो अच्छा-खासा तमाशा हो गया था। तैरते-तैरते और गालियाँ खाते-खाते शर्मा जी जब थक गए तो उन्होंने बड़े करुण स्वर में कहा- "ऐं जी, गालियाँ ही देते रहेंगे या मुझे बाहर निकालेंगे भी?"

तब लोगों ने रस्सा डालकर बाहर निकाला था उन्हें। मेरी माने तो आप बर्र के छत्ते पर पत्थर न मारें। चुपचाप लौट जाएँ और जैसा उनकी पत्नी ने बताया है वैसा ही डॉक्टर साहब को बताकर इस प्रकरण का पटाक्षेप करें।

लेकिन वे नहीं माने। इसलिए मजबूरन मुझे उनके साथ जाना पड़ा। शर्मा जी के घर के पास ही मेरी ससुराल हैं। मैंने उन्हें वहाँ ले जाकर बैठाया और पड़ोस के एक शिष्य को मास्टर साहब का पता लगाने के लिए उनके घर भेजा। उसने आकर बताया कि वे घर में ही छिपे बैठे हैं। मैं उनसे बात करने भीतर पहुँचा ही था कि चमेली भाभी, जो आंगन में बच्चों के साथ बैठी थीं, लपककर भीतर आ गईं और बोलीं- "भइया, तुम्हें अपना ऑपरेशन कराना हो तो करा लो, वे ऑपरेशन नहीं कराएंगे।"

"भाभी, मेरे ऑपरेशन से आपको क्या फायदा? मैं तो यह कहने आया हूँ कि ये यही बात चलकर बड़े गुरुजी को बतला दें ताकि वे लौट जाएँ। इन्होंने कोई अपराध तो किया नहीं है, जो इतनी गर्मी में घर के भीतर छिपे बैठे हैं?"

बड़ी मुश्किल से वे बाहर आए, जाकर उन्हें मना किया। अब हम उनका घर पार करते हुए मेरे घर की ओर चले, जहाँ एंबूलेंस खड़ी थी। मास्टर साहब ने उन्हें अपने घर पर रोककर चाय-पान कराने का शिष्टाचार तो नहीं निभाया किंतु अतिथियों को कुछ दूर तक पहुँचाने के शिष्टाचार का पालन करते हुए हमारे साथ-साथ चलने लगे। चमेली भाभी ने सोचा कि वे ऑपरेशन के लिए चले इसलिए अभी हम उनके घर की सीमा से दो-चार कदम ही आगे बढ़े थे कि उसकी दहाड़ गूँज उठी- "खबरदार! मीना के पापा, रूक जाओ वहीं। एक कदम भी आगे बढ़ाया तो मैं कुएँ में कूद जाऊँगी और सबको जेल में बंद करवा दूँगी।" और उसने गोद के बच्चे को आंगन में पटका और कुँए की ओर सरपट दौड़ पड़ी। रामप्रकाश जी भी उसे रोकने के लिए उसके पीछे दौड़े। अब दीक्षित जी और साहू जी को काटो तो खून नहीं। मैं उसके त्रियाचरित्र को जानता था अत: उन्हें आश्वस्त करके मैंने उन्हें गाड़ी पर बैठा दिया। गाड़ी रवाना हुई और मैं दरवाजा बंद करके पढ़ने बैठ गया। बीस-पच्चीस मिनट बाद फिर गाड़ी की आवाज सुनाई दी। दरवाजा खोलकर देखा तो गाड़ी दक्षिण दिशा से आती हुई उत्तर दिशा में बींझावाड़ा की ओर तेजी से निकल गई। दूसरे दिन स्कूल में पूछने पर पता चला कि रात की घटना से वे इतने घबरा गए थे कि उत्तर की ओर न जाकर ठीक दक्षिण में स्थित सुरजना गाँव पहुँच गए थे तब उन्हें होश आया कि बींझावाड़ा तो उत्तर में है तब वे वापस लौटे थे।

चमेली भाभी रातभर पता नहीं कहाँ छिपी रहीं और सवेरे घर लौट आईं। इधर रातभर उनकी चिंता करते-करते और रोते-बिलखते चार-चार बच्चों को संभालते-संभालते मास्टर साहब का बुरा हाल हो गया। तभी से 'चमेलीपति' कहकर पुकारे जाने लगे।

कुछ दिनों बाद उनका स्थानांतर कपुर्धा हो गया। वहाँ छह किलोमीटर साइकिल से जाना पड़ता था। बड़ी बिटिया मीना छटवीं में पढ़ती थी। उसे भी उन्होंने माध्यमिक शाला कपुर्धा में भरती करा दिया था। कैरियर पर बैठाकर साथ ले जाते। माध्यमिक शाला गाँव के बाहर है, उसे वहाँ उतारते और खुद गाँव के बीच स्थित प्राथमिक विद्यालय चले जाते। इसमें वे अक्सर लेट हो जाते। हेड मास्टर शुक्ल जी उन्हें विलंब से आने के लिए डांटा करते समय पर आने की

बार-बार नसीहत देते। लेकिन शर्मा जी पूरे गुरु थे, उनके कान पर जूँ तक न रेंगती।

क्वाँर का महीना था, जिसे तीखी धूप के कारण अंग्रेज लोग 'लघु ग्रीष्म (शार्ट समर)' कहा करते थे। इस माह में किसान खेतों में अनाज बोते हैं। एक दिन प्राथमिक शाला के चार में से दो अध्यापक अवकाश पर थे और आदत के अनुसार लेट आने में शर्मा जी ने तो आज हद की कर दी थी। पूरे डेढ़ घंटे लेट थे। हेडमास्टर शुक्ल जी का पाँच-पाँच कक्षाओं को अकेले सँभालते-सँभालते नाक में दम आ गया था कि तभी शर्मा जी साईकिल से आते दिखे- धूप के कारण लाल-लाल मुँह और पसीने से लथपथ। आते ही शुक्ल जी बरस पड़े- "क्यों रे रामप्रकाश! मैं तुझे हर दिन समझाता हूँ कि समय पर आया कर। आज दो शिक्षक छुट्टी पर हैं और तूने तो हद ही कर दी! पूरे डेढ़ घंटे लेट आ रहा है।"

शर्मा जी ने साईकिल प्रांगण में पटकी और जोर से चीखे- "ए जी, जबान सँभालकर बात करो।" दोनों में चाचा-भतीजे का रिश्ता था। शुक्ला जी उन्हें डाँटते तो रहते ही थे, बोले- "जबान संभालकर बोलने की क्या बात है? मैं तो तुझे मार भी सकता हूँ रे।' कहकर उन्होंने आव देखा न ताव और एक झन्नाटेदार झापड़ शर्मा जी के गाल पर रसीद कर दिया। जवान आदमी भला किसी बूढ़े की मार कैसे बरदाश्त कर सकता है और वह भी बच्चों के सामने? अतः शर्मा जी भी आपे से बाहर हो गए और उन्होंने शुक्ला जी को उठाकर पटक दिया। फिर तो दोनों में मार-पीट होने लगी। बच्चे घबरा गए और बाहर भागे कि किसी बड़े आदमी को लाकर गुरु जी लोगों में बीच-बचाव कराएँ। दोपहर में सभी किसान भोजन करने घर आ चुके थे। बड़ी दौड़-धूप के बाद उन्हें दो लोग खेत से आते दिखे। बच्चों ने उन्हें सारी घटना बताई और चलकर झगड़ा शांत कराने की प्रार्थना की।

इसी बीच दोनों लड़ते-लड़ते थक कर कुर्सी पर बैठ गए। शुक्ला जी ने कहा- "रामप्रकाश जो हुआ, सो हुआ। भूल जा उसे। मैंने तो भतीजा समझकर मजाक में मारा था। लेकिन तूने तो मेरी ऐसी पिटाई कर दी कि सारे अंजर-पंजर ढीले कर डाले। अच्छा तो निकाल बीड़ी।"

रामप्रकाश ने भी माफी माँगी और मोहनलाल हरगोविंद दास जबलपुर वालों की शेर छाप बीड़ी का कट्टा निकालकर बड़े गुरुजी की खिदमत में बीड़ी पेश की, एक खुद ली और दोनों जन सुलगाकर कश लेने लगे।

बीच-बचाव कराने के लिए दोनों किसान आए और दरवाजे से झाँककर बोले- "गुरुजी! पा लागे!"

"खुश रहो, रामलाल, श्यामलाल! कहो कैसे आना हुआ?" शुक्ला जी ने पूछा।

"गुरुजी! अब हम का बताएँ? लड़का कह रह थे कि....."

"बोलो, बोलो, रुक क्यों गए?"

"क.... क.... कैसे बताएँ गुरुजी, जवानहीं नही खुल रही आ।"

"बोलो तो भइया, बिना संकोच के बोलो।"

बड़ी कठिनाई से रामलाल कह पाया- "गुरुजी, लड़का कहत रहे कि हमारे गुरुजी मार-पीट कर रए हैं चलखै छुड़ा दो। पर आप लोग तो हियाँ हँस-बोल रए हौ और हिल-मिल खै बिड़ी पी रए हौ।"

अब शर्मा जी की बारी थी। लपककर बाहर गए और जोर से चिल्लाए- "सब बच्चे भीतर चलो, छुट्टी खत्म होने की घंटी कब की बज चुकी है।"

नसबंदी न कराने के कारण चमेलीपति अब पाँच पुत्रों के पिता बन चुके थे, जिनमें से दो तो हत्या के अपराध में आजीवन कारावास की सजा भुगत रहे थे और शेष तीन बेरोजगार जवान सेवानिवृत्त पिता और माता की वो गत बना रहे थे कि देखकर दुश्मनों की आँखें भी नम हो जाती थीं।

– महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी (म. प्र.)-480661

❑❑❑

# आसरा

**किरण कुमारी हंसडक**

जो तो भुटुक् बाहा काते,
बाहा बाहा काते मोसोदोक् काना।
नावा बाहा रेयाक् आसरा ते,
डार इनका गी ताहेन काना।
मोसोम हिजुक् चालाक् ते,
नावा भुटुक्ओक् बाहा काना।
आर हो आयाक् बाले तेत ते,
जोतो होड़ाक मोने ओरेत् काना।
रास्का हिजुक् टुक चालाक् रेयाक्,
जोतो होड़ कु ञेल ञापेत काना।
नावा बाहा रेयाक् आसरा ते,
रोहोड़ डार मोज ञेलोक् काना।
लील सेरमा हरियाड़ धरती,
ओक्ते खोन ओकोर बन्चाव काना।
होय–दाक् घाने दाक् घाने,
ऐमोक् हुयुक् ताय ओने।
सिरजोनाक् नोवा लिला ते,
ओकोर बाको बन्चाव अकाना।
बेगोर साकाम ते डार हो,
होय ते लोदोबोक काना।

# आशा

**हिंदी अनुवाद : किरण कुमारी हंसडक**

हर कली खिलने के बाद,
फूल बनके मुरझाती है।
नए फूल की आस में,
डाली यूँ ही रह जाती है।
मौसम के आने-जाने से,
नई कली खिल जाती है।
फिर अपनी कोमलता से,
सबके दिल मोह लेती है।
आने की खुशी, जाने का गम,
दिखाई सबको देती है।
नए फूल की आस में,
सूखी डाली खूबसूरत लगती है।
नीला आसमान हरी धरती भी,
समय के फेर से कहाँ बच पाया है।
कभी आँधी, कभी वर्षा,
उन्हें भी देना पड़ता है।
प्रकृति की इस काया से,
कहाँ कोई बच पाया है।
पतझड़ में बिन पत्ते डाली,
हवा के झोंक में लहराती है।

उनीयाक् आसरा नावा सेताक् गी,
राँत होय पासनाक् गी।
रास्का आर सुक दुक दो,
हाताव आरे ऐमोक् काना।
हासो मेनाक् मोने रे,
लान्दा जीवेदोक् रेयाक् बाहना काना।
रास्का आसरा ते मानवा जीयोन,
आयमा सासेत कु अपनारेत काना।

– ग्राम–भाटोंडला, डंगरीटोला, पोस्ट–खातोन, थाना–पोरियाहाट, गोड्डा, झारखंड

❑❑❑

उन्हें आशा है नई सुबह की,
किरणों को तो छाना है।
सुख और दुख प्रकृति के,
लेना और देना है।
दर्द तो होता है दिल में,
हँसी जीने का बहाना है।
खुशी की आस में मानव जीवन
कितना दर्द झेल लेता है।

– ग्राम–भाटोंडला, डंगरीटोला, पोस्ट–खातोन, थाना–पोरियाहाट, गोड्डा, झारखंड

❑❑❑

# अज्ज बी

पद्मा सचदेव

अज्ज बी तुगी दिक्खियै
चढ़दा ऐ चन्न उयां गै
उयां गै बली पौन्दियां न
अक्खीं दियां च्हूकां
उयां गै परसिज्जलदियां न
पैरें दियां तलियां
अज्ज बी बोल
सिद्धे नीं निकलदे
पेई जन्दी ऐ थत्थो-बत्थो
तुगी दिक्खियै
चेत्ता नीं रौंह्दा
कक्ख बी
जेह्ड़ा दस्सना हा तुगी
किश ते ऐ
सूखम नेहा
साढ़ै मझाटै नेईं रेहा
उस्सी आखदे
तूं बी डरना ऐं
मिगी बी औंदा ऐ भै
अज्ज औंदी बारी

# आज भी....

**हिंदी अनुवाद : कृष्ण शर्मा**

आज भी
तुझे निहार कर उसी तरह
निकलता है चाँद
उसी तरह चमक उठती हैं
आँखों की कोर
उसी तरह पसीजने लगती हैं
पैरों की तलियाँ
आज भी स्वर नहीं फूटते
रह जाती है जीभ मौन
खो जाती है सुध-बुध
तुझे देखकर-
स्मरण नहीं रहता कुछ भी
सुनाना था जो तुम्हें
कुछ तो है सूक्ष्म-सा
जो नहीं रहा हमारे बीच अब
उसका ज़िक्र छेड़ते
तुम भी डरते हों
मुझे भी लगता है भय
आजकल लौटते समय
तुम्हारे हाथों में मोतिया के फूल

तेरे हत्थें च मोतिए दे फुल्ल
ते तेरे गोझे च
चंबे दियां कलियां
बी नेईं होन्दियां
जेह्ड़ियां तेरे पिच्छें-पिच्छें
तेरी शकैत लांदियां चलदियां हियां।

– बी-242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली-110019

❑❑❑

नहीं होते, और
तुम्हारी जेब में
चंपा-चमेली की
कलियाँ भी नहीं होतीं
जो तुम्हारे पीछे-पीछे
तुम्हारी चुगली खाती चलती थीं।

– 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001

❑❑❑

# दोहे

**नरेश शांडिल्य**

ज़रा ज़रा सी बात पर, रिश्तों को मत तोड़
सात अरब की भीड़ में, सात लोग तो जोड़

जो भी रख इस हाथ पर, रख इज़्ज़त के साथ
वर्ना लौटा दे ख़ुदा, मुझको खाली हाथ

एक कहो कैसे हुई, मेरी-उसकी बात
मैंने सब अर्जित किया, उसे मिली ख़ैरात

घुटनों पर जो हैं अभी, तुतले जिनके बोल
ये बच्चे ही देखना, बदलेंगे भूगोल

यूँ ही नहीं दधीचि का, गाती दुनिया गान
अस्थि अस्थि मिट भर गया, वो कुदरत में जान

ललचाए नीला कमल, मीलों गहरी कीच
एक तरफ है स्वर्ण मृग, एक तरफ मारीच
मैला ढोने की प्रथा, कहाँ हुई है बंद
नदियों के सिर कर दिया, हमने अपना गंद

जैसा जिसका काम है, वैसा होता नाम
क्या गांधी क्या गोडसे, क्या रावण क्या राम

एक ब्रह्म से ही बना, सबका अगर वजूद
सच कबीर का पूछना, फिर क्यों बामन-सूद

सदियों तक हमने जपा, आज़ादी का मंत्र
तब जा कर हासिल किया, हमने यह गणतंत्र

कोई औरों से लड़े, कोई अपने संग
अपने-अपने मोरचे, अपनी अपनी जंग

चुका नहीं हूँ मैं अभी, तुम्हें हुई है चूक
पतझर पतझर रच रहा, मैं वसंत की कूक

ख़्वाब न हों तो ज़िंदगी, चलती फिरती लाश
पंख लगा कर ये हमें, देते हैं आकाश

बार-बार कायर मरे, वीर मरे इक बार
मरने से पहले मरे, तो जीना धिक्कार

महलों पर बारिश हुई, भीगे सुर-लय-साज
छप्पर मगर गरीब का, झेले रह रह गाज
महँगाई से जंग थी, बैठा हूँ थक-हार
आखिर कब तक भाँजता, लकड़ी की तलवार

कहना है जो कह मगर, कला कहन की जान
एक महाभारत रचे, फिसली हुई जुबान

कबिरा की किस्मत भली, कविता की तक़दीर
कबिरा कवितामय हुआ, कविता हुई कबीर

केवल वो ही कोयला, जिसके जिगर जुनून
सदियों तप कर पाय है, इक हीरे की जून

रोज़-रोज़ के रतजगे, दिनभर भागमभाग
फिर भी हँस-हँस गा रहा, मैं जीवन का राग

– ए-5, मनसाराम पार्क, संडे बाजार रोड, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

❑❑❑

# बीकानेर में बसंत

**विजयसिंह नाहटा**

लंबे प्रवास के बाद
संध्या के उदास झुटपुटे में
दाखिल हो रहा वह
इस नगर की गलियों, छतों, चौबारों में
बतकहियों में, कानाफूसी में,
नियति की हर पदचाप में
किसी प्राचीन हवेली के पिछवाड़े
गोया ठहर गया वक्त का
अनवरत पहिया
दबे पांव वह आता
चिड़िया के परों में ताजगी भरता
कोंपल में नमी,
फूल में गंध
और–
हर दिल में अनकही पीड़ा
उसकी अनुपस्थिति में गत मौसम
के बीते पलों के ध्वंशावशेष
बिखरे हवा में चहुंओर
घटित घटनाओं
के बेजान खंडहरों पर

चहल-कदमी करता
अंकुरित हो रहा
निष्ठुर प्रेम की
उजाड़-सी कोख में
अपने उद्‌गम से
जो खींच-खींच लाता
हर बार उसे
रेत के हर कण में आबाद
प्रेम के अंतहीन आख्यान में
हर बार–
विराट प्रेम की मंजूषा उठाए
आता है कौन?
संध्या के उदास झुटपुटे में।

– बी-92, स्कीम 10-बी, गोपालपुरा बाईपास, जयपुर-302018 (राजस्थान)

❑❑❑

# एक गंध

राधेश्याम बंधु

चंपई इशारों
से लिख-लिख अनुबंध,
एक गंध
सौंप गई सौ-सौ सौगंध।

चितवन की चर्चाएँ
महफिल में झूमती,
गलियों की मनुहारें
ग्रंथों में गूंजतीं।

वादे की
गणित लिखे प्यार पर निबंध।

बाँहों भर स्वीकृतियाँ
गतिविधियाँ ले गईं,
गंधवती मुस्काने
खामोशी दे गईं।

सिरहाने
बतियाते छुअनों के छंद।

यादों के हरसिंगार
रात-रात जागते,
इठलाती पूनम से
एक रात मांगते।

रातों को
बहुत खले दिन के संबंध,
चंपई इशारों
से लिख-लिख अनुबंध।

– बी-3/163, यमुना विहार, दिल्ली-110053

❑❑❑

# बचपन

**श्रेया सिंह**

हम आज भी वो जमाना याद करके
यूँ ही हँस दिया करते हैं
जहाँ हँसने के हजार बहाने थे
जहाँ चेहरे पर ऐसी चमक होती
जो रोशनी को भी रोशन करती
जहाँ कहानियाँ सुनने में वक्त की कमी न थी
कुछ ऐसा जमाना था कैसे समझाए
जहाँ छोटी-छोटी रेलगाड़ियों की गूँज
हर गली में सुनाई देती थी
जहाँ माँ की बनाई खीर का स्वाद
सब मिल-बाँट कर लेते थे
जहाँ गीली बारिश में
कई कागज की कश्तियाँ गोते खाती थी
लोग अक्सर उस जमाने को
बचपन कह कर पुकार लेते हैं
जिसे हम आज भी याद करके
यूँ ही हँस दिया करते हैं।

– बी-2, शिवकाशी अपार्टमेंट, किशनगढ़, नई दिल्ली

❑❑❑

# बड़का दाई : द्वापर की यशोदा माई

**बी बालाजी**

डॉ. राम निवास साहू द्वारा रचित 'बड़का दाई' (2017) उपन्यास एक माँ की ममता की गाथा है। उपन्यासकार ने 'बड़का दाई' के रूप में जिस ममता की मूरत का शाब्दिक चित्रण किया है वह उनकी चचेरी दादी 'जाना बाई' हैं। वह 'पिसौद' नामक गाँव से थी, इसीलिए उसे पिसौदहीन नाम से संबोधित किया जाता था। लेखक की माताजी 'धन कुंवर' कथरीमाल की थी, इसलिए वह कथरीमलहीन कहलाती थी। लेखक तीन बरस के थे तब कथरीमलहीन अपने इस अबोध बालक को उसकी चचेरी दादी के जिम्मे छोड़कर स्वर्ग को चली गई। दो बच्चों की माँ पिसौदहीन अब तीन बच्चों की हो गई। इसने यशोदा मैया की तरह लेखक का लालन-पालन किया। उन्हें एक जिम्मेदार नागरिक बनाने में बहुत बड़ा योगदान दिया।

बड़का दाई केवल अपने घर की ही नहीं पूरे 'कोरबी' की दाई हैं। सबका भला चाहनेवाली है। सबका भला करनेवाली ममतामयी माई है। उसका स्वभाव सरल है। वे नि:स्वार्थ भाव से सबके लिए अच्छा सोचती हैं। "पिसौदहीन सबका भला चाहती है। सबको शुभ-शुभ आशीर्वाद देती है। यथाशक्ति दान-पुण्य कर सेवा धर्म भी निभाती है किंतु पात्र-सुपात्र-कुपात्र की परख उसे नहीं है। वह बातों-बातों में ही सीमित हो जाती है। नीयत को झांककर देखने की कला या तकनीक से वह अनजान है।" (पृ. सं. 99)। लेखक के माता-पिता जब

---

बड़का दाई/ उपन्यास/ डॉ. रामनिवास साहू/ प्रकाशक : उद्योग नगर प्रकाशन, 659, न्यूकोट गाँव, जी.टी. रोड, गाज़ियाबाद/ प्रकाशन वर्ष 2017/ पृष्ठ : 196/ मूल्य-₹395/-

खम्हरिया में अपना घर-बार छोड़कर कोरबी आए तो इसी ने उन्हें आसरा दिया था। लेखक की माँ ने अपने आंचल से लेखक का हाथ झटककर पिसौदहीन के आंचल को पकड़ाया था। इस घटना को याद करते हुए वे कहते हैं "माँ ने अपने आंचल से मेरा हाथ क्यों झटक दिया? दादी के आंचल को क्यों पकड़ाया? क्या उसे अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था? मैं आज भी सोचता हूँ।" (पृ. सं. 113)। लेखक अपनी माँ का आंचल छोड़ना नहीं चाहते थे। लेकिन माँ के झिड़कने पर उन्होंने प्रायोगिक तौर पर सहमते हुए दादी का आंचल पकड़ा। जन्म देने वाली और पालने वाली माँ की समानता और विशेषता बतलाते हुए उपन्यासकार कहते हैं "वही नागपुरी लुगड़ा, वही प्यार, वही दुलार, वही काम-धाम, वही उठ-बैठ। वह 'जननी थी और यह पालनहारिनी। वह कथरीमलहीन थी और यह पिसौदहीन। वह दाई थी और यह बड़का दाई। वह मेरे बचपन में स्वर्गवासी हो गई और यह यौवन में। मैं उन्हें आज भी याद करता हूँ। दो बूंद आँखों से ढुलक जाते हैं- ओ माँ! तेरी सूरत से अलग भगवान की सूरत क्या होगी? क्या होगी? क्या होगी?" (पृ. सं. 113)

'जाना बाई' अर्थात बड़का दाई जब 2-3 साल की थी तब लेखक के चचेरे दादा श्रीराम स्वरूप जो 4-5 साल के थे, के साथ बाल विवाह हुआ था। दोनों के युवा होने के बाद गौना हुआ। बड़का दाई अपने दो भाइयों से बड़ी थी। दोनों की दुलारी थी। दोनों भाइयों पर शासन-अनुशासन करती हुई परिवार चलाने में दक्ष हो गई थी। लेखक के चचेरे दादा अपने पिता के प्राणप्रिय थे। पिता के साथ दुकानदारी में दक्ष हो गए थे। गौना होने के बाद जब पिसौदहीन ससुराल आई तो कुछ ही दिनों में सास-ससुर और पूरे घर की जिम्मेदारी उठाने का मौका मिला क्योंकि उसकी बड़ी और मंझली जेठानियों ने अपने अलग घर बना लिए थे। वह सुख से अपना जीवन बिता रही थी। दो-चार साल में उसके दो सुंदर बच्चे हुए। एक बेटा-एक बेटी। बेटा बड़ा था। "वह गीतों, कहानियों से लबालब भर गई। हर दिन नए-नए गीत या फिर नई-नई कहानियाँ कभी सास को सुनाती तो कभी पति को और अब तो बड़ा बेटा भी 4 साल का हो रहा है। वह भी कहानी सुनने को तैयार।" (पृ. सं. 174) एक दिन वह आंगन में अपने बेटे को कहानी सुना रही थी। बेटी गोद में थी। तभी उपन्यासकार के घायल चचेरे दादा

को लादे हुए घोड़ा आंगन में आया। आंगन में चचेरे दादा का घायल शरीर गिर पड़ा। दो-चार दिन बाद वे चल बसे। दादा के साथ ही दादी के सुख समाप्त हो गए। इस घटना से भारतीय परिवारों की स्थिति प्रकट होती है। पति की मृत्यु के बाद स्त्री असहाय, दयनीय और पीड़ादायक जीवन जीने, समाज में अवमानना झेलने, अन्य पुरुषों की आँखों में चुभने लगती है। लेकिन जो स्त्री अपने-आपको इन परिस्थितियों से निपटने को तैयार कर लेती है वह अन्य स्त्रियों के लिए आदर्श बनती है, बड़का दाई बन जाती है।

बड़का दाई ने अपने-आपको संभाला। अपने बच्चों का पालन-पोषण किया। दस वर्षों बाद लेखक के पिता पांचों बच्चों को लेकर फिर से कोरबी आ गए और अपने चाचा की दुकान संभालने लगे। बड़का दाई की ममता की छाँव तले लेखक बड़े हुए और पढ़ाई की। वे दसवीं की परीक्षा लिखकर छुट्टियों में अपने घर आए तो बड़का दाई को घर पर न पाकर उससे मिलने पसौद गए। अपने बेटे-बहू के बर्ताव से असंतुष्ट होकर, वह अपना घर छोड़ भाइयों के घर रहने चली गई थी। जब लेखक अपनी बड़का दाई को साइकिल पर बिठाकर घर लौटे तो दाई ने देखा कि खम्हरिया का नौकर कोरबी के घर के बर्तन समेट रहा है, गाड़ा भर रहा है। पूछने पर उसने बताया कि खम्हरिया में बंटवारा हो रहा है और बड़े साब ने उसे यहाँ के बर्तन लाने भेजा है। साथ में हिसाब रखने के लिए मास्टर भी आया था। बड़का दाई अपने घर के बर्तन लुटते देखकर आग बबूला हो गई। दोनों को गाली देते हुए "नीचे की लुगड़ा को कमर से लपेटकर पुरुषों की तरह गाँछ मार ली। पागी पहन ली तथा ऊपर के लुगड़े को कंधे से लपटते हुए कमर पर बांध ली। अब वह दंडचालन के लिए तैयार हो गई। उसने गाड़े के सिर पर से टेनपा निकाला और एक टेनपा नौकर की पीठ पर मारा। वह हाय दादा गो! कहता हुआ भागने लगा। सामने मास्टर के लिए इसने टेनपा उठाया ही था कि वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा।" (पृ. सं. 177) दाई ने कई बार आदमियों पर डंडा चलाया था, लेकिन इस बार टेनपा हाथ में लेकर चंडी का रूप धारण कर लिया था। बड़का दाई उन सभी महिलाओं का आदर्श उदाहरण है जो निस्वार्थ भाव से, पूरे समर्पण के साथ अपना सब कुछ अपने परिवार के लिए और अपना मानकर मदद मांगने वाले के लिए न्यौछावर कर देती है। किंतु

कोई उनसे जबरन एक तिनका भी नहीं ले सकता। लेखक को "वह साक्षात झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, मंडला की दुर्गावती तथा धारवाड़ की कित्तूर चन्नमा की संतान नजर आई।" (पृ. सं. 177)

'बड़का दाई' एक जीवनीपरक उपन्यास है। इसके गठन के संबंध में उपन्यासकार का कथन दृष्टव्य है- "मुझे कुछ कहना है- भाग-1, 2, 3, 4, 5 एक औपन्यासिक आत्मकथा है जिसमें बड़का दाई सर्वत्र समाई हुई है। जिसे अलग करने पर भी एक उपन्यास का अवतरण हो गया।" (पृ. सं. 08)। इस उपन्यास में लेखक ने अपनी बड़का दाई के बहाने छत्तीसगढ़ अर्थात दक्षिण कौशल के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक स्वरूप का अंकन किया है। कुल 196 पृष्ठों के 'बड़का दाई' उपन्यास में लेखक ने छत्तीसगढ़ के लोकजीवन का बड़े ही रोचक और आकर्षक रूप में चित्रण किया है। उपन्यास के अंतिम 20 पृष्ठों पर परिशिष्ट-1 और 2 में क्रमशः छत्तीसगढ़ी शब्दकोश और छत्तीसगढ़ी व्याकरण दिया गया है। इससे छत्तीसगढ़ी को समझने में सहयोग मिलता है। वैसे, एक बार रमने के बाद पाठक को शब्दकोश की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

उपन्यासकार ने 'बड़का दाई' उपन्यास को छोटे-छोटे 39 एपिसोड के धारावाहिक के रूप में प्रस्तुत किया है। इनके नामों से कुछ हद तक औपन्यासिक कथा को समझने में आसानी होती है। 1. 'बनगवाँ राज' में वनगांव के बसने, लोकदेवियों की स्थापना और लोक अंधविश्वासों के प्रसार की कथा है। 2. 'अंग्रेजी राज' में अंग्रेजों के शासन-प्रशासन-कुशासन की झलक दिखाई है। 3. 'डडहा राज' में गौंटिया के परिवार की कहानी है। जिसने सूखे डडहाराज को पानी से लबालब भरने की युक्ति चलाई। अमलीपारा, झालापारा और छूईहापारा से बसाया। 4. 'गौंटिया राज' में जगतराम की गौंटिया अर्थात् गवर्नमेंट शब्द का देशीकृत शब्द, के रूप में स्थापना की गाथा है। यही कोरबी में 'साहू' वंश का अभिभावक है। 5. कोरबी में उपन्यासकार ने बताया है कि इस क्षेत्र का नाम कोरबी कैसे पड़ा और उसके फैलाव व निवासियों की बुलेट रूप में जानकारी है। एपिसोड 6. सेठ-1 का आगमन, 7. साव-1 का आगमन, 8. सुखी राम, 9. सयान-सयानी, 10. एकल परिवार-1 और 11. एकल परिवार-2 में क्रमशः सेठ

और साहू परिवारों के कोरबी और उसके आस-पास के गांवों में बसने, परिवार जन की वृद्धि, व्यापार, किसानी व्यवसाय और बंटवारे की छोटी-छोटी मगर ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण कहानियाँ दर्ज हैं।

आरंभिक 11 एपिसोड गांवों और कस्बों बसने व आबाद होने की प्रक्रिया का सरल उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। 12. 'चाचा-भतीजा' में उपन्यासकार के पिताजी और चचेरे दादाजी की मुलाकात और पिताजी के व्यापार सीखने, परिवार की वृद्धि की कथा है। 13. 'नक्सली नं. 1 बच्चू धंसिया' में लेखक ने छत्तीसगढ़ में उत्पन्न नक्सलवाद के प्रसार की झलक दिखलाई है। उसके व्युत्पत्ति के कारण को रेखांकित करने का न्यूनतम मगर सटीक प्रयास किया है। 14. 'विधवा नं. 1' में उपन्यासकार ने बड़का दाई के नेतृत्व कौशल और गांव की विधवा औरतों की कर्मठता एवं उनकी सीमाओं को दिखाने का प्रयास किया है। 15. 'बड़का दाई की नई मुस्कान' में लेखक ने गांव में पिसौदहीन की 'दाई' के रूप में स्थापना और अपने दुख के निवारण के रूप में 'सर्वजन सुखाय' के लिए अपने जीवन को समर्पित करने हेतु अग्रसर होती 'जाना बाई' के स्वभाव को उद्घाटित किया। 16. 'काकी सा नं. 1', 17. 'बड़का दाई के नई मुस्कान-2', 18. 'झगड़ा' और 19. 'हार की जीत' में क्रमशः बड़का दाई की 'दाई' के रूप में प्रसिद्धि, पड़ोसियों का स्वार्थ और अपने दुश्मन को भी माफ करने वाली, मदद करने वाली 'ममता मई' स्त्री के रूप में बड़का दाई का चित्रण है। 20-25 तक के भागों में उपन्यासकार ने बड़का दाई का 'परहित सरिस धरम' को अंकित किया है। ये एपिसोड पिसौदहीन के सुबह-सुबह घर के बाहर झाड़ू लगाने से शुरू होते हैं। मानो यह 'स्वच्छ भारत अभियान' की निस्वार्थ कार्यकर्ता हो। इन्हीं भागों में उपन्यासकार ने बाल-विवाह से होने वाले वैवाहिक जीवन की विसंगतियाँ, विधवा विवाह, देहातों में प्रचलित विवाह पद्धति, गाँव के परिवेश का चित्रण किया है। 26. 'काकी सास-2' और 27. 'संयुक्त परिवार' में उपन्यासकार ने 'साहू' परिवार के गठन-विघठन को अंकित किया है। 28. 'पिथमपुर मेला-2', 29. 'कनकी मेला-2' और 33. 'छेर छेरा' में देहातों के त्योहार और मेलों का चित्रण किया है। उनसे जुड़ी छोटी-छोटी घटनाओं को जैसे-भैंसा गाड़ी, बैल गाड़ी में यात्रा करना, यात्रा में तालाब में

नहाना, वहीं किनारे पर पेड़ के नीचे विश्राम करना, मेले में शिव जी की पूजा करना, विभिन्न वस्तुओं की बिक्री-खरीद, बड़ी सहजता के साथ धान-दान में मांगना, देना-लेना इत्यादि। 30. 'जननी जन्मभूमि स्वर्ग से महान है' उपन्यास का सबसे मार्मिक भाग है। इसमें लेखक की माँ के स्वर्गवासी होने का हृदयस्पर्शी चित्रण है। 31. 'गौंटिया राज', 32. 'अपना घर : पराया घर' और 34. 'खम्हरियावाले दुकानदार' में क्रमशः गांव में बड़े जाति के लोगों की दादागिरी, लेखक के पिताजी का परिश्रम, उनके दादाजी द्वारा इनके परिवार की अवमानना के बाद कोबरी में आकर 'बड़का दाई' की देखरेख में पिताजी की दुकानदारी व बच्चों के लालन-पालन की कथा का अंकन किया गया है। 35. 'बड़का दाई-1', 36. 'भोजली गंगा-2', 37. 'बड़का दाई-2', 38. 'बड़का दाई-3' और 39. 'बड़का दाई-4' में लेखक ने अपने और बड़का दाई के बीच, माँ व पुत्र के संबंधों के विकास की विभिन्न घटनाओं का चित्रण किया है।

उपन्यासकार ने 'बड़का दाई' उपन्यास के माध्यम से बड़ी ही सहजता के साथ छत्तीसगढ़ के लोकजीवन के विभिन्न तत्व प्रस्तुत किए है। जैसे- लोक का परिवेश, रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, खेल-कूद, त्योहार, मेले, गीत और महत्वपूर्ण तत्व भाषा। छत्तीसगढ़ी में मराठी के भी कुछ शब्द समान अर्थ और भिन्नार्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं। यथा-लुगड़ (साड़ी), काबर (क्यों), गोंटी (कंचे), कोठा (गाय-बैल, भैंस आदि पशुओं को रखने का स्थान), निंदाई (खेत जोतने से पहले अनचाही घास उखाड़ना), मोला (मला-मुझे), कोन्हा अलग अर्थ में मराठी में 'किसे', करा-मराठी में 'कीजिए', एतक (इतक)-इतना, खार- मराठी अर्थ - अचार, नागर (हल), नाव (नाम), धरा (पकड़िए), भात (पका चावल), बेशरम (बेहया की झाड़ी), मूरुम (कंकड़ पत्थर), लाडू (लड्डू), सुरु (आरंभ)।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'बड़का दाई' उपन्यास उन उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाने वाला उपन्यास है जिनमें माँ की ममता का असाधारण चित्रण हुआ हो और जिनमें उपन्यासकार ने लोकजीवन के साथ अपने जुड़ाव

को विभिन्न लोकतात्विक घटकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया हो। 'बड़का दाई' के संबंध में यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि इस उपन्यास में छत्तीसगढ़ी लोकजीवन का लोकतात्विक अध्ययन करने के लिए प्रेरित करने वाली महत्वपूर्ण और प्रचुर सामग्री विद्यमान है। इसका श्रेय उपन्यासकार डॉ. रामनिवास साहू को जाता है कि उन्होंने अपनी बोली और जन्मभूमि के परिवेश से हिंदी जगत को परिचित कराने का अद्भुत कार्य किया है।

– सहायक प्रबंधक (राजभाषा), मिश्र धातु निगम लिमिटेड, हैदराबाद–500058

❑❑❑

# बहुरंगी ग़ज़लें

**आशा प्रसाद**

हिंदी काव्य साहित्य की अनेक विधाओं–कविता, गीत, दोहा, हायकु, ग़ज़ल आदि के माध्यम से कवि अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करता है। इनमें बाहरी परिवेश तथा आंतरिक उद्‌वेलन दोनों का ही समावेश होता है। कविता के बाद ग़ज़ल अपनी रचनाधर्मिता के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा है। प्रसिद्‌ध ग़ज़लकार चंद्रसेन विराट ने कहा था– "साधिका हिंदी ग़ज़ल को एक दिन सिद्‌धि–शिखरों पर टहलना चाहिए"। आज सचमुच हिंदी ग़ज़ल समृद्‌धि के शिखरों पर टहल रही है। हिंदी ग़ज़ल अब एक स्वतंत्र एवं समृद्‌ध विधा के रूप में विकसित हुई है। ग़ज़ल पर केंद्रित पत्रिकाओं एवं स्वतंत्र ग़ज़ल–संग्रहों की रचना हो रही है। प्रो. अवध किशोर प्रसाद का ग़ज़ल संग्रह "रेत के फूल" इसकी नवीनतम कड़ी है।

अवध किशोर प्रसाद का हिंदी साहित्य में गद्‌य और पद्‌य लेखक के रूप में महत्वपूर्ण योगदान है। 'रेत के फूल' इनका पहला ग़ज़ल संग्रह और छठी प्रकाशित पुस्तक है। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट होता है संकलन की ग़ज़लें ग़ज़लकार के 'शुष्क, नीरस और नैराश्यपूर्ण घड़ियों के सर्जनात्मक उपक्रम हैं', जिनके संबंध में ग़ज़लकार ने कहा है–

*बारिश में भीगकर शायरी सबने की है मगर*
*मैं तो शायर हुआ हूँ जिस्म को जलाकर धूप में*

---

रेत के फूल (ग़ज़ल संग्रह)/ प्रो. अवध किशोर प्रसाद/ प्रकाशक : आदर्श प्रकाशन, नई दिल्ली/ प्रकाशन वर्ष 2018/ पृष्ठ : 64/ मूल्य-₹150/-

'रेत के फूल' विविध आयामी एवं बहुरंगी ग़ज़लों का संकलन है जिसमें इक्यावन ग़ज़लें संकलित हैं जिनसे देश की जनता के लिए जागरूकता तथा इंसानियत के प्रति सद्भावना का संदेश मिलता है। जीवन को माधुर्यपूर्ण एवं संवेदनशील बनाने के लिए प्रेम के भाव की भी अभिव्यक्ति हुई है। संकलन की ग़ज़लों में देश में फैले भ्रष्टाचार को उजागर करते हुए मानव को उसके विरुद्ध जागरूक करने का प्रयास किया गया है। इन ग़ज़लों में ईश्वर, प्रकृति और देवी-देवताओं के प्रति आम आदमी की वैचारिक अनुभूतियों का भी चित्रण किया गया है। जीवन रूपी सागर की गहराइयों में पैठ कर विचारों के सीपी, शंख और अंततः मोती निकाल लेने की बौद्धिक प्रक्रिया का समावेश भी इन ग़ज़लों में हुआ है। ये ग़ज़ल अनुभूतिपूर्ण एवं आत्मिक हैं जो मन-प्राणों को उद्वेलित कर देती हैं। इन ग़ज़लों में भावात्मक, रूपकात्मक एवं संरचनात्मक वैविध्य है।

संकलन की ग़ज़लों की खासियत है सामयिकता, मर्मस्पर्शिता तथा सरलता। प्रो. प्रसाद की ग़ज़लें स्थिति और परिवेश को एक-दूसरे से आबद्ध करती हैं। इसके माध्यम से इन्होंने देश की जनता को जागरूकता का संदेश दिया है। वर्तमान समय में जनता ने अपनी अहमियत भुला दी है। सर्वत्र भ्रष्टाचार और व्याभचार फैल गया है। लोग बड़े ही स्वार्थी और लालची हो गए हैं-

*स्वार्थ से अब कितने गिर गए हैं लोग*
*पैसों के वास्ते कितने गिर गए हैं लोग*
*सच और झूठ में रहा है अब अंतर कुछ नहीं*
*अंतर यही है कि उठ के कितने गिर गए हैं लोग*

आज समाज में चारों ओर कुरीतियाँ फैली हुई हैं, अपनेपन का रिश्ता समाप्त प्राय हो गया है, लोग अत्यधिक खुदगर्ज हो गए हैं

संकलन की ग़ज़लों में रसमयता के साथ-साथ प्रेम की झनकार भी है जो हृदय को रस से सराबोर कर देती है-

गर तुम आकर मेरे द्वारे मधुरस बरसा जाती
सूखी यह सरिता सावन सी कोरों में सरसा जाती

इन ग़ज़लों में खुशियों का इज़हार भी देखने को मिलता है जो नीरसता को दूर कर जीवन में बहार ला देती है-

*हसरत भरी नज़रों से जो देखा आपने*
*सच मानिए जनाब मैं निहाल हो गया हूँ*
*चमन में कलियों के खिलने से पहले*
*मैं तो खिल करके निहाल हो गया हूँ*

लोगों में ईश्वर के प्रति भक्ति, देवी-देवताओं की आराधना तथा उनके प्रति विश्वास की भावना दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। निम्न ग़ज़ल पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

*देवता सचमुच में अब पत्थर हो गए*
*पूजा के सरंजाम सब कनस्तर हो गए*
*मंदिर बियावॉ है दिखता कोई नहीं*
*पुजारी सुकरात हुआ जाता यहाँ है*

आज देश हिंसा की आग में जल रहा है। देश में भ्रष्टाचारियों, अपराधियों, पापियों और देशद्रोहियों का जमावड़ा छाया है, जिससे देश की अवस्था पतनोन्मुखी हो गई है-

*हिंसा की आग में सारा जल रहा है देश*
*भ्रष्ट मंत्रियों से सारा चल रहा है देश*
*अपराधियों के बीच सारा पल रहा है देश*
*पापियों के कर्म से सारा गल रहा है देश*

ग़ज़लकार एक दार्शनिक चिंतक की तरह इस संसार को क्षणभंगुर तथा प्रभु की माया मानता है। यह सारा संसार ही प्रभु की माया का खेला है-

लेकिन ग़ज़लकार ने इस चंद दिनों के जीवन को व्यर्थ बिताने के बनिस्पत लोगों को इतने कम जीवन में भी अपने आप को पहचान कर कुछ कर लेने का संदेश दिया है, जो आज के लिए प्रासंगिक ही नहीं, बल्कि बहुमूल्य है-

*जिंदगी से बेखबर यूँ मत होइए जनाब*
*घोड़े बेचकर यूँ अब मत सोइए जनाब*
*जो चीज मिली है आपको पहचानिए उसे*
*हाथ आई वस्तु को यूँ मत खोइए जनाब*

निम्न ग़ज़ल में जागरण का संदेश भी है और प्रकृति के प्रांगण में होने वाले पट परिवर्तन का चित्रण भी–

*सूरजमुखी खिल गई है चमन में अब आप जागिए*
*चिड़ियाँ चहक उठी हैं चमन में अब आप जागिए*

'रेत के फूल' ग़ज़ल संग्रह में और भी अनेक ग़ज़लें हैं, जिनमें समाज के विभिन्न आयामों एवं जागतिक सत्यों की अभिव्यक्ति हुई है। दौलत के वास्ते, रूकने दिया कब, आखिरी खत, मिसरजी, सादी वर्दी वालों ने, हीरे का नगर, काँटों का डर है आदि ऐसी ही ग़ज़लें हैं। कुछ ग़ज़लों में वैयक्तिक भावानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। यथा–बीत जाता है दिन, दिले पाक हूँ, थक गया है आदमी आदि। तथापि ये ग़ज़ल किसी न किसी सामाजिक संदेश को अभिव्यंजित करती हैं।

*संग्रह में कुछ सशक्त शेर हैं जो मन–प्राणों को अभिभूत करते हैं। यथा–*
*घरों में दीये जला सकते नहीं जो शर्म से*
*गर्व से वे दीप मंदिर में जलाते रातभर*
*मैं चिल्लाता रहा गला फाड़कर अकेले सड़क पर*
*जब मैं चुप हुआ तो भीड़ लग गई कमाल हो गया*
*आंधी तूफान का डर है उन्हें जो वादियों में गीत गाते प्यार के*
*पहाड़ी घाटियों का पथिक हूँ कंटकों से मांग मैं संसार लूंगा*

निष्कर्षतः संकलन की ग़ज़लें वर्तमान समय में अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। इनमें रोचकता और पठनीयता है। हिंदी ग़ज़ल के माध्यम से आधुनिक जीवन की जटिलताओं, संगतियों–विसंगतियों यथार्थताओं की अभिव्यक्ति हो रही है। जीवन के मानदंडों को परिप्रेक्ष्य में रखकर आज की ग़ज़लों में न केवल सामाजिक समस्याओं को उकेरने का प्रयास किया जा रहा है, बल्कि इनमें रसमयता की भी सृष्टि की जा रही है। इस परिप्रेक्ष्य में "रेत के फूल" में संकलित ग़ज़लों की मीमांसा करने से यह स्पष्ट होता है कि ये ग़ज़ल अपने कथ्य, वर्ण्य और शिल्प संरचना में पूर्ण सफल और सक्षम हैं। ग़ज़ल गीतात्मक रचना है। गीतात्मकता ग़ज़ल की मुख्य विशेषता है। संकलन की ग़ज़लों में गेयता

एवं गीतितत्व का अभाव है तथापि इन ग़ज़लों में रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता है।

आशा है, साहित्य जगत में इन ग़ज़लों को यथोचित महत्व और स्थान प्राप्त होगा। ग़ज़लकार को साधुवाद!

– बी–33, कृषि विहार, नई दिल्ली–48

❑❑❑

# जन्नत के चाँद कश्मीर घाटी पर आतंक का ग्रहण

**डॉ. केवल कृष्ण शर्मा**

डॉ. सारिका कालरा का उपन्यास 'तेरे शहर में' कश्मीर घाटी के आतंक की पीड़ा और सीमा की रक्षा में रत प्रहरियों की जिजीविषा के द्वंद्व और टकराहट को लेकर लिखा गया संभवता इनका प्रथम उपन्यास है। बढ़ती उमर में सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं से जूझते करीम में अकेलेपन की त्रासदी के साथ-साथ जिजीविषा की ललक में कथानक की चेष्टाएँ करता है। उसके माध्यम से ही जीवनसंबंधी महत्वपूर्ण प्रश्नों की पड़ताल उपन्यास में की गई है। 55 वर्षीय करीम अपनी पत्नी चांद की मृत्यु के उपरांत अपनी बेटी फाएजा और बेटे शकील के साथ जीने की चाह समेटे घाटी की फिजाओं में बसे एक गाँव में रह रहा है।

सरहद पार से घुसपैठ में आई तेजी और गोलाबारी की खबरों से वह भीतर तक हिल गया है। लेखिका ने पूरे उपन्यास को प्रतीकात्मक शीर्षकों यथा-बिना कहे निस्तार नहीं, जीवन और मृत्यु की सीमा रेखा, बादलों के ऊपर एक उड़ान, हसरतों के पन्ने और भी हैं, चिरागों के तले अँधेरा ही तो है, वे खौफ परिदों का शहर, ये कैसा सफर है, धुआँ उठा है तो आग भी होगी, सावधान आगे अँधा मोड़ है, ओ मेरे चंद्रमा तेरी चांदनी अंग जलाए, आहिस्ता से बदलता है मौसम चुपचाप, चंद बहारें देर से आती हैं, नए सफर पर, चलो कुछ वीरानों में उजाले करें, आदि-आदि लगभग 37-38 शीर्षकों के माध्यम से अपनी बात को पाठकों तक पहुँचाया है।

---

'तेरे शहर में' उपन्यास/ डॉ. सारिका कालरा/ प्रकाशक: हिंदी-युग्म 201बी, पॉकेट-ए, मयूर बिहार फेस-2, दिल्ली-110091/ प्रकाशन वर्ष: 2017/ पृष्ठ:144/ मूल्य: ₹115/-

ऐसा प्रयास अपने आप में सफल और सराहनीय है। पाठक भी पूरी तन्मयता से लेखिका की कृति से जुड़ा दिखाई देता है। मेजर आलोक की लीडरशिप में रंगरूट घाटी में दहशतगर्दी की भांप कर प्रतिक्रिया स्वरूप तैयारी में हैं। फौज की ट्रेनिंग का पहला पाठ ही यही होता है कि- दुश्मन के लिए मन में दुनियाँ भर की नफरत (पृ. 13) हँसते-खेलते परिवारों में दहशत फैलाना ही तो आतंकियों का लक्ष्य होता है।

ऐसे में पूरी यूनिट का चौकन्ना हो जाना, गश्त का बढ़ जाना, इतनी सर्तकता के बाद भी आतंकी सीमा के पार हो ही जाते हैं। ऐसी स्थिति में बासिंदों को भी अनेकों-अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शिक्षा संस्थानों का बंद हो जाना, रोजमर्रा की जिंदगी का रूक सा जाना, खाने के लाले पड़ जाना, इन सभी दरपेश समस्याओं का ज़िक्र लेखिका ने बाखूबी करने का भरसक प्रयत्न किया है और सफल भी रही हैं।

सैनिकों के सख्त, कठोर अनुशासन, सीमा की चौकसी, दिन-रात की गश्त, अपनों की याद का वर्णन हल्के-कोमल नाजुक क्षणों की कमैंट्री भी दिलकश अदा से देखने को मिलती है। लेखिका की कृति की कहानी आमतौर पर मेजर आलोक उसकी पत्नी मनस्वी करीम उसकी बेटी फाएजा के इर्द-गिर्द ही घुमती है। यहाँ अंतर्विरोध निर्मित के दो मुख्य उपकरण नज़र आते हैं- प्रथम घटनाओं का समायोजन वे जिस क्रमिकता से करती हैं और दूसरा उसको जिस बिंदु पर पहुँचाती हैं। वही अंतर्विरोध को जन्म देता है। इन घटनाओं के चयन और समायोजन में विचारधारा की भूमिका लेखिका के शब्दों में- जीवन के नए सफर पर सब कुछ नया नहीं होता, कुछ ऐसा भी होता है जो साथ-साथ घिसटता हैं। उससे आप चाहकर भी मुक्ति नहीं पा सकते। उससे मुक्ति पा लेना कोई आदर्श स्थिति भी नहीं है। अपने उसी पुराने को कुछ मौलिक उद्‌भावों के साथ और संभवतः कुछ काल्पनिक सूत्रों के साथ इस कहानी को बुनने की कोशिश की है।

लेखिका ने इस उपन्यास को कातने, बुनने में, पिरोने, काढ़ने में बाकई बड़ी मशक्कत की है। उपन्यास की भाषा, पात्रों के हाव-भाव और चित्रण

घटनाओं के पुनर्निमाण में काफी सावधानी बरती गई है। "एक फौजी के लिए फैमिली सबसे बड़ा फिनामेनन होती है। अपनी फैमिली को अकेले छोड़कर वह पूरे देश को अपनी फैमिली की तरह ही अपनाता हैं। दूसरी ओर अपनों से दूरी और फौज की सख्त जिंदगी कभी-कभी वीतरागी बना देती है। इसीलिए फौज में वालंटरी रिटायरमेंट ज्यादा होती है।

आतंकवाद का विरोध और सांप्रदायिक सद्भावना के प्रति अपनी रचनात्मकता को उद्घाटित करना रचनाकार के नैतिक पक्ष को उद्घाटित करता हैं सांप्रदायिक विद्वेष और आतंक की त्रासदी परंपरा में अनेकों सैनिकों का बलिदान और 'फाएजा' जैसी मासूमियत के समक्ष और भी तीखेपन से उभरती है। जब उसका भाई जेल में आत्महत्या कर लेता है तो शायद वह अपने मन को यह कहकर समझाती है कि- समय अपनी गति से ही चलता है किसी के कहने या चाहने से उस पर पंख नहीं लगते। अंतर्विरोध के जिन दो उपकरणों की बात कही गई है। उसका सटीक उदाहरण हम इस कृति को भी मानकर चलते हैं।

यह उपन्यास जीवन से पलायन का नहीं बल्कि नई आशाओं के संचार की बात करता है। इसके केंद्र में समाज-परिवार से भी बढ़कर देश प्रेम और सेवा का जज्बा प्रस्फुटित होता हैं लेखिका ने कम शब्दों में बड़ी-बड़ी बातें, कहीं-कहीं तो काफी चुटीले एवं शे'यरो-शायरी से भी रंग भरा है-

इक राह से राहें निकलती हैं कई।
हम भी खोज लेंगे राहें नई।

इस कृति में स्त्री जीवन के कटु, यथार्थ, संघर्ष, मानसिक पीड़ा के साथ-साथ समाज में उनकी स्थिति को लेखिका ने फौजी अफसरों की पत्नियों यथा-मनस्वी तथा समाज में बिन माँ की बच्ची फाएजा के माध्यम से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। एक स्थान पर लिखती है कि औरत घर के माहौल को ही सद्भावनापूर्ण नहीं बनाती, अपितु कार्यालय में भी अनुशासन उसके ही कारण होता है।

आज के युग में जब हम अपरिचित और अजनवियत की शिकायत करते नहीं थकते। इस उपन्यास में लेखिका ने कई दृश्य निर्मित किए हैं। जिससे सिद्ध

होता है कि पुरुष ही नहीं स्त्री भी अपने व्यवहार, व्यक्तित्व और सूझबूझ से दूसरों अर्थात् अजनबी को अपना शुभ-चिंतक बना सकती है। मनस्बी जब बैंक में पी.ओ. बनकर लखनऊ पहुँचती है तो यह स्थान उसके लिए अजनबी था; वह जिस मकान में किराए पर रहती है; वही परिवार उसकी सेवाश्रुषा एवं सुरक्षा के लिए तत्पर रहता है। उसकी प्रैग्नैंसी से लेकर डिलीवरी तक उसका पूरा ख्याल रखा गया। दूसरी ओर आलोक का 'फाएजा' के भविष्य के प्रति चिंतित होना, उसके अब्बू को फाएजा को कहीं दूर पढ़ने के लिए भेजने को कहना। इसका कारण यही रहा होगा कि- फाएजा के लिए उसके मन में जो बदलती हुई भावना थी उसे बार-बार महसूस करना चाहता था। (पृ. 57)

कई पात्र उपन्यास में एक ही बार आए हैं। उतने में ही लेखिका ने उनके जीवन को झलका दिया है। यही कारण है कि उपन्यास स्थूलकाय होने से बच गया है। कथा के प्रवाह में तेजी आई है। जिससे जीवन की सच्चाई को साहस से उजागर किया है। यह वही समस्याएँ हैं जिन्हें झेलते-झेलते अक्सर कई परिवार टूट जाते हैं। मनस्वी का अपने लक्ष्य पर अडिग रहना कि मैं अपना भविष्य स्वयं बनाऊँगी। वह यहाँ भूल जाती है कि यदि पुरुष की सफलता के पीछे भी पुरुष का हाथ होता है। यथा- मनु की यह नौकरी केवल मनु का ही सपना नहीं थी आलोक का भी सपना थी। मनु सीधे-सीधे जब अपनी परिस्थितियों से संघर्ष कर रही थी तब वह भी चुपके-चुपके अपनी प्रार्थनाओं में उसकी सफलता की कामना करता था। (पृ.)

आमतौर हम पाते हैं कि कभी-कभी सही फैसला लेकर भी असंतुष्ट रहते हैं। बाहर से अच्छा दिखाई देने वाला सभी कुछ अच्छा या बेहतर होगा, यह भी जरूरी नहीं। शकील भी तो ऐसा ही नवयुवक है, जो पढ़ाई से असंतुष्टि के कारण आतंकवाद के रास्ते पर चल पड़ता है। अंत में सही फैसला लेने के कारण आत्महत्या के लिए मजबूर होता है। लेखिका ने बहुत बड़ा संदेश दिया है। इनके साथ-साथ सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की पोल खोलती लिखती हैं कि- राजनीतिक स्तर पर चलने वाली शांति-वार्ताएं, सिर्फ अखबारों और न्यूज चैनल की सुर्खियों तक ही रह जाती हैं। जमीनी हकीकत का सामना तो सैनिक

करता हैं जब चलते-चलते उनके नीचे की जमीन फट पड़ती है या बारूद उसके सीने के आर-पार हो जाती है। (पृ. 14)

विद्वानों का कथन है कि- जागरूक लेखक अपनी परंपरा से प्राप्त शक्तियों का उपयोग वर्तमान समस्याओं, मान्यताओं को समझने-बूझने और उनसे टकराने में करता है। मेरे विचार में डॉ. सारिका इस कसौटी पर खरी उतरती नज़र आ रही है। इसका कारण मैं यह मानता हूँ कि- इनका लेखन वैयक्तिक न होकर एक सामाजिक कर्म है। कृति में समकालीन सामाजिक जीवन का यथार्थ पूरी निर्भयता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। तीव्रगति से घटती जा रही संवेदनशीलता के दौर में लेखिका ने अनेक स्थानों पर संवेदना का साथ नहीं छोड़ा। प्रकृति प्रेम, वस्तु संबंध, पात्र स्मृति और अस्तित्व पर प्रकाश डालने का भरसक यत्न किया है। व्यर्थ के विवरणों का मोहत्याग कर प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य एक मकसद के लिए लिखा है। सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण कथा में कसावट लाता है तथा भाषा एवं परिवेश कथा के अनुरूप व सटीक है। इन्हीं विशेषताओं के होते रचना पठनीय, विचारणीय एवं स्वागत योग्य है। विषयों पर विविधता के साथ कथासार विस्तृत न होते हुए भी रोमांचक है। समस्याओं को गहरे तक कुरेदने का कौशल और प्रभावी ढंग से परोसने का सलीका सराहनीय है। शुभाशीष।

– 653 'कुटुंब', न्यू शास्त्री नगर, नजदीक बस स्टैंड, पठानकोट-145001

❑❑❑

# गुळळकायज्जी ( बाहुबलि की जय )

**दिविक रमेश**

आज अनुवाद के माध्यम से भारतीय भाषाओं का साहित्य एक-दूसरे की भाषा में सुखद प्रवेश पा रहा है और भारतीय साहित्य की एक विशाल और महत्वपूर्ण समझ तथा पहचान गढ़ने की दिशा में बढ़ रहा है। भले ही गति अभी अपेक्षित रूप में पर्याप्त न हो। आज जबकि भूमंडलीकरण का सवाल बार-बार सामने आ रहा है, साहित्यिक और सांस्कृतिक भूमंडलीकरण की अनिवार्यता जोरों से बढ़ रही है। आर्थिक भूमंडलीकरण भले ही भौतिक समृद्धि का कारण बन जाए लेकिन एक वैश्विक संस्कृति, जहाँ किसी भी भू-भाग का इंसान, इंसान बना रह सकता है, का कारण नहीं बन सकता जिसकी, तीखी धारों वाले बंटे देशों के विश्व में', कहीं ज्यादा जरूरत हो चली है। ऐसे में हमें मानना ही होगा कि साहित्य विश्व-संस्कृति की सामग्री है जबकि अनुवाद उसका प्राण और आत्मा है। इस सारी बात में विश्व-साहित्य की कल्पना भी छिपी है। विश्व-साहित्य अपना प्राण और आत्मा अनुवाद के माध्यम से प्राप्त करने को अभिशप्त है। विश्व-साहित्य, विश्व-संस्कृति का निर्माता भी है और एक स्तर पर वाहक भी। यदि यह सच है कि अंतरराष्ट्रीयता के बढ़ते हुए भाव ने, साहित्य के अनुवाद को बढ़ाया है तो सच यह भी है कि विभाजक और विध्वंसक सत्तात्मक शक्तियों के विरोध में "वैश्विक साहित्य" वैश्विक दृष्टि की कल्पना के साथ-साथ उसके अनुवाद की अनिवार्यता को भी अनुवाद की

---

गुळळकायज्जी (बाहुबलि की जय)/चंद्रशेखर कंबार/ अनुवादक: डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'/ प्रकाशक संपिगे प्रकाशन, सिरिसंपिगे 44, 1मैं रोड, बनशंकरी 111 स्टेज, iv ब्लाक, बेंगलूरू- 560085/ प्रकाशन वर्ष- 2018, मूल्य / ₹. 150/-

तमाम खामियों के बावजूद स्वीकार किया गया है। इस संदर्भ में मैं अपनी पहले ही से बनी एक राय जरूर बांटना चाहूंगा कि विश्व तक जल्दी से जल्दी पहुँचने के लिए हिंदी को अन्य भारतीय भाषाओं का द्वार बनाना ज्यादा व्यावहारिक होगा। अर्थात् सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य का यदि हिंदी में अनुवाद उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर ली जाए तो विदेशी भाषाओं के संदर्भ में केवल एक भारतीय भाषा 'हिंदी' के माध्यम से उन भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से पहुँचना बहुत सरल तो होगा ही, प्रमाणिक भी होगा क्योंकि हमारे देश का एक-एक हिस्सा सांस्कृतिक दृष्टि से तो एक है ही।

कन्नड़ से हिंदी और हिंदी से कन्नड़ में साहित्य आदि को अनुवाद के माध्यम से प्रस्तुत करने वालों में एक बहुत ही प्रतिष्ठित नाम प्रोफेसर डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' का है। विशेष रूप से 'वचन' साहित्य के हिंदी अनुवाद के लिए तो वे हमेशा याद किए जाते रहेंगे। इस समय मेरे सामने उन्हीं के द्वारा अनुदित कन्नड़ के लब्ध प्रतिष्ठित कवि, नाटककार, लोककथाकार चंद्रशेखर कंबार की अत्यंत चर्चित नाट्यकृति गुळळकायज्जी (बाहुबलि की जय) है। यह लेखक का 26वाँ नाटक है। विद्वानों ने माना है कि इस नाटक की वस्तु अब तक के नाटकों से बहुत भिन्न है। और यह भी कि जहाँ कंबार जी के अधिकतर नाटकों में लोकगीतात्मक स्पर्श मिलता है वहाँ इस नाटक में यक्षगान, पारिजात नाटकों का सार और तंत्र भी मिलता है। पुरानी कहानी होते हुए भी नाटक के रूप में पूरी तरोताजगी है। वस्तुतः नाटक के साथ-साथ जो अभिमत संकलित हैं वे भी पाठकों के लिए महत्व के हैं।

प्रोफेसर प्रभाशंकर के अनुसार, 'मूल का भाव/आशय अनुवाद में लाना और लक्ष्य भाषा के पाठकों हेतु पठनीय बनाना यही मेरा लक्ष्य रहा।' मैं कह सकता हूँ कि कहीं-कहीं हिंदी भाषा के स्वरूप में संपादन की रह गई छिटपुट जरूरत के बावजूद अनुवादक अपने लक्ष्य में सफल रहा है।

यह नाटक श्रवणबेळगोळ क्षेत्र के पट्टाचार्य श्री चारुकीर्ति भट्टारक की प्रेरणा से लिखा गया है। श्री चारुकीर्ति भट्टारक बहुभाषा विशारद हैं और सर्वधर्म समन्वय में आस्था रखते हैं। सरकारी अनुदान के स्थान पर जैनमठ के सहयोग

से अखिल भारतीय कन्नड़ सम्मेलन को गति दी है। इन्होंने ही कंबार जी को गुळळकायज्जी की कथा सुनाकर महाकाव्य लिखने के लिए कहा था, लेकिन कथा में नाटकीय तत्वों की प्रभावशाली उपस्थिति देखकर कंबार जी ने इस पर नाटक ही लिखना उचित समझा।

जहाँ तक मूल कथा का प्रश्न है, इसके केंद्र में बाहुबलि हैं जिनका जन्म ऋषभदेव और सुनंदा के यहाँ इक्ष्वाकु कुल में अयोध्या नगरी में हुआ था। ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे। उनके दो पुत्र भरत और बाहुबलि थे। छोटे पुत्र बाहुबलि को विष्णु का अवतार माना जाता है। बैंगलुरु से 158 किलोमीटर दूर श्रवणबेलगोला (श्रवणबेळगोळ), कर्नाटक में बाहुबलि की 57 फुट ऊँची प्रतिमा गोम्मटेश्वर है जिसका निर्माण गंगावंश के मंत्री और सेनापति चामंडुराय ने वर्ष 981 में करवाया था। यह प्रतिमा विश्व की चंद स्वत: खड़ी प्रतिमाओं में से एक है। 25 किलोमीटर की दूरी से भी इस प्रतिमा के दर्शन होते हैं। श्रवणबेलगोला जैनियों का एक मुख्य तीर्थ स्थल है। हर बारह वर्ष के अंतराल पर इस प्रतिमा का अभिषेक किया जाता है जिसे महामस्तकाभिषेक नामक त्योहार के रूप में मनाया जाता है। इस मूर्ति के कारण बाहुबलि को गोम्मटेश भी कहा जाता है।

जैन ग्रंथों के अनुसार जब ऋषभदेव ने संन्यास लेने का निश्चय किया तब उन्होंने अपना राज्य अपने 100 पुत्रों में बाँट दिया। भरत को विनीता (अयोध्या) का राज्य मिला और बाहुबली को पोदनपुर का। भरत चक्रवर्ती जब छ: खंड जीत कर अयोध्या लौटे तब उनका चक्र-रत्न नगरी के द्वार पर रुक गया। जिसका कारण उन्होंने पुरोहित से पूछा। पुरोहित ने बताया की अभी आपके भाइयों ने आपकी अधीनता नहीं स्वीकारी है। भरत चक्रवर्ती ने अपने सभी 99 भाइयों के यहाँ दूत भेजे। 98 भाइयों ने अपना राज्य भारत को दे दिया और जिन दीक्षा लेकर जैन मुनि बन गए। बाहुबली के यहाँ जब दूत ने भरत चक्रवर्ती की अधीनता स्वीकारने का संदेश सुनाया तब बाहुबली को क्रोध आ गया। उन्होंने भरत चक्रवर्ती के दूत को कहा की भरत युद्ध के लिए तैयार हो जाएँ। सैनिक-युद्ध न हो इसके लिए मंत्रियों ने तीन युद्ध सुझाएँ जो भरत और बाहुबली के बीच हुए। ये थे, दृष्टि युद्ध, जल-युद्ध और मल्ल-युद्ध। बाहुबली ने तीनों युद्धों

में भरत को हरा दिया। इस युद्ध के बाद बाहुबली को वैराग्य हो गया और वे सर्वस्व त्याग कर दिगंबर मुनि बन गए। उन्होंने एक वर्ष तक बिना हिले, खड़े रहकर तपस्या की। इस दौरान उनके शरीर पर बेले लिपट गईं। चींटियों और आंधियों से घिरे होने पर भी उन्होंने अपना ध्यान भंग नहीं किया और बिना कुछ खाए-पिए अपनी तपस्या जारी रखी। एक वर्ष के पश्चात भरत उनके पास आए और उन्हें नमन किया। इससे बाहुबली के मन में अपने बड़े भाई को नीचा दिखाने की ग्लानि समाप्त हो गई।

बाहुबली ने मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान और मानसिक शांति के लिए चार बातों पर जोर दिया- अहिंसा से सुख, त्याग से शांति, मैत्री से प्रगति और ध्यान से सिद्धि मिलती है।

विद्वानों ने जहाँ इस नाटक में कंबार जी की कल्पना का पल्लवन रेखांकित किया है वहीं कंबार जी ने संतोष जताया है कि उन्होंने जैन परंपरा को, छोटे-मोटे संशोधन करके, हानि पहँचने से बचाया है। एच.एस. राघवेंद्रराव के अनुसार, कन्नड़ के जनमन में अब तक जड़ जमाई कथा के लिए नया आयाम देने का कार्य यहाँ संभव हुआ है। मिथक.... को पुनः जोड़ना और उनके लिए नई व्याख्या देना परंपरा के सातत्य को आगे बढ़ाने का कलाकार का काम है। नाटक में संजोए गीतों और ग्रीक नाटकों के कोरस के रूप में यक्षगान के (कथावाचक) भागवत की उपस्थिति को राघवेंद्रराव ने नाटक की विशेषता बताया है। माना गया है कि किसी कथा, मिथ, इतिहास पर आधारित कृति की रचना के पीछे रचनाकार का उद्देश्य कथा, मिथ अथवा इतिहास आदि से अवगत करना मात्र नहीं होता बल्कि उसके सहारे से समकालीन समाज-जीवन के लिए कुछ नए और जरूरी मूल्यों की स्थापना करना हुआ करता है। इस नाटक में भी ऐसा ही हुआ है। नाटक में प्रमुख रूप से तीन बातें उभर कर आई हैं। एक यह कि मानवीय संबंध भौतिक उपलब्धियों के लिए आपसी बैर-भाव के लिए नहीं होते। इसीलिए अहंकारी बड़े भाई भरत के द्वारा थोपे गए युद्ध में विजय के बावजूद छोटा भाई बाहुबली ग्लानि से भर उठता है और उस विजय का त्याग कर मुनि हो जाता है। सम्राट भरत ने जगत को जीता परंतु बाहुबलि

ने तो खुद को ही जीत लिया। एक प्रकार से यहाँ अहंकार पर विजय का प्रकरण दिखाया गया है। कृष्णा मनल्ली के अनुसार कंबार जी का कहना है कि "उस धर्म (जैन धर्म) के मूल सिद्धांत 'निरहंका' ने मुझे आकर्षित किया और मेरे लिए यह एक नया अनुभव है।" बसवराज डाणूर ने उचित ही लिखा है कि 'कंबार जी का यह नाटक अहंकार की ऐसी सूक्ष्म परतों को हटाकर महाप्रकाश के आलोक में हमें डुबोकर उस प्रकाश से भी परे पारमार्थिक लोक में ले जाता है। यह दर्शन हमें नाटक-भर में दिखाई पड़ता है। यही इस नाटक का अर्थ समझने के लिए सहायक सूत्र है।' दूसरी बात उभर कर आती है कंबार जी की प्रतिभा से उत्पन्न परिकल्पित पात्र 'गुल्लकायज्जी' (गुळळकायज्जी) जिसे मूर्ति निर्माता शिल्पी की माँ के रूप में दिखाया गया है। शिल्पी को भी एक असाधारण कलाकार के रूप में चित्रित किया गया है- निःस्वार्थभाव से अपनी कला के प्रति समर्पित एक संवेदनशील कलाकार जो अपनी कला के बदले कोई मजूरी और पुरस्कार नहीं स्वीकार करता। वह नाम का भी भूखा नहीं है इसीलिए मूर्तिपर कहीं भी अपना नाम नहीं लिखवाता। सेनापति चमुंडराय बाहुबलि की विशाल मूर्ति बनवाता है और इस अहंकार से भर जाता है कि मूर्ति उसने बनवाई है। परिणामस्वरूप वह प्रथम मस्ताकिभिषेक के समय स्वामी की मूर्ति को, कितना ही जल, नारियल का पानी आदि रहने के बावजूद, पूरी तरह भिगोने में असमर्थ रहता है। इस प्रकार उसके अहंकार का दमन होता है। दूसरी ओर गुळळकायज्जी है जो विनय और निरअहंकार की मूर्ति है। वह घड़ें भर दूध के स्थान पर एक छोटी लुटिया-भर दूध से भी अभिषेक कर देती है। कंबार जी ने अपने पात्रों के चरित्र का निर्माण बहुत ही सशक्त संवादों के माध्यम से किया है। मेर्त निर्माण के बाद शिल्पी की मनोदशा को प्रकट करता हुआ यह संवाद-अंश देखिए- "उसकी आंख में दृष्टि रचते समय एक बार ऐसा लगा कि छेनी मेरी आंख में चल रही हो....। स्वामी को दर्द हुआ है, ऐसा फिर न होना चाहिए, सचेत हो पीछे होकर देखा तो स्वामी की दृष्टि रच गई है। मेरे कार्य का अंतिम प्रहार वही था। तभी मैंने निर्णय लिया कि मेरी छेनी, टाँकी, हथौड़ा के लिए जिन दीक्षा दिलाऊँ, बूढ़ी माँ (गुळळकायज्जी)! वे अब किसी भी मूर्ति को न दुखाएंगे।" कलाकर

का यह निर्णय भले ही अतिरिक्त रूप से रोमानी ही क्यों न प्रतीत हो लेकिन जैनधर्म के अनुकूल है। कंबार जी की कलम से शिल्पी डंकणाचारी का चरित्र नि:संदेह बहुत मजबूती से उभर कर आया है। नाटक के दृश्य-तीन में चावंडुराय और माँ काळदेवी के बीच पोदनपुर स्थित भरत द्वारा निर्मित बाहुबली की मूर्ति को देखने की जिज्ञासा और फिर उसके अगोचर होने से संबद्ध विचार-द्वंद्व, तदंतर देवता स्त्री के माध्यम से पोदनपुर के भाव (मूर्ति दर्शन के भाव) को श्रवणबेळगोळ में ही देख लेने की सलाह के साथ चावंडुराय के क्षत्रिय भाव को प्रेरित कर बाहुबली को वहीं मूर्ति रूप में प्रकट करने के निर्णय का प्रसंग बहुत ही प्रभावशाली संवादों के माध्यम से चित्रित हुआ है।

नाटक में राजाश्रय के अभिलाषी कवि रन्न और चावंडुराय का प्रसंग भी दिलचस्प और महत्वपूर्ण है। इस प्रसंग में जैन धर्म के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के मूल्य को पुन:स्थापित किया गया है। यहाँ मैं युद्ध में सक्रिय रहने वाली अत्तिमब्बे, कवि रन्न और चावुंडराय के बीच के अहिंसा के मूल्य को सशक्त ढंग से स्थापित करने वाले मजबूत संवाद को उद्धृत करने का मोह नहीं त्याग कर पा रहा हूँ-

अत्तिमब्बे : मगर मैं भी हूँ चावुंडराय जी! माँ की व्याकुलता का अहिंसा का रूप धारण करना सहज है। पतिवियोग का दुख अन्य माँ और पत्नियों के दुख को समझने में सहायक हुआ। राज्य सब पुरुषों का है। घर का व्यवहार उन्हीं का है। स्त्री का राज्य तो अंतरगंगा की तरह अंदर का है। 'चावुंडराय पुराण' लिखने वाले आपको स्त्री की वेदना के बारे में मैं क्या बताऊँ?....।

रन्न : माँजी, चावुंडराय जी ने जो लिखा वह काव्य है। परंतु आप उसका प्रत्यक्ष रूप में आचरण करने वाली हैं। हिंसा का अभाव मात्र अहिंसा नहीं होनी चाहिए। अहिंसा एक व्यापक शक्ति होनी चाहिए। उसे हिंसा की अपेक्षा अधिक बलवान होना चाहिए। ऐसा होने के लिए आप जैसी माताओं को ही उसे सामर्थ्य देना चाहिए।

अत्तिमब्बे : माँ की अहिंसा एक तरह से स्वार्थ से प्रेरित है कवि जी। अपनी संतान को पालने-पोसने में उसकी आवश्यकता है। मगर स्वार्थ रहित सच्ची अहिंसा तो बाहुबली स्वामी की है।...."

कुल मिलाकर, कहा जा सकता है कि यह नाटक प्रचलित कथा के अपने सौंदर्य को बिना नुकसान पहुँचाए हमारे आज के समय के समाज को भी बहुत से व्यापक प्रासंगिक मूल्यों के सागर में सफल डुबकियाँ लगाने का खूबसूरत अवसर देने में समर्थ है। नाटक में रंगमंचन की भी पूरी संभावनाएँ मौजूद हैं।

– एल–1202, ग्रैंड अजनारा हेरिटेज, सेक्टर–74, नोएडा–201301

❑❑❑

# प्राप्ति-स्वीकार

1. उजाले की ओर/ तेलुगु मूल-श्रीराम/ अनुवाद-पारनंदि निर्मला, गीता प्रकाशन/ 4-2-771/ए, प्रथम तल, रामकोट, हैदराबाद-1/ प्रकाशन वर्ष-2018/पृष्ठ-160/मूल्य-₹115/-
2. गड़रिए की तरह आप भी/ तेलुगु मूल/ डी. नटराज, अनुवाद-पारंनदि निर्मला, गीता प्रकाशन/ 4-2-77ए, प्रथम तल, रामकोट, हैदराबाद-1/ प्रकाशन वर्ष-2017/पृष्ठ-112/मूल्य-₹150/-
3. .....और कितनी? डॉ. धर्मपाल साहिल, त्रिवेणी साहित्य अकादमी का उपक्रम, 379, फ्रेंडस कॉलोनी, ऑपोजिट देव कॉलेज, जालंधर (पंजाब)/ प्रकाशन वर्ष-2018/पृष्ठ-396/मूल्य-₹300/-
4. रस्सी पर चलती लड़की/ भगवान वैद्य 'प्रखर'/ बोधि प्रकाशन/ एफ-77, सेक्टर-9, रोड़ न. 11, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006/ प्रकाशन वर्ष-2017/पृष्ठ-152/ मूल्य- ₹150/-
5. पीहू पुकार, (हिंदी काव्य-संग्रह)/ रवींद्र जुगरान/ अनुराधा प्रकाशन/ 1193 पंखा रोड, नांगल राया (डी2 ए जनकपुरी) नई दिल्ली- 110046/ प्रकाशन वर्ष-2018/पृष्ठ-63/मूल्य-₹50/-
6. तेरे शहर में/ सारिका कालरा, प्रकाशनः हिंद-युग्म/ 201बी, पॉकेट ए, मयूर विहार फेस-2, दिल्ली-110091/ प्रकाशन वर्ष-2017/ पृष्ठ-144/ मूल्य-₹115/-
7. रेत के फूल (ग़ज़ल-संग्रह) प्रो. अवध किशोर प्रसाद, आदर्श प्रकाशन एच-16/325, संगम विहार, नई दिल्ली-110080/ प्रकाशन वर्ष-2018/पृष्ठ-64/मूल्य-₹150/-

❑❑❑

# संपर्क सूत्र

1. प्रो. उषा यादव, 73 नॉर्थ ईदगाह, आगरा-10
2. डॉ. बद्री प्रसाद पंचोली, बी-6, दातानगर, रेंबल रोड, अजमेर-305001
3. श्री रमेशचंद्र, 46/22, गांधी नगर, पिंक इंडिया के पीछे, पटौदी रोड, गुड़गांव, हरियाणा-122001
4. डॉ. रामचंद्र राय, सचिव, शांतिनिकेतन हिंदी प्रचार सभा, रूपांतर परिसर, रतनपल्ला नॉर्थ, शांतिनिकेतन-731235, पश्चिम बंगाल
5. श्री गोपाल जी गुप्त, एम.आई.जी. 292, कैलाश विहार, आवास विकास योजना-प्रथम, कल्याणपुर, कानपुर-208017
6. श्री सिद्धेश्वर 'सिद्धेश सदन' (किड्स कार्मल स्कूल के बाएँ) द्वारिकापुरी रोड नं. 2, हनुमान नगर, बी.एच.आई., कंकड़बाग, पटना-800026 (बिहार)
7. श्री राहुल शर्मा 'अस्त्र', म. न. ए-13, ओम नगर गली न. 4, मोहन नगर, गाजियाबाद, उ. प्र. 201007
8. डॉ. सी. ललरमपना, हिंदी शिक्षा अधिकारी, शिक्षा निदेशालय, विद्यालय शिक्षा विभाग, आइजॉल, मिज़ोरम।
9. डॉ. नरेंद्र मोहन, 239-डी, एम.आई.जी. फ्लैट्स, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027
10. डॉ. प्रियंजन, हिंदी अधिकारी, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू
11. डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल, मकान नंबर-एच. 301, नेहरू कॉलोनी, धर्मपुर, देहरादून, उत्तराखंड-248001
12. डॉ. ममता दास, प्लाट संख्या-1032/2402, प्रगति नगर, यूनिट-8, भुवनेश्वर-751003 (ओड़िशा)

13. डॉ. एम. शेषन 'गुरु कृपा', प्लाट-790, डॉ. रामास्वामी सलाइ, के.के. नगर (पश्चिम) चेन्नई-600078

14. डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी, एन.जी 22, टाइप-V, नया गाँव, चक्करगाँव, पोर्ट ब्लेयर, अंडमान-744112

15. श्री हर्ष कुमार 'हर्ष', 781-एस.एस.टी. नगर, पटियाला (पंजाब)-147003

16. श्री राजकिशोर दास, प्लाट नं.-1046/2905, शीराम नगर लेन-13, भुवनेश्वर-751002, ओड़िशा

17. डॉ. शेख सईद, प्लाट नं.-1046/2905, शीराम नगर, लेन-13, भुवनेश्वर-751002, ओड़िशा

18. श्री वीणापाणि महांति, ग्लास पालेस लेन, बादामबाड़ि, कटक-753012 (ओड़िशा)

19. डॉ. विजय कुमार महांति, चांदमारि पड़िआ, सहदेव खुंटा, बालेश्वर-756001 (ओड़िशा)

20. श्री मुहम्मद कुलायी, 'नवनीत' II$^{nd}$ क्रॉस, अन्नाजीरॉय लेआउट, I स्टेज, विनोबा नगर, शिमोगा-577204, कर्नाटक

21. श्री डी.एन. श्रीनाथ, 'नवनीत' II$^{nd}$ क्रॉस, अन्नाजीरॉय लेआउट, फर्स्टस्टेज, विनोबा नगर, शिमोगा-577204, कर्नाटक

22. श्री बी. बलरामस्वामी, पेढागुम्माम (एस.टी.) कासिमकोट, विशाखापट्टनम्-531031

23. श्री बुक्कूरू वेंकटराव, 29-31-6, गोल्ललपालेम, विशाखापट्टनम्-530020

24. डॉ. पंकज साहा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर (प. बं.)-721305

25. श्री महावीर राजी, द्वारा प्रिंस, केडिया मार्केट, आसनसोल-713301 (प. बंगाल)

26. डॉ. दादूराम शर्मा, महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी (म. प्र.)-480661

27. सुश्री किरण कुमारी हंसडक, ग्राम-भाटोंडला, डंगरीटोला, पोस्ट-खातोन, थाना-पोरियाहाट, गोड्डा, झारखंड

28. श्री पदमा सचदेव, बी-242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली-110019

29. श्री कृष्ण शर्मा, 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001

30. श्री नरेश शांडिल्य, ए-5, मनसाराम पार्क, संडे बाजार रोड, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

31. श्री विजयसिंह नाहटा, बी-92, स्कीम 10-बी, गोपालपुरा बाईपास, जयपुर-302018 (राजस्थान)

32. श्री राधेश्याम बंधु, बी-3/163, यमुना विहार, दिल्ली-110053

33. सुश्री श्रेया सिंह, बी-2, शिवकाशी अपार्टमेंट, किशनगढ़, नई दिल्ली

34. श्री बी बालाजी, सहायक प्रबंधक (राजभाषा), मिश्र धातु निगम लिमिटेड, हैदराबाद-500058

35. श्री आशा प्रसाद, बी-33, कृषि विहार, नई दिल्ली-48

36. डॉ. केवल कृष्ण शर्मा, 653 'कुटुंब', न्यू शास्त्री नगर, नजदीक बस स्टैंड, पठानकोट-145001

37. प्रो. दिविक रमेश, एल-1202, ग्रैंड अजनारा हेरिटेज, सेक्टर-74, नोएडा-201301

❑❑❑

# परिशिष्ट
# समाचार समोन्नति

*( भारत की संविधान स्वीकृत भारतीय भाषाओं से संबंधित विविध उपलब्धियों को पाठकों तक पहुँचाने हेतु भाषा के इस अंक में हम एक नया स्तंभ प्रारंभ कर रहे हैं। **'समाचार समोन्नति'** के इस स्तंभ में विभिन्न भाषा विशेषज्ञों के सहयोग से सूचनाएँ एकत्र की गई हैं। 'भाषा' के इस प्रयास पर पाठकों की प्रतिक्रियाएँ अपेक्षित हैं।)*

## मलयालम भाषा हेतु सहयोगकर्ता डॉ. पी. राधाकृष्णन

शिक्षक दिवस पर केरल सरकार द्वारा प्रतिवर्ष शिक्षण के विविध मंच पर प्रशंसनीय कार्यों हेतु पुरस्कार दिए जाते हैं। इस वर्ष यह पुरस्कार श्रीमती एन. जीजा को प्रदान किया।

## मैथिली भाषा हेतु सहयोगकर्ता डॉ. सुमन कुमार झा

साहित्य के लिए 2018 का साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार उमेश पासवान जी की *वर्णित रस कविता* को दिया गया। 2018 के लिए बाल-साहित्य पुरस्कार "सा सुनु बाउ" कहानी संग्रह हेतु - वैद्यनाथ झा को प्राप्त हुआ।

## असम भाषा हेतु सहयोगकर्ता डॉ. अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी

चट्टोपाध्याय तत्व अध्ययन केंद्र, गुवाहाटी ने महाभारत के विविध पक्षों पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया। भाषा अध्ययन केंद्र, डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय, असम ने भारतीय भाषा संस्थान की डिब्रूगढ़ वि. वि. इकाई के सहयोग से *जन संचार में असमिया का अनुप्रयोग* विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी तथा कार्यशाला का आयोजन किया।

## बोडो भाषा हेतु सहयोगकर्ता डॉ. विश्वेश्वर बसुमतारी

बोडो भाषा में सर्जनात्मक साहित्य हेतु साहित्य अकादमी पुरस्कार 'धैसाम' उपन्यास के लिए डॉ. रीता बोरो को प्रदान किया गया। बोडो में अनुवाद पुरस्कार श्री गोविंद बसुमतारी को, युवा लेखक पुरस्कार पूर्ण ब्रहम को उनकी पुस्तक 'अन्नायनि गुबुन मोनसे महर' के लिए तथा बाल-साहित्य पुरस्कार सीताराम बसुमतारी को प्रदान किए गए।

## डोगरी भाषा हेतु सहयोगकर्ता डॉ. भारत भूषण शर्मा

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ की ओर से डोगरी भाषा हेतु डॉ. निर्मल विनोद को 'सौहार्द सम्मान' प्रदान किया गया।

## कोंकणी भाषा हेतु सहयोगकर्ता डॉ. चंद्रलेखा डिसौजा

7-8 सितंबर 2018 को राजभाषा संचालनालय और रवींद्र भवन, मडगाँव, गोवा के सहयोग से दूसरी बाल साहित्य परिषद का आयोजन हुआ।

पद्मश्री सुरेश गुंडू आमोणकार की जूलियस सीज़र के कोंकणी अनुवाद का लोकार्पण अगस्त 2018 में हुआ।

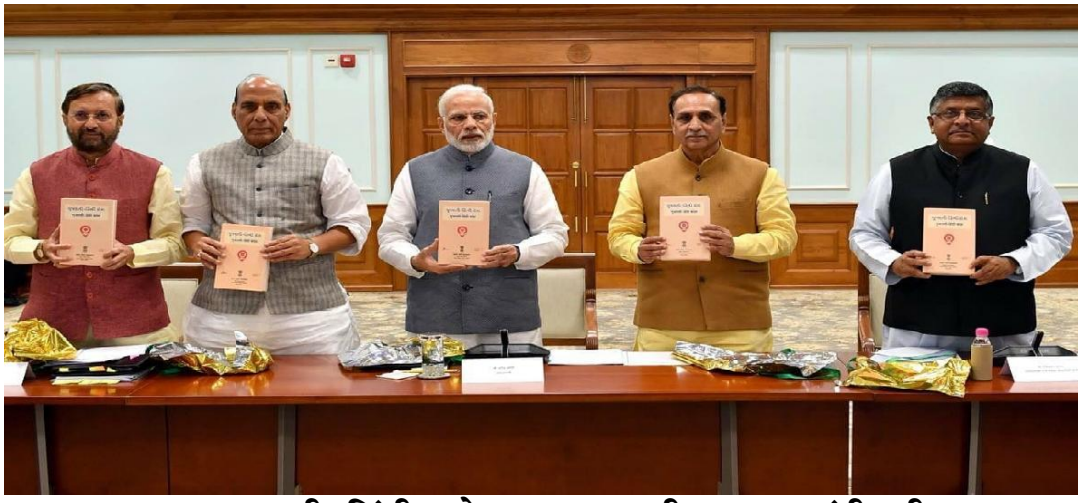

**गुजराती हिंदी कोश का माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा लोकार्पण**

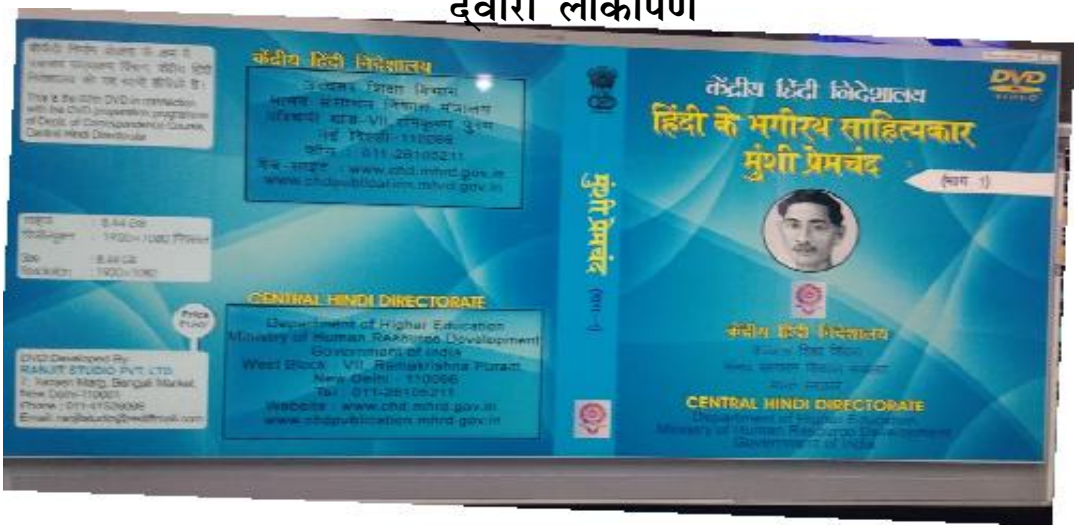


**मुंशी प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग के स्टूडियो एकक द्वारा डॉक्युमेंट्री फिल्म का निर्माण**

**विस्तार एकक द्वारा नैनीताल में संगोष्ठी का आयोजन**

# हिंदी दिवस की कुछ झलकियाँ

पंजी संख्या. 10646/61
**ISSN 0523-1418**

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-5-2018
1100

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्

# हिंदी

केंद्रीय निदेशालय

Digital India
Power To Empower

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित